

श्री राम लाल प्रभु जी

परब्रह्मणे नमः

श्री 1008 योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज का चरितामृत

सुकालीसाव की प्राचीन दुकान
जड़ी बूटी बिक्रेता
डंकीनगंज, मीरजापुर

सुकालीसाव की प्राचीन दुकान
जड़ी बूटी बिक्रेता
डंकीनगंज, मीरजापुर

श्री योग महादिव्य रामायण

प्रथम खण्ड (बालकाण्ड और वनकाण्ड)

लेखक :-

बालकाण्ड - पं० चक्रधारी 'बेज़र'

वनकाण्ड - चमन लाल कपूर 'सेवक'

प्रकाशक :-

योग साधन आश्रम, 3 - माडल टाऊन,
होश्यारपुर (पंजाब)

तृतीयबार 1000

योगेश्वर राम लालाब्द 111

विक्रम संबत 2056

ईस्वी सन 1999

भेंट :- रु. 150/-



योग वन्दना

योग–विद्यां नमाम्यहम्

सौंदर्यलहरीरूपां, तापत्रयविनाशनीम् ।
तेजस्विनीं तपोरूपां, योगविद्यां नमाम्यहम् ।।१।।
संस्थापकां समत्वं तां, शक्तिसर्जनकारिणीम् ।
चित्तवृत्तिनिरोधाय, योगविद्यां नमाम्यहम् ।।२।।
अर्धनारीश्वरस्येमां, चैतन्यसार संभवाम् ।
पूर्णरूपकुण्डलिनीं, योगविद्यां नमाम्यहम् ।।३।।

●●●●

※ योग तुझे नमस्कार ※

सुन्दर करे जो देह को, करे दुखों से पार ।
तेज रूप तप रूप जो, योग तुझे नमस्कार ।।१।।
करे समत्व दान जो, शक्ति सिरजनहार ।
चित्तवृत्ति निरोधहित, योग तुझे नमस्कार ।।२।।
आदिनाथ से ऊपजा, चेतनता का सार ।
जागृत कुण्डली जो करे, योग तुझे नमस्कार ।।३।।
राम लाल जिस का किया, कलियुग में उद्धार ।
मुलखराज के "सेवक", का तुझे नमस्कार ।।४।।

चमन लाल कपूर "सेवक"

भूमिका

श्री योग महा दिव्य रामायण का प्रथम खण्ड श्री प्रभु जी की कृपा से श्रद्धालु पाठकों के लिए प्रकाशन में आया है। आशा है इस के पठन, पाठन, श्रवण, मनन से जिज्ञासु भक्तजन लाभ उठायेंगे।

इस प्रथम खण्ड में केवल दो काण्डों-बाल काण्ड तथा वन काण्ड का प्रकाशन हुआ है। अन्य काण्डों-अर्थात आश्रम काण्ड, दिव्य काण्ड और उत्तर काण्ड का प्रकाशन द्वितीय आदि खण्डों में श्री प्रभु जी अपनी कृपा से करवायेंगे।

श्री योग महादिव्य रामायण ग्रन्थ का विषय क्या है? इस ग्रंथ मे श्री १००८ योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज के जीवन को दिव्य योग लीलायें तथा उन के योग संबन्धी दिव्य उपदेश हैं। प्रसंगानुसार करुणासागर श्री प्रभु जी के कुछ अनन्य भक्तों की योग भक्तिमय जीवनियों का वर्णन भी यथास्थान इस में है।

श्री १००८ योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज का अवतार लुप्त योगविद्या के पुनरुद्धार के लिए अमृतसर नगर में विक्रमी संवत १९४५ चैत्र नवमी बृहस्पतिवार, इष्ट ६ घड़ी ५६ पल, वृषलग्न में पूज्य पाद ज्योतिषिवर पंडित गंडा राम जी जोशी के घर माता भागवन्ती जी के गर्भ से हुआ था।

वंश जोशी जाति अष्ट वंशान्तर्गत ब्राह्मणों की सारस्वतों में सुविख्यात जाति है, जिस का गोत्र मौदगल्य है। इस गोत्र का प्रवर मुख्य आङ्गिरस ऋषि हैं। शाखा माध्यन्दिनी और सूत्र कात्यायनी है।

इस पुनीत वंश में आज तक कई पारंपरित वंश सोपान अवतीर्ण हुए हैं जिन का पुण्य वृत्त उपलब्ध नहीं। जिन प्रातः स्मरणीय पूर्वज महानुभावों के विषय में थोड़ा बहुत ज्ञात हुआ है वह नीचे लिखा जाता है।

१. पंडित चड़तराम जिला जालन्धर के धिहाड़ा नामक ग्राम में श्री १०८ पंडित हरिराम जी का निवास था। उन्हें सतलुज नदी की बाढ़ के कारण जिला लाहौर के नौशहरा नामक ग्राम में जा कर निवास करना पड़ा। इन की पांचवीं पीढ़ी में श्री पंडित चढ़तराम जी नामक कुल तिलक, अति वैराग्यशाली हुए हैं। आप के हृदय में ईश्वर भक्ति में लीन रहते हुए पितृ ऋण से उऋण होने के लिए एक मात्र संतान होने पर ऋषिवृत्ति धारण कर के एकांत में जा केवल ईश्वर आराधन में आयु बिताने का संकल्प था।

एक दिन जब आप ग्राम से बाहिर तालाब पर स्नान संध्यावन्दन कर रहे थे तो एक सज्जन ने पण्डित जी को कहा कि "पण्डित जी। बधाई हो। आप के घर में पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ है।" इतना सुनते ही उन के मुख से निकला, "भक्त वत्सल भगवान की कृपा है, हमें उन्होंने उऋण कर दिया है।"

इतना कह उसी क्षण श्री पंडित चढ़त राम जी घर भी न जा कर और न ही किसी से मिल कर कहीं प्रस्थान कर गये। तदनन्तर आप का कहीं भी पता न मिला। आहा! कितने गौरव की बात है! कितना संयम है! ऐसे व्यक्ति ही सच्चे सन्त कहलाने योग्य हैं।

२. पंडित साईंदत्त नव जात बालक का नाम साईंदत्त रखा गया। एक वर्ष तक उस का पालन पोषण नौशहरा में ही होता रहा। पंडित चढ़त राम जी का जब कहीं भी पता न मिला तब आप की धर्मपत्नी अपने सुपुत्र साईंदत्त को लेकर अपने मायके बग्याना नामक ग्राम (जिला लाहौर) में चली गयी। बालक साईंदत्त के नाना तो थे नहीं। आप के मामा जी ने इन्हें पढ़ने के लिए किसी विद्वान पण्डित के पास भेज दिया। वहां आप कुछ वर्ष तक पढ़ते रहे।

पंडित साईंदत्त का अनुष्ठान पंडित साईंदत्त जी का आचार पूर्ण शुद्ध था। साधु संगति एक मात्र धर्म और कर्म था। सच्चरित्रता की आप प्रतिमा थे। एक बार किसी महात्मा के बतलाने पर आप ने बिना मामा जी और मामी जी को सूचित किए रावी नदी के तट पर जा कर चालीस दिन का अनुष्ठान आरंभ कर दिया। उधर जब सायंकाल आप घर न लौटे तो सभी ढूंढने लगे। कहीं भी पता न चला। माता जी का दुःख देखा नहीं जाता था। मामा जी भी बहुत चिंतातुर हुए। सारे गांव में बात फैल गई और गांव के लोग भी खोज में लग गये। कई दिन खोज होती रही। अन्त ३८ वें दिन किसी व्यक्ति ने आ कर पता दिया कि "साईंदत्त तो रावी नदी के तट पर एक छोटी सी कुटिया बना कर तपस्या में संलग्न है।"

जब यह सूचना आप के मामा जी को मिली तो वे तुरंत गांव से चल पड़े और पता लगाते हुए दूसरे दिन उस स्थान पर देखा कि साईंदत्त जी जप आदि क्रिया में एकाग्रचित्त से संलग्न हैं। कई दिनों के उपवास के कारण शरीर कृश हो चुका था। आप के मामा जी ने गदगद स्वर से आप को पुकारा और घर चलने के लिए कहा। आप ने बड़े नम्र भाव से प्रार्थना की कि "मामा जी। आप मुझे एक दिन के लिए क्षमा कर दें। मेरे उनतालीस दिन हो चुके है। एक ही दिन शेष है। मेरा कल अनुष्ठान समाप्ति दिवस है। आप मुझे आज्ञा दे दें।" मामा जी कब मानने वाले थे। धमकाते हुए कहा "सीधा हो कर घर चल पड़, नहीं तो अच्छा न होगा।

मामा जी के कठोर शब्द सुन कर पंडित साईंदत्त जी ने अर्घ्य दिया और आचमन कर के उन के साथ हो लिए। आप का शरीर कृश होने पर भी मस्तिष्क में ज्ञान कला विकसित हो चुकी थी। अनुष्ठान में एक दिन की न्यूनता होने पर भी वे अपने कार्य में

कृतकृत्य हुए थे। विद्वत्ता के साथ ईश्वर आराधना ने स्वर्ण में सुगंध का सा काम किया था। घर पहुंचे। सब के उल्लास का ठिकाना न रहा। पूज्य माता जी ने अपने बिछुड़े हुए लाल को पाकर अपने नेत्रों और संतप्त हृदय को शांत किया एवं अपने भाई जी का हृदय से धन्यवाद किया।

पंडित साईंदत्त जी द्वारा मृत बालक को जीवित करना पंडित साईंदत्त जी के घर आ जाने के पश्चात एक विचित्र घटना घटी। ग्राम के मुखिया का एक मात्र पुत्र जब अपने समवयस्कों के साथ खेल रहा था तो अकस्मात उस की मृत्यु हो गई। जब उस के माता पिता को यह सूचना मिली तब उन के पास रोने पीटने के सिवाय और क्या था। उन्होंने कुछ वैद्य हकीमों को बुलाया, पर सब के सब सिर हिला कर चले गये। अन्त में विवश हो कर वहीं पर अर्थी प्रस्तुत कर के उसे ले कर जलाने के लिए चल पड़े।

मार्ग में पूज्य पंडित साईंदत्त जी का निवास स्थान था। जब उपर्युक्त अर्थी आप के घर के आगे से निकली तब आप जल्दी से घर के बाहिर आ कर बोले, "ठहरो! यह अर्थी किस की है, और इस की मृत्यु का क्या कारण है?" पंडित जी के कहने पर अर्थी वहीं ठहरा ली गई। लोग कहने लगे कि अमुक सरदार का पुत्र अपने सखाओं के साथ खेल रहा था तो अचानक उस की मृत्यु हो गई है। पंडित जी ने कहा—"बस। यही इस की मृत्यु का कारण है। अर्थी को पृथ्वी पर रख दो और बालक के मुख से वस्त्र हटा दो।"

तदनन्तर आप ने उस अर्थी के चारों ओर जल का छींटा कर के और थोड़े से चावल हाथ में ले मन्त्र उच्चारण करते हुए दक्षिण दिशा की ओर फेंके। चार पांच मिनट पश्चात उसी दिशा से एक बिखरे बालों वाली कुरूपा स्त्री रोती पीटती हुई आकर खड़ी हो गई और कहने लगी, "महाराज! क्या आज्ञा है, और इतना कठोर व्यवहार किस लिए कर रहे हैं?" तब आप क्रुद्ध हो कर बोले, "क्यों री दुष्टे! तू ने इस निरीह बालक के प्राण क्यों छीने? क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती? यह अपने माता पिता का इकलौता पुत्र है। पता नहीं तू कितने घोर पापों के कारण इस दशा को पहुंची है।"

इस फटकार को सुनते ही वह स्त्री "क्षमा! क्षमा!" की प्रार्थना करने लग पड़ी। परन्तु पंडित जी ने कहा, "मैं तुम्हें तब तक क्षमा नहीं करूंगा जब तक तू इसे जीवित न करेगी।" उस स्त्री ने बहुत विनय के साथ प्रार्थना की कि "महाराज इस के जीवित होने का केवल एक ही साधन है कि इस के स्थान पर कोई और प्राणाहुति दे।" यह सुनते ही उस के माता पिता ने कह दिया, "हम दोनों में से एक के प्राण इस में डाल दो।" परन्तु इस प्रस्ताव को किसी ने भी स्वीकार न किया। अन्त में एक पशु के प्राण हर कर उस बालक को जीवित किया गया और उस स्त्री से ऐसा घृणित कर्म फिर कभी न करने की प्रतिज्ञा लेकर उसे क्षमा कर दिया गया।"

पंडित साईंदत्त जी द्वारा मन्त्र शक्ति से यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करना और वर्षा को लाना एक बार वर्षा बिल्कुल नहीं हुई। अटारी के सरदार ने वर्षा हेतु यज्ञ

करवाया। इस में आप को भी निमन्त्रित किया गया। यज्ञ प्रारंभ हुए तीन दिन व्यतीत हो चुके थे। चौथे दिन इन के मन में विचार आया कि चलो देखें तो सही वहां क्या हो रहा है। आज चार दिन यज्ञ करते हो गये परन्तु वर्षा तो हुई नहीं। इस विचार को हृदय में लेकर अटारी की ओर चल पड़े। जब यज्ञ मण्डप में पहुंचे तो सभी विद्वानों ने उठ कर आदरपूर्वक सन्मान किया।

जब हवन के लिए समिधा जलानी थी आप ने उसे अग्नि द्वारा जलाने की अनुमति न देते हुए कहा, "यदि हमारे अग्निप्रचण्ड करने वाले मन्त्रों में अग्निप्रचण्ड करने की शक्ति नहीं हैं तो फिर ऐसे यज्ञ से वर्षा भी नहीं हो सकती।" आप ने स्वयं मन्त्र उच्चारण कर जब "स्वाहा" के साथ चावलों को समिधा पर फेंका तो अग्नि प्रज्वलित हो गई। और उस दिन वर्षा भी इतने वेग से हुई कि यज्ञ करने में भी बाधा पड़ने लगी।

पंडित साईंदत्त द्वारा नव विवाहित मृत व्यक्ति को जीवित करना

नौशहरा में एक बाल सिंह सूतिया नामी किसान रहता था। जो लगभग १०४-१०५ वर्ष की आयु भोग कर मरा है। वह सुनाता था कि, "मेरे दादा के बनहोई जिस समय दूल्हा बन कर हमारे घर आये थे उस समय उन के विवाह के दो घंटे पश्चात ही उन की मृत्यु हो गई। इस से गांव की समस्त जनता में हाहाकार मच गया। उस समय पंडित साईंदत्त जी नौशहरा में आये हुए थे। एक व्यक्ति दौड़ा २ आप के पास गया और कहने लगा कि ऐसी घटना हुई है चलिए उस किसान पर दया कीजिए। आप का हृदय दयार्द्र हो गया। आप उस व्यक्ति के साथ ही उक्त घटना स्थल पर पहुंच गये। घर के एकान्त कमरे में न जाने आप उस दूल्हे के साथ क्या कुछ करते रहे। परन्तु एक घन्टे पश्चात उसे जीवित कर के अपने साथ बाहिर ले आये।"

३. पंडित कन्हैया लाल जी पंडित साईंदत्त जी के घर पंडित सुख दयाल और पंडित कन्हैया लाल जी नामक दो पुत्र हुए। अन्त में आप ५२ वर्ष की आयु भोग कर स्वर्गारोहण कर गये। पंडित सुख दयाल जी अपने समय के एक उच्चकोटि के विद्वान थे, और पंडित कन्हैया लाल जी बड़े श्रद्धालु महानुभाव थे। आप के अन्तःकरण में सरलचित्तता ने विशेष स्थान बना रखा था। आप जीवन पर्यन्त वैद्यक का कार्य करते रहे।

४. पंडित गण्डा राम जी वि० संवत १९०४ कार्तिक कृष्णा नवमी चन्द्रवार को पंडित कन्हैया लाल जी के यहां पंडित गण्डा राम जी ने जन्म लिया। पंडित गण्डाराम जी के पालन पोषण एवं यज्ञोपवीत संस्कार आदि का कार्य इकलौता पुत्र होने के कारण बड़े समारोह के साथ किया गया। उन्होंने अमृतसर के प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य पंडित विष्णु दास जी से विद्या प्राप्त की।

आप ने संवत १९३३ चैत्र मास में कटड़ा भाई संत सिंह, अमृतसर में एक दुकान किराये पर लेकर ज्योतिष का काम आरंभ किया। और साथ ही अपने पूज्य पिता पंडित

कन्हैया लाल जी की आज्ञानुसार अपनी संतान को भी गांव से लेकर अमृतसर में रहने लगे। जिस समय आप ने कार्य आरंभ किया। उस समय आप के घर एक कन्या और एक पुत्र तीर्थ राम जी थे।

पंडित गण्डा राम जी अत्यंत मनोयोग से विद्या पढ़ चुकने के कारण और गुरु जी के आशीर्वादों के कारण ज्योतिष शास्त्र के धुरंधर एवं सफल मर्मज्ञ हो गये थे। यही कारण था कि सर्वत्र यथेष्ठ प्रसिद्धि थी। भक्ति मार्ग में उन की अधिक प्रवृत्ति थी। शरीर पर अत्यंत प्रभावशाली तेज विराजता था। मस्तक या जिह्वा पर ईश्वर शक्ति आसीन थी। और मुख महान ओजस्वी एवं सुन्दर था। उस समय आप के विषय में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध थी कि आप ने यक्षिणी सिद्ध कर रखी है।

वि० संवत १९४२ में आप के घर युगल पुत्र उत्पन्न हुए जिन के नाम पंडित रामशरण दास तथा पंडित हरिकृष्ण जी रखे गये।

५. **श्री १००८ योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज का जन्म** जैसा ऊपर लिख आये हैं विक्रमी संवत १९४५ चैत्र शुक्ला नवमी बृहस्पतिवार इष्ट ६ घड़ी ५६ पल वृष लग्न पर हमारे परम पूज्य श्री १००८ प्रभु राम लाल जी महाराज ने श्री पंडित गण्डा राम जी के घर जन्म लिया।

आप के पूज्य पिता जी ने जब आपका जन्म पत्र बनाया तब अत्यंत प्रसन्नता से मुस्कराते हुए कह उठे, "यह बालक योगियों में श्रेष्ठ और योग का प्रकाश करने वाला होगा।"

श्री १००८ योगेश्वर प्रभु राम लाल जी शैशव में ही कहीं भगवान के चित्र देखते तो उन में टकटकी लगा लेते थे। माता पिता व अन्य किसी से भगवद् गुणानुवाद सुनते तो सब बातों को भूल कर उसी में तल्लीन हो जाते थे। आप के पूज्य पिता बालक के भक्ति रूप लक्षणों को देख कर प्रसन्न होते। इन में जन्म जात सिद्धियों का वास था। जब ये लगभग एक वर्ष के ही थे तो इन के दर्शन मात्र से एक मरणासन्न वृद्धा स्त्री मृत्युशय्या से उठ बैठी और उस ने पूर्ण स्वास्थ्य लाभ किया। पांच वर्ष की आयु में जब ये पाठशाला में प्रविष्ट हुए तो इन की अलौकिक प्रतिभा से इन के अध्यापक स्तब्ध रह गये। आठ वर्ष की आयु थी तो एक योगी महात्मा अमृतसर में आया। उस ने इन के नन्हें रूप में दिव्य ईश्वरीय दर्शनों का लाभ प्राप्त किया।

श्री प्रभु जी छोटी अवस्था से ही योगी सद्गुरु की खोज में लग गये। १५ वर्ष की आयु में वे हरिद्वार, ऋषिकेश, ब्रह्मपुरी और उस से आगे के वनों में इसी उद्देश्य से पधारे। परन्तु वहां किसी सिद्ध योगी से साक्षात्कार न हुआ। घर लौटने पर इन के माता पिता ने इन के विरक्त भाव को देख इन का विवाह कर दिया। परन्तु श्री प्रभु जी को यह बन्धन प्रभावित न कर सका।

बीस वर्ष की आयु होने पर ये दृढ़ संकल्प से घर छोड़ कर चले गये। सर्व प्रथम इन्होंने काठगोदाम, मुरादाबाद, मथुरा, आगरा, काशी आदि स्थानों में पदार्पण किया। बहुत

से अधिकारी वर्ग को योग की शिक्षा दी। जसपुर ग्राम में एक कुम्हार बालक को खेचरी की सिद्धि प्रदान की। अलमोडा की अयोध्या में दुखिया अवधूतानी को दिव्य समाधि का दान दिया। तथा काशी में वाम मार्गियों को योग मार्ग में लगाया। पर इस यात्रा में भी उन्हें अभीष्ट योगी सद्गुरु के दर्शन नहीं हुए।

फिर श्री प्रभु जी दक्षिण दिशा में गये और नर्बदा नदी के साथ २ पश्चिम की ओर चले। उस समय उन के साथ शिष्य रूप में एक बड़ी साधु मण्डली भी थी। इधर आप ने अपनी अलौकिक शक्ति से कई भूतग्रस्त स्थानों की शुद्धि की। एक ब्राह्मण बालक हरि राम (हरिहरानन्द) की भक्ति, दानशीलता और शूरवीरता पर प्रसन्न हो उसे योग की उच्च स्थिति तथा योग सिद्धियों का दान प्रदान किया। बहुत से तपोनिष्ठ महात्माओं को दर्शन दिये। और इसी प्रसिद्ध यात्रा के मध्य दो योग शरीरों की रचना कर एक शरीर नासिक नगरी में त्याग दूसरे शरीर से उत्तर की ओर शिष्यमण्डली सहित चल पुष्करराज महातीर्थ में पहुंचे। और वहां से फिर अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए पूर्व दिशा की लंबी यात्रा स्वीकार की।

श्री प्रभु जी की यह यात्रा अत्यंत महत्वपूर्ण थी। बंग-बिहार सीमा पर इन्होंने एक कुसंगग्रस्ता लड़की रामरत्ती को सन्मार्ग पर लगाया और योग समाधि का दिव्य दान प्रदान कर उसे जगत्पूज्या बना दिया। पटना मे श्याम नारायण वकील को शरण में लिया। एक निर्दोषी ब्राह्मण बालक को फांसी के दण्ड से मुक्त करवाया। हरिहरराय जज को योग की दीक्षा दी। और हरनाम दास तपस्वी को सिपाहियों के चंगुल से छुड़ा कर योग समाधि में बिठला सुखी किया।

बंग देश में आशुतोष चैटरजी नामक जज और उस की धर्मपत्नी रामा की सेवा पर प्रसन्न होकर उन्हें योग की शिक्षा दी और रामा को योग की उच्चस्थिति का दान प्रदान किया। फिर आसाम देश के भयंकर वनों, जंगली हाथियों, नर संहारी मनुष्यों और भयंकर वन्य पशुओं से संकीर्ण स्थलों में से होते हुए ब्रह्मपुत्र नदी को पार कर 'मय' नामक ग्राम में राजा रणसिंह और उस के योगी गुरु से मिले।

वहां से लौट कर श्री प्रभु जी ने नेपाल की यात्रा की। नेपाल के राजपरिवार को दर्शन दिये। वहां पर अपनी मण्डली को त्याग अकेले ही दूर उत्तर की ओर चल पड़े यहां पर भगवान शिव अवतारी महाप्रभु जी इन को लेने के लिए सुमेरु पर्वत से स्वयं पधारे और श्री प्रभु जी को वे आकाश मार्ग से अपनी परमपावनी अगम्या गुफा में ले गये।

भगवान श्री शिव अवतारी महाप्रभु से कुछ वर्षों तक पूर्ण योग की शिक्षा मर्यादा रूप से प्राप्त कर और उन की आज्ञा को शिरोधार्य कर श्री प्रभु जी सुमेरु पर्वत से लौट बस्तियों में आये और योग का दिव्य संदेश जगत को दिया, ध्यान समाधियों के दान का प्रवाह प्रवाहित किया, अधिकारी वर्ग को शरण में लेकर इस लोक और परलोक की संपदा प्रधान की और लुप्त योग विद्या के पुनरुद्धार के लिए **योग साधन आश्रम** की स्थापना की। इन्होंने अपने परम शिष्य श्री १०८ स्वामी मुलख राज जी महाराज को दश वर्ष की अखण्ड समाधि की

स्थिति में रखा और उन्हें अपना स्वरूप बना कर अपने स्थान पर प्रतिष्ठित किया। और स्वयं गुरु आदेश को प्राप्त कर सुमेरु पर्वत पर पुनः जाते समय ५१ वर्ष की आयु में एक प्राकृत शरीर को त्याग, दूसरे योग दिव्य शरीर से प्रस्थान कर गये।

हमें आशा है कि श्रद्धालु भक्त जन प्रेम पूर्वक इस 'योग महा दिव्य रामायण' में वर्णित श्री करुणावतार प्रभु जी की दिव्य योग लीलाओं के पठन, पाठन, श्रवण व मनन द्वारा सदैव लभान्वित होते रहेंगे। जो जन श्रद्धापूर्वक श्री प्रभु जी को स्मरण करते हैं उन पर करुणा सागर जी की करुणा सदा बनी रहती है।

ओं शांति, शांति, शांति।

विनीत :

'सेवक' चमन लाल कपूर

श्री योग महादिव्य रामायण की

प्रसंग सूची

१ बाल काण्ड

संख्या	प्रसंग विषय	पृष्ट
१.	मंगलाचरण	१
२.	दिव्यजन्म	३
३.	वृद्धा को जीवन दान	६
४.	विद्या आरम्भ	८
५.	सिद्ध द्वारा सत्कार	१०
६.	राम तीर्थ के मार्ग पर विरोधियों को परास्त करने की दिव्य लीला	१४
७.	उपाख्यान ब्रह्मा पर माया का प्रभाव	१६
८.	बाल्य काल की विलक्षण दिव्य लीलाएं	२६
९.	काशी में पं० शिव कुमार से विद्या ग्रहण	३२
१०.	कनखल में विद्या ग्रहण	३८
११.	प्रबल वैराग्य को देख माता पिता द्वारा विवाह रचाना	४२
१२.	पितृवर्य पं० गंडाराम का देहावसान	६३
१३.	हरिद्वार ऋषि केश और ब्रह्मपुरी वन में योगी गुरु की खोज	६५
१४.	प्रतीकोपासक लोटे वाले साधु से साक्षात्कार	७०
१५.	जय राम से भेंट	७४

२ वन काण्ड

१.	काठ गोदाम में राज्य वंश को दीक्षा दान	७७
२.	मुरादाबाद में पदार्पण	८३
३.	वन तीर्थ के सिद्ध योगी पुरुष का उपाख्यान	८४
४.	श्री प्रभु जी का वन तीर्थ में पदार्पण और बाबा लक्ष्मण दास से भेंट	८९
५.	जसपुर में कुम्हार बालक को शरण प्रदान	९०
६.	अयोध्या (अलमोड़ा) में अवधूता को योग दीक्षा देना	९४
७.	मथुरा में जय राम को विषयों से विरक्त रहने का उपदेश	१०२
८.	सवाई में प्रथम पदार्पण	१०५
९.	काशी में शंकर पूजा और प्रण	१०८
१०.	काशी में योगाभ्यासी ब्रह्मचारी को दर्शन देने	१११
११.	पांडा भक्त को अष्टांग योग का उपदेश	११४
१२.	गया जी में योग शक्ति से वाम मार्ग का खण्डन	११७

संख्या	प्रसंग विषय	पृष्ट
१३.	दक्षिण दिशा को प्रस्थान, नर्बदा परिक्रमा	१२२
१४.	शिष्य का धर्म	१२४
१५.	प्रेत ग्रस्त मंदिर का उद्धार	१२६
१६.	ब्राह्मण युवक हरिराम (हरिहरानन्द) को अपनाना	१३५
१७.	षट् चक्रों में देवतांओं के वास का वर्णन	१४५
१८.	भ्रांत रूहों द्वारा मण्डली को भयभीत करना और श्री प्रभु जी द्वारा रक्षा	१४८
१९.	खप्पर वाले साधु का गर्वचूर	१५०
२०.	जन संतापी क्रोधी साधु को शिक्षा	१५४
२१.	तपस्वी दंपती को योग दीक्षा	१६०
२२.	सिंह स्वामिनी साध्वी और उसके योगी गुरु से मिलाप	१६४
२३.	जलभीतर स्माधिस्थ योगी	१७०
२४.	दो शरीरों की रचना और एक शरीर का नासिक नगर में त्याग	१७४
२५.	पुष्कर राज में पधारना	१७६
२६.	पटना नगर में श्याम नारायण वकील को शरण में लेना	१७८
२७.	निर्दोषी ब्राह्मण बालक की मृत्युदण्ड से रक्षा करवानी	१८०
२८.	हरिहरराय जज को शरण प्रदान	१८५
२९.	तपस्वी हरनामदास को योग समाधि प्रदान करना तथा योग का रहस्यमय ज्ञान देना	१८६
३०.	हरनाम दास द्वारा अपना पूर्व वृत्तान्त कथन करना	१९३
३१.	रामरत्तो को योग दान	१९९
३२.	रामा को भक्ति दान	२०८
३३.	हरिहरानन्द का मारवाड़ प्रदेश में गमन	२१५
३४.	रामा द्वारा स्वर्ग से दिव्य पुष्प लाना	२२४
३५.	हरिहरानन्द का मारवाड़ से लौटना	२२६
३६.	नदिया से श्री प्रभु जी का प्रस्थान और रामा की व्याकुलता	२२७
३७.	छूत का भूत	२३५
३८.	क्लिष्ट अक्लिष्ट वृत्तियों का वर्णन	२३९
३९.	'गोहाटी की अवधूता' द्वारा श्री प्रभु जी का स्वागत	२४४
४०.	एक मानी अवधूता को योग शिक्षा	२४८
४१.	गणक से मिलाप	२५२
४२.	घोर वन यात्रा का आरंम्भ	२५७
४३.	नागाओं द्वारा श्री प्रभु जी का अपहरण	२५७
४४.	गंदले जोहड़ से जल न लेना व कई दिन जल बिना निर्वाह करना	२६२
४५.	जंगली भैंसों द्वारा प्रहार	२६५
४६.	जंगली हस्तियों द्वारा आक्रमण	२६७

संख्या	प्रसंग विषय	पृष्ट
४७.	अंधेरी रात्री में कीचड़ के ताल में फंस जाना	२७०
४८.	नर-भक्षी नदी को पार करते समय नाविक द्वारा षड्यन्त्र व मन्त्र का प्रयोग	२७३
४९.	नाविक के उकसाने पर मार्ग के गावों से भोजन उपलब्ध न होना	२७६
५०.	सिद्ध योगी और पांच बालकों का उपाख्यान	२७८
५१.	मंय ग्राम में प्रवेश	२८४
५२.	मंय राज्य के राजा रणसिंह का श्री प्रभु जी और उनके शिष्यों पर मारण मन्त्र का निष्फल प्रयोग	२८६
५३.	राजा रण सिंह को आकाशवाणी द्वारा श्री प्रभु जी की शक्ति का ज्ञान	२८७
५४.	श्री प्रभु जी का सिद्ध योगी से मिलाप	२८९
५५.	नेपाल की यात्रा	२९३
५६.	अघोरी ज्ञान गिर पर श्री प्रभु जी की शक्ति का प्रभाव	२९६
५७.	नेपाल राज्य में भव्य स्वागत	३०१
५८.	महा प्रभु मिलाप	३०६
६०.	श्री महाप्रभु की छः मास की समाधी	३०८
६१.	सैंकड़ों वर्षों की दीर्घायु वाले योगी से मिलाप	३१०
६२.	अहंकारी साधु के पास जा कर निराश लौटना	३१२
६३.	मेंडक भक्षी अघोरी द्वारा प्रभु जी को ठगने का निष्फल प्रयास	३१२
६४.	समाधिस्थ श्री प्रभु जी का बर्फ में दब जाना	३१३
६५.	छः मास व्यतीत होने पर श्री महाप्रभु का समाधि से उत्थान	३१६
६६.	मन महेश पर्वत पर श्री प्रभु जी का आकाश मार्ग से गमन	३१८
६७.	पंद्रह दिन के पश्चात श्री प्रभु जी का समाधि से उत्थान	३२१
६८.	श्री महाप्रभु जी की गुफा के पास मण्डप निर्माण की सेवा	३२३
६९.	श्री महाप्रभु जी का पुनः छः मास बाद समाधि से उत्थान और दिव्य योग समागम	३२४
७०.	ज्ञान और मोक्ष का एक मात्र साधन योग	३२५
७१.	कर्मयोगी-वीरयोगी	३२७
७२.	प्रभु राम का हिमालय से लौटना	३२९
७३.	रामरत्ती का समाधि से उत्थान	३३०
७४.	श्री प्रभु जी का सवाई में दूसरी बार पदार्पण	३३५
७५.	श्री प्रभु जी के आस पास सांप ही सांप	३३७
७६.	सवाई में सिद्ध गुफा का निर्माण	३४०
७७.	बच्चों से सांपों का फेंकवाना	३४२
७८.	पवित्र तालाब का निर्माण	३४२
७९.	ठाकुर चन्दनसिंह को आशीर्वाद रूपी माला का दान	३४४

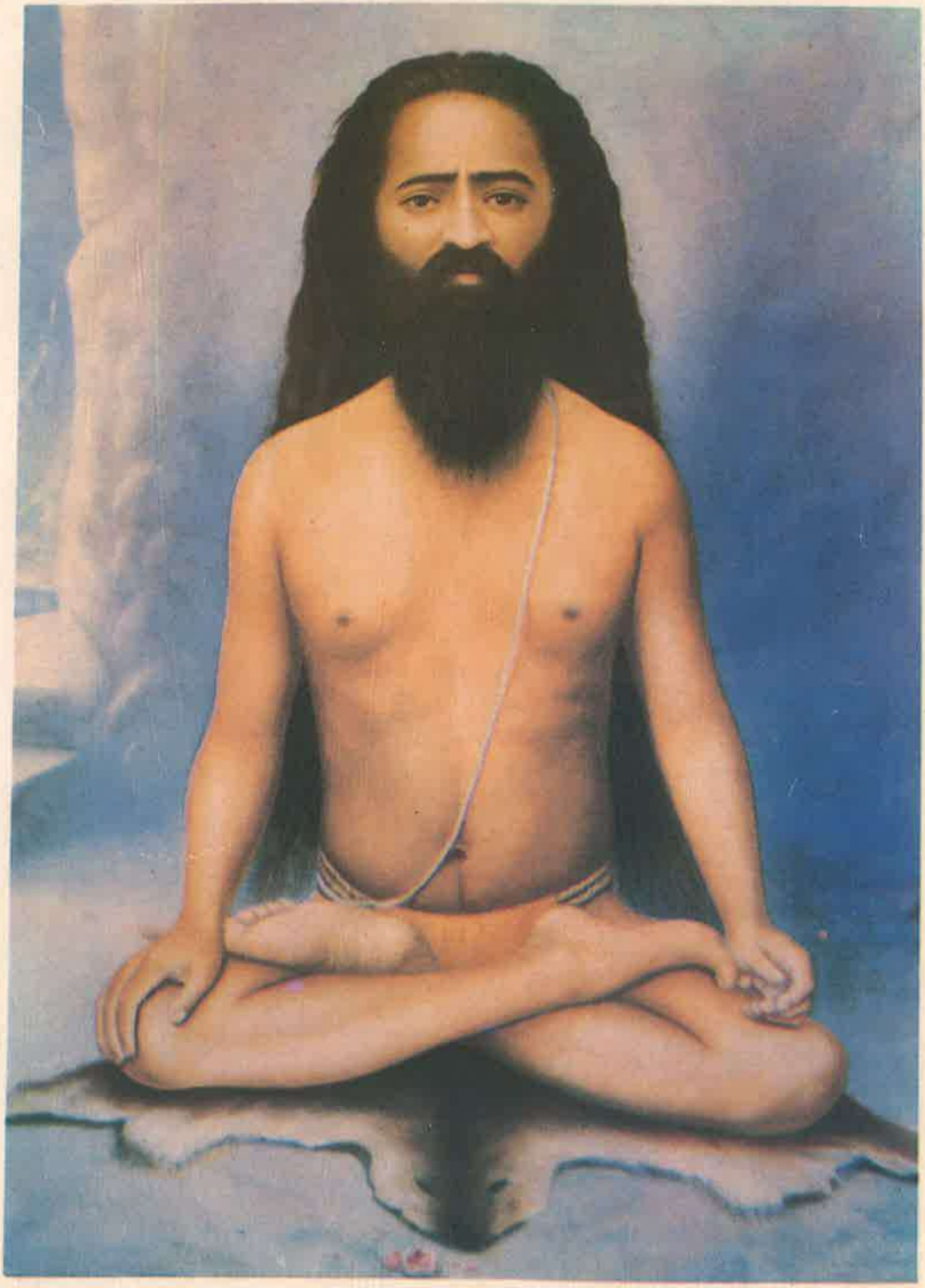
संख्या	प्रसंग विषय	पृष्ठ
८०.	भक्त जौहरी सिंह को चवन्नी देकर धनाढ्य बनाना	३४५
८१.	ठाकुर दास को चार पुत्रों का दान	३४७
८२.	ठाकुर बाबु राम को चरण पादुका देना	३४९
८३.	भक्तों के हित के लिए तीन शरीर प्रकटाना	३५२
८४.	ज्वाहर पहलवान का गर्व चूर्ण	३५५
८५.	ठाकुर गुलाबसिंह को कुएं में गंगा माता के दर्शनों का दान	३५७
८६.	जीवन तत्व साधन और कृषक पर कृपा	३५९
८७.	सूक्ष्म रूप धारण कर गुफा से निकलना तथा आकाश मार्ग से सभायीं से प्रस्थान	३६७
८८.	हरिद्वार में आगमन और योग प्रचार	३७०
८९.	दश प्रकार के प्राण तथा प्राणायामी के लक्षण	३७१
९०.	नाड़ी शुद्धि प्राणायाम	३७३
९१.	योगावस्था का लक्षण	३७४
९२.	योगी क्या त्यागे	३७५
९३.	योगी क्या ग्रहण करे	३७५
९४.	कुम्भक की तीन अवस्था	३७६
९५.	योग का प्रभाव	३७६
९६.	रोग विनाशी सरल प्राणायाम	३७७
९७.	बीज मन्त्रों व षट चक्रों का बोध	३७९
९८.	षट् चक्र सिद्धि का फल	३८४
९९.	सहस्रार पद्म विवरण	३९०
१००.	ब्रह्मपुरी में हीरागिरी से मिलाप	३९४
१०१.	अवधूत कृपालानन्द तथा उसकी शिष्या मेम का प्रसंग	३९६
१०२.	अवधूत कृपालानन्द की श्री प्रभु जी से भेंट	३९८
१०३.	हरिद्वार में कुम्भ के अवसर पर	४०७
१०४.	श्री प्रभु जी को घर लाने का दैवी प्रयास	४०९
१०५.	देवताओं का वास कहां	४१२
१०६.	भाई तीर्थ राम और श्रीमती सुभद्रा आदि का हरिद्वार जाना	४१४
१०७	श्री प्रभु जी से भाई का मिलाप	४१८



श्री दिव्य रामायण सहगान

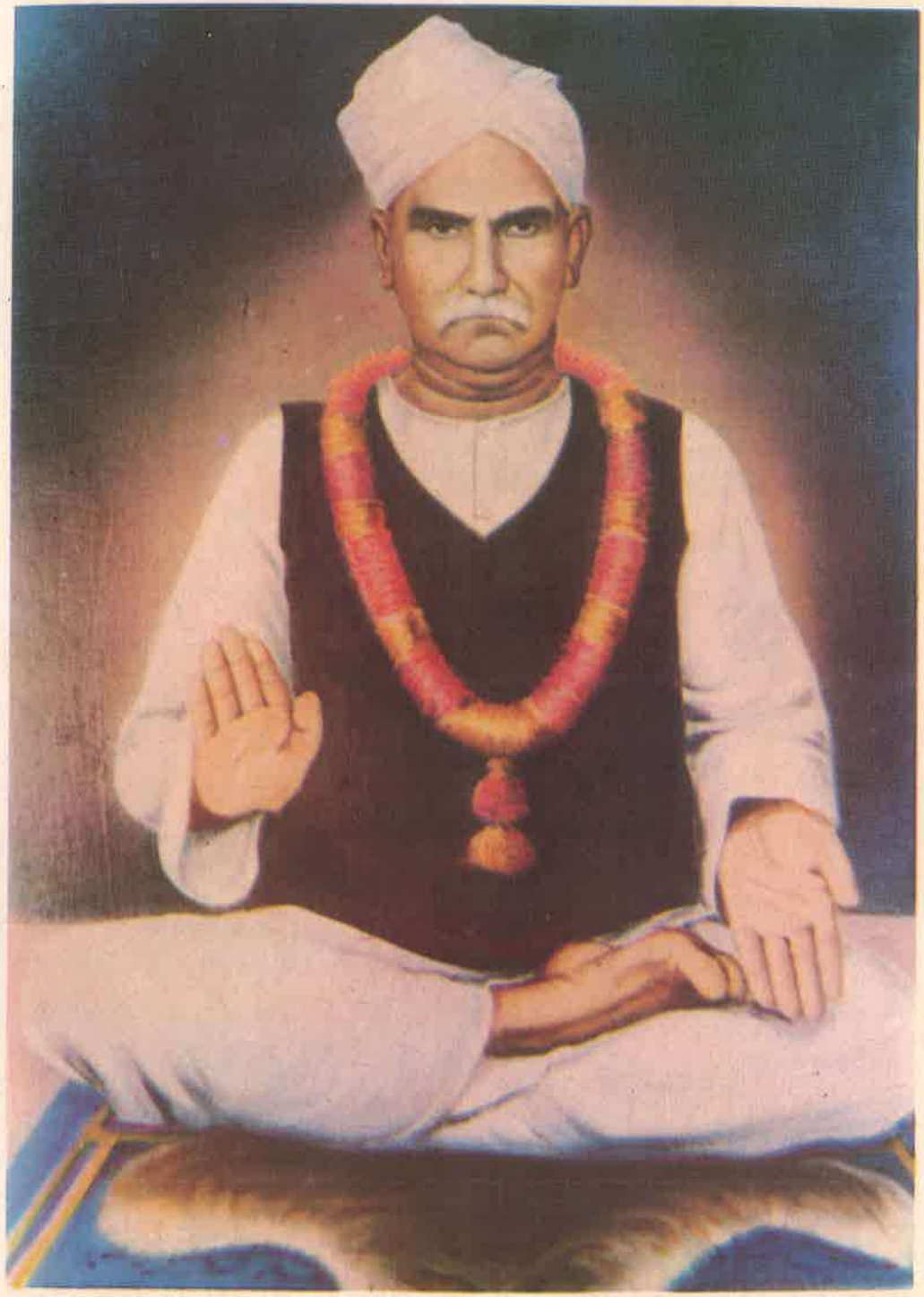
दिव्य रामायण की गाथा को,
जो नर सुने सुनावे ।
जीवन में रहे सुखी हमेशा,
अंत परमपद पावे ।।
श्री प्रभु गंडाराम दुलारे,
इस में उन के खेल हैं न्यारे ।
पतित पावनी कथा मनोहर,
भक्तन के मन भावे ।।
सुन्दर यह इतिहास मनोहर,
लीला कीनी जिमि योगेश्वर ।
योग साधना की पावस ऋतु,
योगामृत बरसावे ।।
उत्तम नीति इस में आई,
भक्त जनों के जो मन भाई ।
इस के सुनने से प्राणी का,
पाप नाश हो जावे ।।
श्री प्रभु राम लाल हैं नायक,
जीव चराचर के सुखदायक ।
उन के चरण कमल का भौंरा,
'सेवक' शीश झुकावे ।।

ओ३म् नमः श्री रामलाल प्रभुजी परब्रह्मणे नमः



श्री 1008 योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज

ओ३म् नमः श्री रामलाल प्रभुजी परब्रह्मणे नमः



श्री 108 स्वामी मुलखराज जी महाराज

ॐ

श्री योग महादिव्य रामायण

(अथ बालकाण्ड – प्रथम काण्ड)

१. मंगलाचरण

दो० – राम लाल व्यापक विभु, सकल जगत के ईश ।
दीन बन्धु अशरण शरण, नमो नमो योगीश ।। १ क

नमो नमो संकट हरण, ब्राह्मण वंश दिनेश ।
योग रूप पावन परम, नमो नमो सर्वेश ।। १ ख

अगुण अरूप अभेद कृपालो, दुष्ट दलन अघहरण दयालो ।
त्रिगुणातीत जगत से न्यारे, परमोज्ज्वल भक्तन के प्यारे ।
निराकार साकार स्वरूपा, चिदानंद भूपन के भूपा ।
ब्रह्मा रूप सृष्टि के करता, शिव स्वरूप भव के संहरता ।
विष्णु रूप प्रभु पालन हारे, त्रिगुणात्मक पावन उजयारे ।
मच्छ कच्छ प्रभु रूप तिहारा, शूकर नर हरि तन तुम धारा ।
वामन बन बलि मान मिटाया, परशु धार कर धर्म बचाया ।
राम रूप सबके मन भाया, कृष्ण रूप गीता को गाया ।

दो० – बोध रूप धर कर प्रभु, दिया अहिंसा दान ।
रामलाल बन कर विभु, आय यहां भगवान ।। २ क

रामलाल भगवान की, लीला करूं बखान ।
देना भक्ति अनन्य का, 'बेज़र' को प्रभु दान ।। २ ख

प्रभु लीला संतन को भावे, दुष्ट जनों को नाहिं सुहावे ।
संशय रहित मनों को प्यारी, मन वांछित फल देवन हारी ।
प्रभु चरणन में प्रीति जिनकी, अमर कथा प्यारी है तिनकी ।
पर अकाज जिनको है प्यारा, उनके होत न शुद्ध विचारा ।
प्रभु लीला नहीं उन्हें सुनावो, ज्ञानामृत नहीं उन्हें पिलावो ।
श्वान को तस्मै वृथा खिलानी, घाणहीन जिमि धूप जलानी ।
ताम्र पात्र में दधि नहीं पावें, जो पावें वे वृथा गवावें ।
दुष्ट हृदय उपजे नहीं ज्ञाना, मिलें गुरु उनको शत नाना ।

दो०-पापी पामर मंद मति, पर निन्दा में लीन ।
तिने प्रभु लीला न कहूं, जो जड़ बुद्धि विहीन ।। ३ क

प्रभु लीला रुचिकर तिने, जिनके भाग्य महान ।
सुन प्रसन्न होते वही, जो नर संत सुजान ।। ३ ख

प्रथम प्रभु को शीश निवाऊँ, कविजन के चरणन कर लाऊँ ।
साधु संत पर मैं बलिहारी, करते धर्म की जो रखवारी ।
पंडित ब्राह्मण जो उपकारी, तिने बंदना सदा हमारी ।
सकल देव मुझ को हैं प्यारे, प्रभु लीला जो गावन हारे ।
जिनके मन प्रभु लीला भावे, कवि को तिनका नाम सुहावे ।
रामलाल प्रभु अन्तर्यामी, कृपा करें 'बेज़र' पर स्वामी ।
लीला अपनी आप बतावें, लेखनी मेरी नाथ लिखावें ।
धन्य कहूं अपने को भाई, दया प्रभु की मो पर आई ।

दो०-कविता में गाने लगा, 'बेज़र' प्रभु गुण गान ।
प्रभु जी मेरी लेखनी, कर देनी बलवान ।। ४ क

पावन गुप्त रहस्य को, प्रकट करूं मन लाय ।
निज लीला लीला पति, देनी मोहे बताय ।। ४ ख

२. दिव्य जन्म

जब जब होत धर्म बलहीना, दुख पावत गौ ब्राह्मण दीना ।
पाप कर्म जब अति बढ़ जावें, धर्मी पुरुष नज़र नहिं आवें ।
तब तब प्रभु नर तन को धारें, पापी सहित पाप को मारें ।
धर्म कर्म की रक्षा करते, साधु संत के दुख प्रभु हरते ।
कलि में देख धर्म की हानी, चार दिशा देखी मन मानी ।
तब वह चिदानन्द प्रभु स्वामी, सुख दाता श्री अन्तर्यामी ।
प्रकटे प्रभु वह अमृतसर में, ज्योतिषी गंडाराम के घर में ।
गंडाराम ज्योतिषी भारी, उनको मानत सब नर नारी ।

दो० उज्ज्वल ब्राह्मण वंश में, प्रकट भये सर्वज्ञ ।
नत मस्तक सबही हुए, अज्ञ और अल्पज्ञ ।। ५ क

चैत्र मास पावन परम, सुदी नवमी शुभ जान ।
कलिमल हारी भवपति, प्रकटे श्री भगवान ।। ५ ख

छन्द :- प्रकटे प्रभु दीनन दुख हरता, करता इस सकल चराचर के ।
अघ नाशक त्रिलोक प्रकाशक, पालक सब नर नारी के ।
प्रभु सबके स्वामी अन्तर्यामी, तारक हरि भवसागर के ।
ब्राह्मण कुल रवि कोटि मदन छवि, सुखदायक कवि बेज़र के ।

दो० श्री प्रभु गंडाराम सुत, अखिल विश्व विश्राम ।
तिनके चरणों पर करे, बेज़र कवि प्रणाम ।। ६ क

अति प्रसन्न माता भई, जगत बधाई देत ।
दान पिता जी करत हैं, हो प्रसन्न सब लेत ।। ६ ख

सुमन देवता मिल बरसावें, देवांगनां गीत मिल गावें ।
अति उत्साह करे सब कोई, कहें कामना पूरण होई ।
अति प्रसन्नता वरणि न जाये, सकल नगर के जन हरषाये ।
पिता ज्योतिषी लग्न लगावें, ग्रह गति देख अचम्भा पावें ।
गंडाराम कहें सुन भाई, इस बालक की अति प्रभुताई ।
वही अजन्मा जन्म में आया, जगत पिता मम पुत्र कहाया ।
साधारण इसको मत मानो, अखिल विश्वपति इसको जानो ।
मम गृह प्रगटे अन्तर्यामी, दीन बन्धु प्रभु सब के स्वामी ।

दो० जो कुछ ज्योतिषी फल कहा, होत नहिं विस्तार ।
उस लोकेश अपार का, कोउ न पावत पार ॥ ७ क

नारद शारद देव गण, कर नहिं सकत बखान ।
तुमहि कहो कैसे कहे, बेजर सा अनजान ॥ ७ ख

नामकरण प्रभु का तब कीना, अमित दान पंडित जी दीना ।
रामलाल शुभ नाम उचारा, नाम लगा यह सब को प्यारा ।
रामनवमी के दिन प्रभु आये, रामलाल यह नाम सुहाये ।
नाम अनेक हैं जिनके प्यारे, रामलाल सब उन्हें उचारें ।
अर्ध नाम लेवत पितु माता, मंद मंद मुस्काते दाता ।
करें प्रभु जब तोतरी बाता, माता पिता जगत हर्षाता ।
सीखे रिड़ना सब के स्वामी, गिरते थे कभी अन्तर्यामी ।
जभी प्रेम से मात पुकारे, तब हंसें प्रभु जग से न्यारे ।

दो० इक से दूसर गोद में, लेते लोग उठाय ।
लोरी देवन नारियें, मन में अति हर्षाय ॥ ८ क

माता दूध पिलावती, पीते थे कर्तार ।।
नूतन दिवस में हो रहा, नूतन प्रेम अपार ।। ८ ख

प्रेम से जननी जब नहलावें, तब प्रभु वर कुछ रो दिखलावें ।
फिर माता सुत को पुचकारे, फिर मुस्काते प्रभु वर प्यारे ।
झूलन पर प्रभु झूलना झूलें, ब्रह्मादिक सुर वर सब भूलें ।
देख के मायापति की माया, अमृतसर क्या जग हर्षाया ।
कभी कभी त्रिभुवन के धनी, मूर्ति करि लेते अनमनी ।
तब माता ले मिरचें वारे, कहती जीवो तुम युग चारे ।
समय पाय प्रभु चलने लागे, कभी सोये स्वामी कभी जागे ।
बालक संगी खेलत आकर, हों प्रसन्न तब प्रभु को पाकर ।

दो० हमझोली मिल खेलते, खेलत जगदाधार ।
इक साथी से झगड़ते, इक से करते प्यार ।। ९ क

सारा जगत नचावती, माया जिसकी मीत ।
वे आंगन में नाचते, श्री प्रभु त्रिगुणातीत ।। ९ ख

जब नुकसान करें भव करता, तब माता डाँटे अघ हरता ।
प्रलय काल जो जगत डरावें, वह प्रभु जननी से डर जावें ।
कभी प्रभु योगी रूप बनाते, कभी चतुर्भुज प्रभु बन जाते ।
कभी विराट रूप दिखलावें, सूरज सम निज को चमकावें ।
जब विवेक में होती माता, तब निज माया डालत दाता ।
लीला करत अनेकहूं स्वामी, दीनबन्धु प्रभु अन्तर्यामी ।
निज भाग्यन को मात सराहे, प्यारे पुत्र लगे नहिं काहे ।
जगदाधार पुत्र जिन पाया, सब सुख तिनके गृह चलि आया ।

३. वृद्धा को जीवन दान

दो० अति प्रसन्न माता पिता, बन्धु सकल हर्षात ।
आनन्द में बीतन लगे, शनैः शनैः दिन रात ।। १० क

तीन वर्ष की आयु में, चरित एक प्रभु कीन ।
हुई अरोग्य इक भक्तनी, नीर पाय जनु मीन ।। १० ख

मातृ शक्ति इक मरने लागी, महाप्रस्थान को करने लागी ।
रोग ने उस को अधिक सताया, निर्बल हो गई उसकी काया ।
सब को हुई उसकी निराशा, टूट गई उसकी जब आशा ।
अंतिम दान करावन लागे, महि पर उसे लिटावन लागे ।
तब उस माता गिरा उचारी, प्रगटे हैं यहां प्रभु पापारी ।
प्रभु के गृह का पता बतावे, कहे दर्शन को मन ललचावे ।
इक दो पुरुष प्रभु गृह आवें, उनको देख ईश मुस्कावें ।
पितु की गोदि में आप विराजे, रति पति देख छवि को लाजे ।

दो० दोनों नर कहने लगे, वहां आने का भाव ।
इक माता को हो रहा, प्रभु दर्शन का चाव ।। ११ क

उसका है अन्तिम समय, निज सुत भेजो तात ।
इच्छा को पूरण करो, यह चाहती है मात ।। ११ ख

गंडाराम कहें सुन भाई, ले लो बालक गोदि उठाई ।
शंका नहीं मोरे मन कोई, प्रभु भावे होता है सोई ।
गोदी में इक ने प्रभु लीना, दोनों चले बिलम्ब न कीना ।
उस देवी के ढिग प्रभु आये, देख भक्त को प्रभु मुस्काये ।



बाल स्वरूप श्री प्रभु जी ने बुढ़िया को वरद हस्त से आशीर्वाद प्रदान कर स्वस्थ कर दिया।

अधरन पर जब श्वास थे, तब देखे भगवान ।
रोग सकल जाते रहे, हो गई सदा समान ।।

(दोहा १२ के सामने)

उस बुढ़िया ने दर्शन कीना, अपना जन्म सुफल कर लीना।
वैद्यों ने बल बहुत लगाया, नहीं अरोग्य फल उसने पाया।
असफल हो गये वैद्य विचारे, निज निज गृह वे सभी सिधारे।
लेने को यम किंकर आयें, राम ध्वनि नर नारि लगायें।

दो० अधरण पर जब श्वास थे, तब देखे भगवान।
रोग सकल जाते रहे, हो गई सदा समान॥ १२ क

उठ बैठी देवी तुरत, प्रभु दर्शन को पाय।
गज के सम निर्भय हुई, जब हरि पहुंचे आय॥ १२ ख

कृपा करें जिन पर प्रभु प्यारे, आवें रोग न तिनके द्वारे।
शरण प्रभु की जो अपनावें, यम किंकर तिस निकट न आवें।
जो मन प्रभु से भक्त लगाता, वह मृत्यु सागर तर जाता।
जगदाधार दया जब करते, सकल रोग क्षण में तब हरते।
भक्ति अनन्य करे जो भाई, मन इच्छा पूरण हो जाई।
अग्नि वरुण यम जिसके अनुचर, उसके भक्त को है किसका डर।
देवन देव जगत के स्वामी, सब उर वासी अन्तर्यामी।
भक्तों के प्रभु काज संवारें, डूबत को क्षण माहिं उबारें।

दो० सभी अचम्भे में हुये, देख अलौकिक बात।
नर नारि प्रभु देव पर, तन मन से बलि जात॥ १३ क

वह माता करने लगी, श्री प्रभु के गुण गान।
मुसका कर सुनने लगे, दीन बन्धु भगवान॥ १३ ख

छंद :- जय जय दीन दयालु कृपालो जय दुख हरण अनन्ता।
अघ नाशन भक्तन हितकारी चिदानन्द भगवन्ता।
जय जय विश्व के स्वामी प्रभुवर जय त्रिभुवन के ईशा

जय योगीश्वर जय योगेश्वर योग रूप योगीशा ।
रामलाल गुरुजन के गुरुवर जय भूपन के भूपा ।
अलख अनादि अनीह अनामय अपरम्पार अनूपा ।
त्रिगुणातीत अलौकिक सुन्दर सकल जगत के स्वामी ।
निगमागम स्तुति करि करि हारे निर्मल अन्तर्यामी ।
गंडाराम सुत जगत पिता प्रभु दया कृपा के सागर ।
ब्राह्मण कुल के दिवस नाथ हरि तीनहुं लोक उजागर ।
हे देवन के देव दयामय दीन दयाल सुरेशा ।
भक्त समाज जलज सम सुन्दर तिनके नाथ दिनेशा ।
जय जय अशरण शरण दयालो जय जन के हितकारी ।
अद्भुत छवि मनोज कोटि सम भक्त देख बलिहारी ।
जय जय जय बेजर हितकारी धर्म रूप प्रभु प्यारे ।
रामलाल प्रभु पावन पूरण कष्ट निवारन हारे ।

दो० इस प्रकार करते रहे, लीला जगदाधार ।
कोटि कवि नहीं कह सकें, मुख से चरित अपार ॥ १४ क

परम मनोहर रूप पर, कोटि काम बलि जायं ।
रिद्धि सिद्धि चौसठ कला, द्वारे चलि चलि आयँ ॥ १४ ख

लरकिन में सोहत प्रभु ऐसे, उडुगण मध्य पूरण शशि जैसे ।
तन पै लागी महि इमि सोहे, शिव विभूति जैसे भव मोहे ।

४. विद्या आरंभ

पांच वर्ष जब आयु पाई, तब श्री पिता के मन में आई ।
अक्षर बोध करावन लागे, ज्योतिष विद्या पढ़ावन लागे ।

ज्योतिष विद्या प्रभु ने पाई, सात वर्ष जब आयु आई।
पूर्ण चन्द्र सम आनन प्यारा, नैनन में कजरे की धारा।
सुन्दरता मैं किमि लिख पाऊं, पक्ष विहीन किमि उड़ जाऊं।
रूप देखकर मदन लजाये, उपमा कोउ न मन में आये।

दो० निर्जन स्थान पर बैठकर, करते श्री प्रभु ध्यान।
जैसे गौरी सिद्ध मुनि, ब्रह्म में हृदय लगान॥ १५ क

योग शास्त्र सुनकर प्रभु, होत प्रसन्न महान।
परम चतुरता आ रही, प्रभु की सेव कमान॥ १५ ख

श्री प्रभु ध्यान मग्न हों ऐसे, परम सिद्ध योगीश्वर जैसे।
जब देखें पंडित जन आकर, करहिं अचम्बा शीश झुकाकर।
सुनें प्रभु कोई साधु आया, पहुंचे वहां विलम्ब न लाया।
प्रभु जी साधु जनों के प्यारे, पहुँच जायें सिद्धों के द्वारे।
एक दिवस की कथा सुनाऊँ, श्री प्रभु की लीला मैं गाऊँ।
इक दिन पिता के मन में आया, इक पंडित के पढ़ने पाया।
पढ़ने नित्य प्रभु जी जाते, न्यून समय मन वहां लगाते।
जहां संत आया सुन पावें, पढ़ना छोडि वहां चलि आवें।

दो० अधिक समय क्यों कर पढ़ें, विद्या के भण्डार।
नित्य भगवती शारदा, खड़ी प्रभु के द्वार॥ १६ क

पंडित जी के मिलन को, आये पिता महाराज।
देखूं बालक क्या पढ़े, एक पंथ दो काज॥ १६ ख

पिता कहें सुन पंडित भाई, मम सुत ने क्या विद्या पाई।
परिश्रम करता है वा नाहीं, सत्य कहो अब तुम मुझ पाहीं।
जब श्री पिता यह बचन उचारे, मुस्काये पंडित जी भारे।
कहने लगे सुनो प्रिय भाई, बालक की अद्भुत प्रभुताई।

पढ़ने में मन नहिं लगावे, बिनु परिश्रम के विद्या पावे।
जैसी बुद्धि इसने पाई, ऐसी नहीं देखन में आई।
जो कुछ मैं इसको समझाऊँ, उससे अधिक मैं इससे पाऊँ।
नहीं बालक यह कोऊ अवतारा, इसका काम अलौकिक सारा।

दो० हो रहे थे हर्षित पिता, सुन पंडित की बात।
बीतन परमानन्द में, शनैः शनैः दिन रात॥ १७ क

जिनकी सेवक शारदा, वे पढ़ने को जांय।
भुवन चतुर्दश के गुरु, गुरु को शीश झुकांय॥ १७ ख

५ सिद्ध द्वारा सत्कार

सिद्ध एक अमृतसर आया, नगर देखकर वह हर्षाया।
हाथी दरवाजे ढिग आकर, बैठा आसन शुद्ध बिछाकर।
वहां एक वट वृक्ष सुहाया, सिद्ध ने आसन जहां लगाया।
चलि चलि लोग वहां पर आवें, सिद्ध मुनि का दर्शन पावें।
सिद्ध निकट जो जन थे आते, वे नर कुछ मन वांछित पाते।
करत स्तुति मिलकर नर नारी, कहें सिद्ध पर हम बलिहारी।
नाना भांति करें सब सेवा, करते भेंट फूल फल मेवा।
स्वर्णादिक धन सिद्ध न लेवे, माया को वापिस कर देवे।

दो० सुन्दर मूर्ति सिद्ध की, रसना मधुर महान।
परमोज्वल आचार था, ज्ञानी चतुर सुजान॥ १८ क

गुणगाथा उसकी सुनी, श्री प्रभु ने हर्षाय।
सज्जन स्तुति सज्जन सुने, हो प्रसन्न सुख पाय॥ १८ ख

कोउ कहे गोरख चलि आया, कोउ कहे शिव रूप बटाया।

कोउ कहे अत्रि मुनि ज्ञानी, कोउ कहे गौतम सन्मानी।
कोउ कहे यह सिद्ध मुनीश्वर, कोऊ कहे ज्ञानी योगेश्वर।
कोउ कहे यह उत्तम त्यागी, पावा दरस हमहुँ बड़भागी।
जेते मुख तेते गुण गावें, नर नारी सब शीश झुकावें।
जब उपदेश सिद्धवर करते, तब विदुषन के मन को हरते।
जब वे सिद्ध समाधि लगाते, शिव स्वरूप तब वे बन जाते।
निर्धन धनि मूरख विद्वाना, वहां आय कर होत समाना।

दो० सब का सम आदर वहां, सब का सम सन्मान।
ऊंच नीच निर्बल बली, सब थे वहां समान॥ १६ क

एक दिवस प्रभु जी स्वयं, आय सिद्ध के पास।
अष्ट वर्ष आयु रही, मन में अति हुलास॥ १६ ख

सिद्ध निकट प्रभु जी चलि आये, देख सिद्ध को अति हर्षाये।
बैठे वहाँ बहुत नर नारी, सिद्ध पै श्रद्धा सब को भारी।
प्रभु को देख सिद्ध मुस्काया, अपना उस उपदेश भुलाया।
प्रभु की ओर निहारन लागा, दृष्टि से सत्कारन लागा।
नेत्र मूंद कर चिंतन करता, मन से प्रभु पदपर शिर धरता।
फिर वह प्रभु की ओर निहारे, मन से तन मन अपना वारे।
उसी भांति फिर वह मुस्काया, आनन्द मानो पूरण पाया।
कहें प्रभु जी सुन सिद्ध सुजाना, किस कारणवश है मुस्काना।

दो० मुस्काहट कारण बिना, नहिं सिद्धवर होय।
बिनु कारण कारज नहिं, जानत हैं सब कोय॥ २० क

यह रहस्य हमको कहो, कृपा करो सिद्धेश।
सिद्ध पुरुष जो आप सम, करते दया हमेश॥ २० ख

उत्तर में शिर सिद्ध झुकावे, प्रभु को निकट सिद्ध बैठावे।

कहे सिद्ध सुन लो प्रभु प्यारे, अपरंपार हैं काज तिहारे।
ब्रह्मादिक तब पार न पावें, सनकादिक यश तुमरो गावें।
राम रूप तुम रावण मारा, कृष्ण रूप धरि कंस पछारा।
निगमागम जिसकी स्तुति करते, नेति नेति कह कर सब डरते।
जो प्रभु सकल जगत के स्वामी, दीन बन्धु प्रभु अन्तर्यामी।
जो सिद्धों के सिद्ध दयालु, परमेश्वर विभु परम कृपालु।
जो योगीश्वर जो योगेश्वर, सर्वरूप सुन्दर सर्वेश्वर।

दो० परम अनुग्रह से वही, यहां विराजे नाथ।
सजल नेत्र गद् गद् गिरा, होकर जोड़े हाथ॥ २१ क

देख सिद्ध की चातुरी, मुस्काये भगवान।
फिर प्रभु की महिमा वहां, कहते सिद्ध सुजान॥ २१ ख

सुनो सकल सत्संगी भाई, यह प्रभु सकल विश्व सुखदाई।
रामलाल इनका शुभ नामा, इनको करते देव प्रणामा।
इनकी महिमा लखि न जावे, शारद लीला इनकी गावे।
सर्वाधार सकल गुणवंता, पारब्रह्म पूरण भगवन्ता।
धर्म हेतु नर तनु प्रभु धारें, संत जनों के काज संवारें।
करके कृपा मोर ढिग आये, अहोभाग्य हम दर्शन पाये।
तुम इनको बालक मत जानो, मायातीत ब्रह्म करि मानो।
मात पिता सुकृत फल पावें, गंडाराम सदन प्रभु आवें।

दो० योगीजन चिंतन करें, तो भी देख न पांय।
धन्य भाग्य अपने कहूं, सो मम आसन आंय। २२ क

इतनी कहकर सिद्धवर, करने लगा प्रणाम।
उसकी श्रद्धा देखकर, मुस्काये प्रभु राम॥ २२ ख

छंद :- पूर्ण ब्रह्म चराचर स्वामी आप जगत के कर्ता।

मात पिता गुरु ज्ञान प्रदाता कामादिक के हर्ता।
सगुण अगुण निरलेप निरंजन सकल विश्व के भूपा।
चिदानन्दघण ब्राह्मणकुल रवि अकल अनादि अनूपा।
गंडाराम हृदय के मंगल मायातीत सुरेशा।
तुम पूरण शशि जगत व्योम के तिमिर हरण सर्वेशा।
हो कर प्रकट सुधासर भीतर अमृत प्रभो पिलाया।
कलि के जीव अमुक्त मुक्त कर मेटि मोह की माया
युग युग में प्रभु नर तन धर कर पापी दल संहारा।
रावण खर कंसादिक पापी अघ समूह को मारा।
भूल गये जब योग का मारग तब तब श्री प्रभु आये।
योग रूप योगेश्वर बनकर योगी जीव बनाये।
योग की अमृत वर्षा कर के अमर जीव करि दीने।
अशरण शरण दयानिधि स्वामी शरण भक्त जन लीने।
योग क्षेम के कारण स्वामी कृष्ण रूप धरि आये।
दोनों दल के बीच दयानिधि सप्तशती को गाये।
प्रथम आप से व्योम हुआ प्रभु व्योम से मारुत कीना।
मारुत से अग्नि उपजाया अग्नि से जल दीना।
जल से प्रभु उपजाकर पृथ्वी निज माया दिखलाई।
उस माया से कामादिक की रचना स्वयं रचाई।
कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय द्वारा ज्ञान जीव को दीना।
अपरा परा सिखाकर स्वामी निकट जीव करि लीना।
दया दृष्टि से योग सिखाया जीव अमर पद पाया।
अंधकार से बाहर किया प्रभु यह उपकार दिखाया।
माया ब्रह्मादिक पर डाली ये भूले निज स्वामी।
नाश करें अभिमान को क्षण में साजन अन्तर्यामी।

अनन्त अनादि विशेषण तेरे तेरी अद्भुत माया।
गंडाराम सुत निर्मल बनकर सो मम आसन आया।
वेज़र के प्रभु वर हितकारी मम आसन चलि आये।
अहो भाग्य अपने मैं जानूं प्रभु दर्शन जिस पाये।

दो० स्तुति कीनी इमि सिद्ध ने, लगे प्रभु मुस्कान।
इस कौतुक को देखिकर, नर नारी हैरान॥ २३ क

निज गृह को प्रभु चल दिये, करके सिद्ध सनाथ।
जाते प्रभु को देखिकर, सिद्ध जोड़ता हाथ॥ २३ ख

फिर उस सिद्ध के मन में आया, रामतीर्थ की ओर सिधाया।
रामतीर्थ का सर मन भावे, वहां पर आसन सिद्ध लगावे।
दर्शन हित नर नारी आवें, संत सिद्ध का दर्शन पावें।
एक स्थान पर संत न रहते, काहु से निज भाव न कहते।
संत सुधासर को तजि आया, जाने कौन संत की माया।
जान गये प्रभु अन्तर्यामी, रामतीर्थ पहुंचे तब स्वामी।
प्रभु भक्तों को दर्शन देते, सकल कष्ट उन के हर लेते।
प्रातः रामतीर्थ प्रभु जाते, अपना जाना नहिं बतलाते।

६. रामतीर्थ के मार्ग पर विरोधियों को परास्त करने की दिव्य लीला

दो० एक दिवस की वार्ता, सुनो सभी धर ध्यान।
अंधेरे में जा रहे, रामतीर्थ भगवान॥ २४ क

दो सहपाठी शौच को, जा पहुंचे उस ओर।
छुप छुप कर देखन लगे, ज्यों देखत हैं चोर॥ २४ ख

वे पंडित को आय सुनावें, प्रातः रामलाल उठि जावें।
रामतीर्थ को ओर हैं जाते, अंधेरे में भय नहिं खाते।
यदि उनको कोई पापी मारे, इनके तन के वस्त्र उतारे।
उपालम्भ पावोगे गुरुवर, कह दो उनके पिता को जाकर।
आप पे दोष न आवे कोई, मन भावे गुरु कर लो सोई।
सत्य बात हम ने बतलाई, देखन में जो आज है आई।
गंडाराम ढिंग पंडित आया, भय से कांप रही थी काया।
आकर सारी व्यथा सुनाई, मुझ को दोष न देना भाई।

दो० गंडाराम कहने लगे, सुन पंडित मम बात।
रोको एक उपाय सों, रामलाल यदि जात॥ २५ क
चार पांच विद्यार्थी, मारग रोकें जाय।
उसको लप्पड़ मार दें, अपना आप छुपाय॥ २५ ख

इक दो नर मेरे भी जावें, रामलाल को भय दिखलावें।
यह निश्चय तब सब ने कीना, मता पकाय सभी ने लीना।
जगत पिता को चले डरावन, मायापति पर माया पावन।
अंधेरे में सब मिल आये, प्रभु मारग तिन रोक दिखाये।
जिसके भय यम आदिक डरते, त्राहि त्राहि निज मुख से करते।
प्रभु उनसे कैसे डर पायें, मशक फूक किमि मेरु उड़ायें।
नित्य भांति श्री प्रभु जी आवें, निर्भय मन में भय नहिं खावें।
पड़े अचानक वे सब आकर, निज मुख वस्त्रों बीच छुपाकर।

दो० अष्ट वर्ष के थे प्रभु, वे थे सभी जवान।
मंद बुद्धि मूरख अधम, प्रभु को लगे डरान॥ २६ क
तब इक लाठी नाथ ने, लीनी तुरंत उठाय।
ललकारें सब को प्रभु, पड़े कूद कर जाय॥ २६ ख

लाठी ने इमि घूम दिखाया, जिमि विष्णु ने चक्र चलाया।
नाथ शंभु के सम ललकारें, लाठी तजि त्रिशूल को धारें।
नारायण जिमि गदा घुमावे, तिमि लाठी उन को दरसावे।
वह लाठी यम दण्ड समाना, यम स्वरूप प्रभु को तिन जाना।
त्राहि त्राहि वे सभी पुकारे, दीनबन्धु हम दास तिहारे।
धर कर पाँव शीश पर भागे, क्षमा क्षमा पुकारन लागे।
जौन दिशा जो भागा जावे, उधर नाथ वह प्रभु को पावे।
कोउ गिरा-गिरा नहीं खोले, मैं भूला कोउ मुख से बोले।

दो० किसी किसी का सिर फटा, चोटें लगीं अपार।
क्षमा करो हमको प्रभु, कहते सभी पुकार॥ २७ क

सुनकर आरत वचन को, नाथ लगे मुस्कान।
दया दृष्टि से दे दिया, सब को निर्भय दान॥ २७ ख

जब कोई आरत वचन पुकारें, दीन होय निज शक्ति विसारें।
तन मन से जब शरण में आवे, तब वे निर्भय नर हो जावे।
नहिं प्रतिकार प्रभु अपनाते, सदा दीन पर दया दिखाते।
दीन होय जब गर्जहिं पुकारा, जब उसने अपना बल हारा।
तब प्रभु गरुड़ पे चढ़ि के आये, आकर गज के फंद छुडाये।
क्षण के भीतर ग्राह को मारा, गज को हरि ने स्वयं उबारा।
निज शक्ति जब द्रोपदी हारी, अमित चीर दीने बनवारी।
पापी नगन न करने पाये, प्रभु की महिमा लखि न जाये।

दो० पाकर मूरख दण्ड सब, करते हाहाकार।
नगर बीच आये सभी, अपना आप विसार॥ २८ क
गंडाराम के घर सभी, आय सुनावें बात।
सुनते थे नर नारि सब, विस्मय कहा न जात॥ २८ ख

इस प्रकार वे लगे सुनावन, कांप काँप अश्रु बरसावन।
प्रातः काल चले हम भाई, शाह गुलाब की बावली आई।
अभी अंधेरा था वहां छाया, निज मुख हमने तभी छुपाया।
हम सब ने लाठी कर लीनी, निश्चय बात प्रथम कर कीनी।
रामलाल देखे जब आये, हल्ले बोल दिये मन भाये।
पकड़ो इसे न जाना पाये, धरि पकड़ो यह भाग न जाये।
रामलाल हम सब ने घेरा, कहा कौन यहाँ रक्षक तेरा।
हम डाकू तव वस्त्र उतारें, यदि बोला तो तुमको मारें।

दो० आगे कुछ पूछो नहिं, बात कथन की नाहिं।
सुन लो धर कर धीर सभी, यदि पूछो हम पाहिं॥ २६ क

कटक भयंकर था वहां, जैसे यम के दूत।
देखा विकट स्वरूप में, ज्योतिष जी का पूत॥ २६ ख

वीर भद्र जैसे भट आये, अस्त्र अनेक साथ वे लाये।
केतिक के सिर गिने न जावें, केतिक की बहु भुज हम पावें।
केते सिर के रहित निहारे, केते गौर पीत और कारे।
केते निज कर आयुध लीने, केते देखे शोणित पीने।
केतों के गल मुण्डल माला, केतिक धारे थे गज छाला।
शिवगण दक्ष यज्ञ जिमि आवें, वैसे वहां अनेकों पावें।
सब मिल हम को मारन लागे, नैन मूंद कर हम सब भागे।
जो कुछ हुआ सो कहा न जाई, कहने के बिनु रहा न जाई।

दो० त्राहि त्राहि करने लगे, मन में हम डर पाय।
सह नहिं सके प्रहार को, भागे हम अकुलाय॥ ३० क

कृपा न करते प्रभु यदि, तब हम देते प्राण।
रामलाल हमको दिया, तब जीवन का दान॥ ३० ख

जिन जिन कथा सुनी भय पाया, अजब अचम्भा सब पर छाया।
विस्मित हो देखत नर नारी, लगी तिनें चोटें अति भारी।
शोणित बहे नैन जल छाये, कहें भाग्यवश जीवित आये।
हो एकत्र देखें सब भाई, जिस जिस सुना वही डर जाई।
नित्य समय पर नाथ पधारे, मुस्काते त्रिभुवन से न्यारे।
पूछें लोग नाथ मुस्कावें, निज करनी को नहिं बतावें।
अति आग्रह जब जनता कीना, दीनबन्धु तब उत्तर दीना।
कोऊ न मरता कोऊ न मारे, कर्म के फल को पावत सारे।

दो० भय कोऊ देता नहीं, भय मानत नहीं कोय।
जैसा जो नर करत है, फल पावत वह सोय॥ ३१ क

जो देता सो लेत है, जो बीजत सो पात।
कर्म गति को हे पिता, लखा कभी न जात॥ ३१ ख

वृथा किसी को जो दुख देवें, वे स्वप्न में सुख नहीं लेवें।
जो काहूं हित कूप निकाले, कर्म गति ताहि खाई डाले।
जो कोई जैसे कर पावे, उस पर तब वैसा हो जावे।
उत्तम से फल उत्तम होता, काग पुत्र बनता नहीं तोता।
इससे भला करो तुम भाई, जो फल कबहुं न हो दुखदाई।
और बात मैं कर नहीं जानूं, सत्य कर्म का फल मैं मानूं।
इसमें वृथा अचम्भा करना, कर्म का फल सबने है भरना।
अमृत पिये अमर हो जावे, विष खाने सें प्राण गंवावें।

दो० प्रभु के उस उपदेश से, सबको उपजा ज्ञान।
गंडाराम कहने लगे, सुनो सभी धर ध्यान॥ ३२ क

कर्म गति से जीव यह, दुःख और सुख पाय।

भूत प्रेत से बचन का, फिर भी करो उपाय ॥ ३२ ख
सुन बेटा मैं तुम्हें बताऊं, प्रेतादिक योनि बतलाऊं।
प्रातः समय यह विचरत सारे, विकट और नर घातक भारे।
ऐसे स्थान पे तुम मति जावो, यह शिक्षा मेरी मन लावो।
सत्य वचन कह प्रभु मुस्काये, तब माता ने निकट बुलाये।
माया पति ने माया पाई, शीश वारना माता लाई।
भूत होत जिनके अनुगामी, जो प्रभु सकल चराचर स्वामी।
तिनको माता पिता डराते, यम जैसे जिससे भय खाते।
माता पिता को व्यापी माया, विश्वपिता को सुत कर पाया।

दो० इस प्रकार त्रिभुवन पति, लीला करत अनेक।
नित्य प्रति देखा करें, नर नारि प्रत्येक ॥ ३३ क

रोम रोम जिनके रमें, कोटि कोटि संसार।
सो खेलत शिशु रूप धर, गंडाराम के द्वार ॥ ३३ ख
एक समय बालक सब आये, खेलन लगे सभी हर्षाये।
सब मिल खेलत लुकन मिटाई, सो ढूंढत जिस बारी आई।
प्रभु छूअत बालक छुप जावें, जगदाधार ढूंढ कर लावें।
सब हंसें सब खेलें भाई, हो प्रसन्न भक्तन सुखदाई।
सकल विश्व जिस खेल रचाई, सो खेलें अद्भुत प्रभुताई।
जो त्रिभुवन को नाच नचावें, वे प्रभु स्वयं नाच दिखावें।
जब प्रभु स्वयं कहीं छुप जाते, तो लरकन के हाथ न आते।
थकि बैठें सब बालक ऐसे, द्वापर युग में ब्रह्मा जैसे।

७. उपाख्यान, ब्रह्मा पर माया का प्रभाव

दो० ब्रह्मा की सुन लो कथा, प्रेम सहित नर नार।

द्वापर की यह वारता, कहें पुरान पुकार ॥ ३४ क

भाग भाग कर थकि गया, पितामह धीमान।
कृष्ण सच्चिदानन्द को, सका नहिं पहचान ॥ ३४ ख

चिदानंद योगेश्वर स्वामी, द्वापर युग में अन्तर्यामी।
नर तन धार नन्द गृह आये, निगमागम जिसका यश गाये।
एक समय यमुना तट जावें, ग्वाल बाल संग शोभा पावें।
सब मिलकर बछड़ों को चारें, जल में कभी छलांगें मारें।
मिलकर कबहुं रोटी खावें, शुद्धोच्छिट न दिल में लावें।
एक दूसरे से ले खाते, भेद भाव नहिं मन में लाते।
खेलें झगरें हंसें बालक, तिमि करते त्रिभुवन के पालक।
जब विरंचि इस भांति निहारा, भ्रम उपजा मन में अति भारा।

दो० ब्रह्मा निज मन में कहे, यह नहीं जगदाधार।
यह बालक दृष्टि पड़े, साधारण जिमि ख्वार ॥ ३५ क

स्तुति करें सब देवता, अज्ञानी मति हीन।
चिदानन्द नहीं हो सके, यह बालक है दीन ॥ ३५ ख

इसका नाम कृष्ण सब लेते, देव दुहाई इस की देते।
इसको कहें चराचर स्वामी, बारम्बार नमामि नमामि।
इस का जप श्री शंकर करते, शक्र इसके पग सिर धरते।
नारद सनकादिक गुण गावें, चलि चलि शारद दर्शन पावें।
शेशादिक इस पर बलिहारी, मैं जानूं सब की मति मारी।
भ्रम में देवादिक भरमाये, भ्रम की महिमा कही न जाये।
भ्रम में स्थल को जल जन मानें, भ्रम में रौप्य शुक्ति को मानें।
रज्जू सर्प सम भ्रम में होवें, निज बुद्धि भ्रम में नर खोवें।

दो० भ्रम में मिथ्या जगत को, सत्य लेत नर मान।
सत्यासत्य न सूझता, यह भ्रम की पहिचान॥ ३६ क

जिमि अविनाशी आत्मा, भ्रम में होती नाश।
कठिन कठिन अतिशय कठिन, टूटे भ्रम का पाश॥ ३६ ख

यदि यह सुन्दर है बनवारी, यदि लीला है इसकी न्यारी।
यदि यह बांसुरी मधुर बजावे, यदि वृज ललना कृष्ण नचावे।
यदि यह लगे सभी को प्यारा, यदि यह है वृज का उजियारा।
यदि यह प्रेम से गौ चरावे, यदि यह मात पिता को भावे।
यदि यह नन्दराव का जाया, यदि सुडौल है इस की काया।
यदि यह मोर मुकुट सिर धारे, यदि कुछ राक्षस इसने मारे।
यदि यह सुन्दर नाच दिखावे, यदि यह कुछ नर नारी नचावे।
पीत वसन यदि इसको सोहे, यदि यह वृज वनिता मन मोहे।

दो० यदि और गुण लाख हों, हो प्रकाण्ड धीमान।
पारब्रह्म फिर भी नहीं, बस यह मेरा ज्ञान॥ ३७ क

इक बालक किमि ब्रह्म हो, अल्प न हो सर्वज्ञ।
चिदानन्द इसको कहें, जानो यह अल्पज्ञ॥ ३७ ख

यह शंका ब्रह्मा मन आई, मायापति निज माया पाई।
ब्रह्मा लेन परीक्षा आया, वृन्दावन की ओर सिधाया।
उसी ओर को चला विधाता, बैठे जहां जगत सुख दाता।
बछड़े ब्रह्मा आन चुराये, ब्रह्म लोक को लेकर जाये।
इधर चराचर के प्रभु स्वामी, जान गये सब अन्तर्यामी।
नूतन बछड़े नाथ बनाये, प्रभु की माया लखि न जाये।
इस प्रकार कुछ काल बिताया, फिर ब्रह्मा देखन को आया।
आ विरंची जब तहां निहारे, देखे वहां पर बछड़े सारे।

दो० ब्रह्मा बछड़े देख कर, हुआ बहुत हैरान।
सोचे आ गये भाग कर, प्रभु माया बलवान। ३८ क
फिर पहुंचा निज लोक में, बछड़े देखे जाये।
वृन्दावन में फिर गया, देखे फिर वहां जाये॥ ३८ ख

ब्रह्मा चलि वृन्दावन आवे, कभी वह अपने लोक सिधावे।
कभी भाग वृन्दावन आता, ब्रह्म लोक कभी भागा जाता।
आवे जावे जावे आवे, दोउ स्थान वे बछड़े पावें।
अंत थकित हो ब्रह्मा हारा, हो रहा व्याकुल मारा मारा।
अंत शरण प्रभु की चलि आये, क्षमा क्षमा यह वचन सुनाये।
दीन दयाल नाथ मुस्कावें, प्रभु ब्रह्मा को निकट बुलावें।
ज्ञान चक्षु प्रभु उसको दीने, तब निज नाथ विधाता चीने।
यह महिमा प्रभु की चलि आई, सो जाने जिस देहु जनाई।

दो० चातुरता चलती नहीं, परम चतुर जगदीश।
रामलाल कलि में वही, योगेश्वर योगीश॥ ३९ क

ब्रह्मा स्तुति करने लगा, दो कर जोड़ सानन्द।
प्रेम सहित सुनने लगे, ग्वाल बाल वृजचन्द॥ ३९ ख

छंद :- प्रभो विश्व करता चराचर के स्वामी।
अहो कष्ट भंजन नमामि नमामि।
तुमीं नाथ कारज तुमीं नाथ कारण।
तुमीं सुख प्रदाता तुम्हीं दुःख निवारण।
तुमीं भक्त रक्षक तुम्हीं सृष्टि कर्ता।
तुमीं सब के भ्राता तुमीं सब के भरता।
नमो वासुदेवम् नमो राम रूपम्।
नमो योगी नाथम् नमो जगत भूपम्।

प्रभो तेरी माया समझ में न आवे।
प्रभो तेरी माया चराचर नचावे।
प्रभो तेरी महिमा श्रुति संत गाते।
सभी शास्त्र सिर अपना तुझ को झुकाते।
पुराणों में महिमा तुम्हारी है आई।
तेरी शारदा मुख से महिमा है गाई।
है रवि चन्द्र में तेरी ज्योति दयालो।
पवन में महावेग तेरा कृपालो।
तुमीं राम रावण का वध करने वाले।
तुमीं अपने भक्तों का भय हरने वाले।
तुमीं कृष्ण बनकर के द्वापर में आये।
प्रभो गीत गीता के तुमने सुनाये।
प्रभो होगा कलियुग में तेरा ही आना।
तुमीं योग की वंशी आकर बजाना।
तुमीं रूप ब्राह्मण का धरोगे स्वामी।
प्रभु रामलालम् नमामि नमामि।
प्रभो वर मैं मांगूं मैं सिर को झुकाऊं।
मैं सेवक का धर रूप कलियुग में आऊं।
तुम्हारी अमर ज्योति आकर निहारूं।
तुम्हारे ही चरणों पै तन मन को वारूं।
करूं योग से अपनी निर्मल मैं काया।
न मारे मुझे नाथ विषयों की माया।
सदा तेरे गुणवाद गाता रहूं मैं।
तेरे गीत सब को सुनाता रहूं मैं।
दुख सुख के हे नाथ सब पाश तोड़ूं।

तेरे चरण कमलों में मन अपना जोड़ूं।
दया सिन्धु दातार "बेज़र" के स्वामी।
नमामी नमामी नमामी नमामी।

दो० नत मस्तक ब्रह्मा हुये, सजल नैन सप्रेम।
जय जय ध्वनि करने लगे, धार योग वा क्षम॥ ४० क

कृपा दृष्टि करने लगे, मनहर साखन चोर।
अघ तम हरता विश्व में, करें ज्ञान की भोर॥ ४० ख

सुन विरंचि बोले गिरधारी, भक्ति अनन्य है मुझ को प्यारी।
रूप अवस्था गुण नहिं भावें, धन बल से नर मोहे न पावें।
विद्याबल नहिं मोहे रीझाता, भुज बल मेरा पार न पाता।
चातुरता नहिं मो को प्यारी, भक्त जनों का मैं हितकारी।
राजा से मोहे रंक है प्यारा, मम भक्ति का निज प्रण धारा।
होत गुणादि से अभिमाना, उस को मेरा दुर्लभ पाना।
मेरे भक्त मैं उन का प्यारा, यह मेरा है अटल विचारा।
मम भक्तों को जो दुख देते, वे पामर सुख श्वास न लेते।

दो० सुन ब्रह्मा संसार में, भक्त हैं मेरे प्राण।
मेरे भक्तों का सदा, है निश्चय कल्याण॥ ४१ क

दुखी बसें भक्त जहां, वहां रहे संताप।
जहां भक्त मेरें सुखी, वहां विराजूं आप॥ ४१ ख

भक्तन हित नर तन मैं धारूं, दुष्ट जनों को आकर मारूँ।
भक्तन के मैं काज सवारूं, सब कुछ भक्तन पर मैं वारूं।
मैं भक्तों को योग सिखाऊं, अजर अमर करके दिखलाऊं।
भक्त जनों के संकट टारूं, भक्तन हित निज काज विसारूं।

भक्त मेरे भूपन के भूपा, कभी न भक्त पड़ें भव कूपा।
मेरा भक्त अभय पद पावे, उसको नहीं यमराज डरावे।
मेरा भक्त नरक नहीं जाता, जन्म धरि पुनि यहां न आता।
निज स्वरूप में भक्त मिलाऊं, भक्तों की मैं महिमा गाऊं।

दो० मुझ को अपने आप से, भक्त अधिक प्रिय होंय।
मम भक्तों से द्वेष कर, मूरख निज सुख खोंय॥ ४२ क

योगी मेरा जो मेरा, सो मेरा है रूप।
सकल जगत है भृत्य सम, योगी भक्त है भूप॥ ४२ ख

हे ब्रह्मा करके चतुराई, कहो आपने क्या गति पाई।
जगत नचाती मेरी माया, तिस माया ने तुम्हें भ्रमाया।
भाग भाग कर तुम जब हारे, तब चलि आये पास हमारे।
मैं शरणागत नहीं दुरकारूं, शरणागत पर सब कुछ वारूं।
शरणागत जब हों नर नारी, तब होता हूं मैं बलिहारी।
कामी क्रोधी दुर्जन भारी, जब आता है शरण हमारी।
तब मैं उसके पाप बिसारूं, भव सागर में उसको तारूं।
शरणागत मोरे मन भावे, शरणागत उत्तम गति पावे।

दो० शरणागत जो जीव हैं, उनको भय नहिं होय।
शरणागत निशिदिन खुशी, उसे कष्ट नहीं होय॥ ४३ क

वह नर मेरा रूप है, जो शरणागति पाय।
रिद्धि सिद्धि संसार में, शरणागत पे आय॥ ४३ ख

शरणागत निज जीवन तारे, और अनेकों पार उतारे।
सुन ब्रह्मा मैं तुम्हें सुनाऊं, अपनी अद्भुत लीला गाऊं।
जब जब धर्म नाश हो जावे, धरती को जब पाप सतावे।

तब तब मैं नर तन को धारूं, भूमि का मैं भार उतारूं।
प्रथम जन्म मेरे तुम जानो, मेरा कहा ज्ञान तुम मानो।
गुप्त रहस्य तुम्हें बतलाऊं, कलियुग में आना बतलाऊं,।
इस रहस्य को कोउ न जाने, काक भुषुंड रिषि पहिचाने।
वह भी सब प्रकट न होई, पुण्यवान जानेगा कोई।

दो० कलियुग का पहिला चरण, करे धर्म का नाश।
बांधेंगे संसार को, नीच कर्म के पाश ॥ ४४ क

मेरे प्यारे योग को, देंगे लोग विसार।
तब अमृतसर नगर में, लूंगा मैं अवतार ॥ ४४ ख

जन्म विप्रकुल में मैं धारूं, निज मुख से मैं योग उचारूं।
गंडाराम के गृह में आऊं, गीत योग का स्वयं सुनाऊं।
उस अवतार की सुनो कहानी, काकभुषुंडि प्रथम जो जानी।
ऐसा कोउ न मम अवतारा, रामलाल जो रूप हमारा।
उस अवतार की अद्भुत करनी, नाड़ी ग्रंथ के करता वरणी।
और अनन्त है लीला प्यारी, सुनो विचित्रता उसकी भारी।
कष्ट यदि शरणागत पावे, रोग यदि उसका नहिं जावे।
तब मैं उस का कष्ट सहूंगा, निज मुख से मैं सत्य कहूंगा।

दो० कष्ट सभी उस भक्त के, अपने पर मैं लेऊं।
उसकी पीड़ा दूर कर, सुख तत्क्षण मैं देऊं ॥ ४५ क

लेकर यही विशेषता, होगा मम अवतार।
रामलाल के रूप में, देखे कलि संसार ॥ ४५ ख

उस अवतार की महिमा भारी, रिषिवर काक भुषुंडि उचारी।
निज भक्तों के ताप हरूंगा, कलियुग में उपकार करूंगा।

योग की गंगा स्वयम् बहाऊं, जिससे पाप त्रिताप मिटाऊं।
जो जो जीव शरण चलि आवे, सो सो जीव अमर फल पावे।
हीरा परख जौहरी जाने, शाक वणिक न मूल्य पहचाने।
उत्तम जीव परम गति पावे, नीच निकट नहिं चलिकर आवे।
पूरण भाग्य-वंत नर नारी, मेरी भक्ति उन्हीं को प्यारी।
अधिक बात क्या तुम्हें बताऊं, तुम ज्ञानी क्या बहुत बुझाऊं।

दो० जय जय जय ब्रह्मा कहे, करता लाख प्रणाम।
जय रघुपति जय यदुपति, जय जय जय प्रभुराम॥ ४६ क

मुलखराज के रूप में, जय तेरी हो नाथ।
इस बेज़र के शीश पर, धरो कृपा का हाथ॥ ४६ ख

दोऊ कर जोड़ विधाता गयऊ, मन में अति प्रसन्न वह भयऊ।
तब प्रभु सकल चराचर स्वामी, क्रीड़ा करते अन्तर्यामी।
बछड़ी बछड़े नाथ चरावें, सुमन वृष्टि सब सुर बरसावें।
सांझ भई प्रभु घर को आते, नन्द यशोदा अति हर्षाते।
ग्वाल बाल निज निज गृह आवें, निज पितु मातु को कथा सुनावें।
कहें आज इक लीला न्यारी, कीनि कृष्ण चन्द्र बनवारी।
एक चतुरमुख चलि कर आया, उसने अपना शीश झुकाया।
थर थर कांपा वह चतुरानन, नभ में गीत देव मिल गावन।

दो० साधारण बालक नहीं, नन्द यशोदा लाल।
दिव्य पुरुष यह कोई, आया बन कर ग्वाल॥ ४७ क

जन्म दिवस से कर रहा, अद्भुत लीला श्याम।
देख रहा सारा जगत, करे दिव्य जो काम॥ ४७ ख

सुन कर सभी अचम्भा करते, कभी प्रसन्न होते कभी डरते।

फिर प्रभु ने निज माया पाई, बीती सब को तुरत भुलाई।
निज निज काम करन सब लागे, निज निज सुतन संग अनुरागे।
प्रभु माया का अन्त न पावे, नेति नेति कह कर श्रुति गावे।
इस प्रकार प्रभु नन्द दुलारे, कारज करें जगत से न्यारे।
कलि में रामलाल बनि आये, निज मित्रों के मन को भाये।
आँख मिचौनी खेलत स्वामी, करते कौतुक अन्तर्यामी।
संध्या समय खेल घर आवें, माता पिता परम सुख पावें।

दो० जब कहीं प्रभु जी देखते, चित्रों में भगवान।
निज सिर श्रद्धा से तभी, प्रभु जी स्वयं झुकान ।। ४८ क

निज नेत्रों को मूंद कर, होय समाधि लीन।
अति प्रसन्न होते प्रभु, जिमि जल पाकर मीन ।। ४८ ख

जब कोई द्वारे साधु आवें, भिक्षा को जो सदा लगावें।
श्री प्रभुवर जब उसे निहारें, सब कुछ उस पर प्रभु जी वारें।
सब साधु प्रभु की स्तुति करते, सभी प्रेम का सागर तरते।
मुक्त कंठ सब संत उचारें, धन्य धन्य श्री प्रभु उचारें।
कहें नहीं साधारण बालक, है यह कोउ त्रिभुवन का पालक।
साधारण नहीं इनको जानो, अखिल विश्व का स्वामी मानो।
जय जय ध्वनि करते धर्मात्मा, जय जय रामलाल परमात्मा।
नर नारी को श्री प्रभु भावें, हो प्रसन्न सब दर्शन पावें।

दो० जैसे जैसे बीतते, दिवस रैन हर्षात।
तैसे तैसे जगत का प्रभु प्रेम बढ़ि जात ।। ४९ क

जब प्रभु आंखें बन्द कर, हों आसन आसीन।
तब नर नारी आनन्द में, हो जाते लव लीन ।। ४९ ख

दश वर्ष आयु प्रभु पाई, मात पिता के मन में आई।

कर उपनयन परम सुख पावें, नर नारि मिल मंगल गावें।
वेद विधि से सब कुछ कीना, अमित दान भिक्षु जन लीना।
प्रभु के गल उपवीत सुहावे, इंद्र धनुष नभ में दरसावे।
विद्या बहुत प्रभु जी पावें, उर्दू और संस्कृत भावें।
हिन्दी आदिक प्रभु ने पाई, विद्या चलि हृदय में आई।
ज्योतिष में हुए प्रभु प्रवीना, सभी दर्शनों में मन दीना।
कोई विद्या ऐसी नहीं भाई, जो नहिं प्रभु हृदय में आई।

८. बाल्य काल की विलक्षण दिव्य लीलायें

दो० गंडाराम के पास जब, जनता चलि चलि आय।
पितु आज्ञा से श्री प्रभु; देते फलित बताय॥ ५० क

बातें भूत भविष्य की, कह देते भगवान।
सुन कर अति आश्चर्य में, होते थे विद्वान॥ ५० ख

साधु संगति प्रभु को भावे, अन्य खेल नहीं इन्हें सुहावे।
जहां साधु प्रभु जो सुन पाते, अति श्रद्धा से वहां पर जाते।
वैद्यक भी पूरण प्रभु जाना, जान गये औषधि प्रभु नाना।
पूरण सिद्धि भी प्रभु पाई, अमित बार करनी दिखलाई।
एक बार की कथा सुनाऊं, अद्भुत करनी को बतलाऊ।
एक समय कुछ व्यक्ति आए, तिन को प्रभु कौतुक दिखलाये।
जल का भरें कटोरा स्वामी, दीप जलावें अन्तर्यामी।
दीपक जल में धर दिखलाया, चलो चलो मुख से फरमाया।

दो० पात्र चला तब नीर का, देखें सब नरनार।
फिर दीपक भी जल पड़ा, यह लीला करतार॥ ५१ क

दीपक दक्षिण वाम दिशि, चले मनोहर चाल।
धन्य धन्य प्रभु धन्य हैं, गंडाराम के लाल॥ ५१ ख

कहते थे सब लोग लुकाई, चेतनता जड़ में किमि आई।
कल कौशल कोई नज़र न आई, लोग निहारें पात्र उठाई।
जगदाधार मन्द मुस्कावें, निज माया प्रभु सब पर पावें।
जिसकी माया विश्व नचाती, जिसके गीत शारदा गाती।
शिला अहिल्या जिसने तारी, भक्तन हित जिस नर देह धारी।
यमुलार्जुन गंधर्व बनाये, जिसकी माया लखि न जाये।
वे प्रभु कलिमल नाशक स्वामी, अखिल विश्वपति अन्तर्यामी।
गंडाराम नैनों के तारे, विप्र वंश के प्रभु उजयारे।

दो० अमृतसर में प्रकट हो, लीला करत अनन्त।
जय जय जय करते सभी, पंडित संत महंत॥ ५२ क

अलख निरंजन देव वर, करते बाल कलोल।
अधरन में मुस्का रहे, अति मृदु बोलें बोल॥ ५२ ख

काट सर्प यदि किसी को जावे, अथवा बिच्छू काट दिखावे।
वह नारि नर प्रभु ढिग आता, श्रद्धा से निज माथ झुकाता।
उसका दुःख क्षण मे प्रभु हरते, भक्त जनों के संकट टरते।
जिसका कठिन होत चलि-याना, निकट होत जिसका मर जाना।
उस का पुरुष कोई चलि आवे, दुखिया की वह कथा सुनावे।
कौतुक और करें तब स्वामी, कष्ट विनाशन अन्तर्यामी।
एक चपत उसको प्रभु मारें, क्षण में बिगड़ी नाथ संवारे।
उतर जात बिष देर न लागे, सर्प बिच्छु विष क्षण में भागे।

दो० प्रभु की लीला अद्भुत, न पा सके को पार।

जन मन रञ्जन हैं प्रभु, सकल लोक आधार ॥ ५३ क

हे मन उनका भजन कर, त्याग असत्य आधार ।
दुःख में वे सहायी हैं, अलख अनन्त अपार ॥ ५३ ख

जिन का नाम स्मरण कर, जीव अमर पद पाय ।
कर स्पर्श जब वे करें, क्यों कर विष रह जाय ॥ ५३ ग

लीला प्रभु अनेक दिखावें, सकल विश्व के मन को भावें ।
साधु संग प्रभु को अति प्यारा, सतसंग हित निज काज विसारा ।
जहाँ सुनते कोई साधु आया, वहां फेरा दर्शन हित पाया ।
हों प्रसन्न साधु को पाकर, बैठें प्रभु निज माथ झुकाकर ।
जिस साधु ने प्रभु पहिचाना, उसने जन्म सुफल निज माना ।
पुण्य कर्म जिसने कर पाया, जिस पर प्रभु ने कीनी दाया ।
उस नर ने पहिचाना स्वामी, सकल चराचर अन्तर्यामी ।
प्रभु के प्रेम में जो जन रोवे, उसका आवागमन न होवे ।

दो० कृपा करें जिस पर प्रभु, उसके पूरण काम ।
त्रेता, द्वापर, कलि विषे, राम शाम फिर राम ॥ ५४ क

प्रभु के रूप अनेक हैं, लीला अमित अनन्त ।
कृपा दृष्टि अपनी करें, रामलाल भगवन्त ॥ ५४ ख

धन्य धन्य योगेश्वर प्यारें, धन्य धन्य भव के उजयारे ।
धन्य विप्रकुल जोशी नामा, धन्य नौशहरा धाला ग्रामा ।
पूर्वज जहां से प्रभु के आये, पांव सुधासर में जिन पाये ।
धन्य धन्य अमृतसर प्यारा, जहां प्रकटे करुणावतारा ।
धन्य मात जिसने प्रभु जाये, जिस स्वामी के गुण श्रुति गाये ।
धन्य गली जिसमें प्रभु खेले, धन्य धन्य जानो वे बेले ।

धन्य मित्र जो प्रभु के प्यारे, धन्य महल घर और चुबारे।
धन्य वसन जो प्रभु तन धारें, धन्य भक्त जो तन मन वारें।

दो० धन्य धन्य श्री मुलख जी, धन्य हैं देवी दास।
धन्य मुलख का घट कहो, प्रभु का जहां निवास ॥ ५५ क

देवी दास के पुत्र को, जानो प्रभु का धाम।
नीर निधि में अनल सम, विचरत हैं प्रभु राम ॥ ५५ ख

९. काशी में पं० शिव कुमार से विद्याग्रहण

एक समय प्रभु के मन आई, अद्भुत लीला नाथ दिखाई।
उन्नीसत अठावन आया, संवत् विक्रमी परम सुहाया।
बिना सूचना के योगेश्वर, घर से निकल चले परमेश्वर।
चलि चुपके काशी प्रभु आये, शिव नगरी देखी सुख पाये।
विश्वनाथ के दर्शन कीने, विल्व पत्र शिर पर प्रभु दीने।
मर्यादा से पूजन कीना, धर्म सनातन में मन दीना।
फिर देखे मन्दिर सब स्वामी, कीना पूजन अन्तर्यामी।
जय शंकर जय गिरिजा प्यारे, निज मुख से योगीश उचारे।

दो० श्री प्रभु आंखें मीच कर, करें शम्भु का ध्यान।
जिमि शंकर पूजन किया, त्रेता में भगवान ॥ ५६ क

शंकर से प्रभु का सदा, प्रेम अतुल चलि आय।
प्रभु का प्यारा भक्त वह, जो शंकर को ध्याय ॥ ५६ ख

छंद :- कहें नाथ शंकर मेरे प्राण प्यारे।
नमो नीलकंठ जगत से न्यारे।
नमो काम नाशक त्रिपुर प्राण हरता।

नमो वृषभ वाहन नमो गौरी भरता।
प्रभो सप्त स्वर में तेरा डमरू बाजे।
नमो परम सुन्दर सकल ज्योति लाजे।
नमा आशु वर-दाता त्रिशूल धारी।
कैलाश वासी नमो मन-मथारी।
प्रभो तुम दिगम्बर षडानन के दाता।
तेरे पुत्र गणपति के गुण विश्व गाता।
नमो योगीवर शुद्ध आसीन ध्यानी।
नमो व्याल-भूषण नमो परम ज्ञानी।
नमो सिद्ध देवेश गौरांग स्वामी।
नमो गंगधारी नमामि नमामि।
प्रभो विश्व के रक्षक जगत तापहारी।
भवानी पति तोरी प्रतिमा है प्यारी।
नमो राम के मित्र सुन्दर त्रिनयना।
नमो नाथ शिव शम्भु मनहर सुबयना।
नमो भूत सेना के नायक दयालो।
जटाजूट श्मशान वासी कृपालो।
तेरी शरण बेजर तेरी शरण शम्भो।
सकल रोग नाशन व दुःख हरण शम्भो।

इस प्रकार प्रभुवर स्तुति कीनी, बिल्वादिक भेंट प्रभु दीनी।
प्रभु जी की सुन सुन्दर वाणी, हुये प्रसन्न सभी मुनि ज्ञानी।
जहां जहां श्री प्रभु जी जावें, वहां वहां नर नारि सिधावें।
शिवकुमार पंडित इक भारी, जिसकी स्तुति करें नर नारी।
शास्त्री उसे संसार पुकारे, पास उसी के नाथ पधारे।
हाथ जोड़ बोले तब स्वामी, सकल चराचर अंतर्यामी।

शास्त्री जी मैं चलकर आया, मुझ पर करो शास्त्र की दाया।
विद्या मुझको आप पढ़ावो, इच्छा मेरी आप अपनाओ।

दो० हो प्रसन्न माने तभी, शिव कुमार विद्वान।
श्री प्रभु जी पढ़ने लगे, गुरु का करते मान॥ ५७ क

रामलाल धीमान है, कहते गुरु उचार।
अद्वितीय बालक है यह, देखा भलि प्रकार॥ ५७ ख

जो कुछ शिवकुमार समझावें, तुरन्त कंठ करि प्रभु बतलावें।
सहपाठिन को हुई हैरानी, कहते रामलाल अति ज्ञानी।
एक दिवस प्रभु गुरु ढिग आये, नम्र भाव से वचन सुनाये।
गुरु जी सुनो प्रार्थना मोरी, मन इच्छा कहूं मैं कर जोरी।
मैं योगी बन कर सुख पाऊं, योग साधना में मन लाऊं।
सभी शास्त्र हैं मो को प्यारे, वेदादिक हैं पूज्य हमारे।
सब से अधिक योग को मानूं, योग बिना मुक्ति नहीं जानूं।
इस कारण मोहे योग सिखाओ, नैया मेरी पार लगाओ।

दो० श्री प्रभु जी की वारता, सुनते गुरु विद्वान।
उत्तर में कहने लगे, शिव कुमार धीमान॥ ५८ क

योग शास्त्र पूर्ण तुझे, वैंगे हम सिखलाये।
योगी बनना कठिन है, झूठ कहा नहीं जाये॥ ५८ ख

योगशास्त्र है सुगम पढ़ाना, अनुभवी योगी कठिन बनाना।
मुझे पढ़ाना केवल आये, योगी तुमको कौन बनाये।
अनुभवी योगी ढूंढो प्यारे, मनो भाव पूरण हों सारे।
शिवकुमार जब यह फरमाया, तब प्रभु जी के मन में आया।
वैद्यक में मन अपना दीना, वैद्यक सीख दिनों में लीना।

योगी जन ढिंग प्रभु जाते, योग समाधि में मन लाते।
बहुत औषधि प्रभु ने जानी, लाखों बूटी भी पहिचानी।
ज्योतिष वैद्यक कोउ अपनायें, दोनों में प्रभु सफलता पायें।

दो० एक दिवस की वारता, सुनो लगा कर कान।
अश्वमेध के घाट पर पहुंचे श्री भगवान॥ ५६ क

थे एकत्र योगी वहां, बात योग की होय।
प्रेम भाव से सुन रहे, श्रद्धालु हर कोय॥ ५६ ख

योगीजन अनुभव बतलावें, हो प्रसन्न सब शीश झुकावें।
तब प्रभु जी निज गिरा उचारी, अनुभवी बात सकल कह डारी।
सुन योगीजन अति हर्षाये, प्रभु जी अपने निकट बुलाये।
वहां एक बाबू चलि आया, जिसने प्रभु को गले लगाया।
वह नैनों से नीर बहाये, गद गद गिरा न बोला जाये।
बाबू बोला धीरज धरके, एक ओर श्री प्रभु को करके।
"कहो बेटा तू मोहि पहिचाना, कौन हूं मैं क्या तुमने जाना"
तब प्रभु मंद मंद मुस्काये, मुख से मीठे बचन सुनाये।

दो० गार्ड आप हो रेल के, तात मित्र हो आप।
आये मुझको ढूंढते, है वियोग संताप॥ ६० क

अन्तर्यामी श्री प्रभु, सब की जाननहार।
बाबू को इस विधि कहा, मीठे वचन उचार॥ ६० ख

इस प्रकार फिर गार्ड पुकारा, धन्य धन्य तू पुत्र पियारा।
भाग्यवंती माता तू जाया, धन्य धन्य तेरी है काया।
योगी जीव जिस धारण कीना, धन्य दिवस जिस जन्म है दीना।
धन्य पिता जिसका तू प्यारा, धन्य नयन जिस का उजियारा।

धन्य नगर जिसमें तन धारा, धन्य गली गृह और बाज़ारा।
धन्य मित्र जो तुम को भावें, धन्य भक्त जो तव गुण गावें।
फिर वह बाबू कंठ लगावे, बार बार बलिहारी जावे।
प्रेममयी बाबू की वानी, सुन हर्षाये श्री प्रभु ज्ञानी।

दो० फिर बाबू कहने लगा, सुन बेटा धर ध्यान।
तेरे बिन माता–पिता, होते दुःखी महान॥ ६१ क

तेरी बुद्धि देखकर, हुआ आनन्द अपार।
अब निज गृह को तुम चलो, मेरा यही विचार॥ ६१ ख

बाबू का कहना प्रभु माना, पितु का मित्र पिता सम जाना।
स्वामी उसके संग सिधाये, मारग में वह बात सुनाये।
सुनो तात मैं सत्य सुनाऊं, मात पिता का हाल बताऊं।
जिस दिन से तुम गृह तजि आये, मात पिता ने अति दुख पाये।
हो प्रसन्न वे अन्न न खावें, नैनों से जल बिन्दु गिरावें।
जितने बालक मित्र तुम्हारे, सत्य कहूं सब दुखी विचारे।
गंडाराम मुझको फरमाया, विरह कष्ट सब मुझे सुनाया।
देखभाल कर तुम को लाऊं, नगर नगर मैं फेरा पाऊं।

दो० गांव गांव में मैं गया, मिले नहीं तुम तात।
चलि कर काशी आ गया, देखी अद्भुत बात॥ ६२ क

बड़े बड़े योगी ऋषि, तेरे सुनें विचार।
नत-मस्तक वे हो रहे, देखी अद्भुत कार॥ ६२ ख

अमृतसर पहुंचें सुख सागर, मुक्ती करण सकल गुण आगर।
माता पिता को शीश झुकावें, गंडाराम परम सुख पावें।

हुए प्रसन्न सकल नर नारी, देत वधाई मिल संसारी।
मिले मित्र सब प्रभु को आकर, प्रेम किया निज कंठ लगाकर।
रामचन्द्र जिमि अवध में आए, इन्द्रादिक ने सुमन बरषाये।
तैसे आये निज गृह स्वामी, घट घट वासी अंतर्यामी।
सुर प्रसन्न हो नभ में आये, ब्रह्मादिक ने शीश झुकाये।
अमित दान करती महतारी, देख देख सुत को बलिहारी।

दो० पंडित गंडाराम जी, करते थे बड़ दान।
द्वारे से याचक सभी, हो प्रसन्न घर जान॥ ६३ क

पूछें गंडाराम जी, कहो प्रेम से लाल।
कहां रहे कैसे रहे, कैसे बीता काल॥ ६३ ख

बोले नाथ मनोहर बानी, सुनने लगे पितावर ज्ञानी।
मैं प्रसन्न शिव नगर सिधारा, श्रद्धा से भव नाथ निहारा।
पतित पावनी सुरसरी प्यारी, इन नैनन सें तात निहारी।
स्नान किया गंगा गुण गाया, कीनी निर्मल अपनी काया।
शिवकुमार पंडितवर भारी, स्तुति करें उनकी नर नारी।
तिनको मिलकर शीश झुकाया, ऐसा ज्ञान मैं उन से पाया।
फिर मैं योगी सिद्ध निहारे, अनुभव सुने सभी से न्यारे।
ज्योतिष के कुछ कारज कीने, करके कृपा आप जो दीने।

दो० मित्र आपके आ गये, हो लिया उनके साथ।
अब करि दर्शन आपका, निज को किया सनाथ॥ ६४ क

इतना कह कर नाथ जी, लगे मंद मुस्कान।
हो प्रसन्न देखें सभी, रामलाल भगवान॥ ६४ ख

अति प्रसन्न प्रभु समय बितावें, जायें वहां जहां साधु पावें।

पर उपकार है जिनको प्यारा, तिने न सूझत और व्योपारा।
गंडाराम काम जो देते, वह प्रभु प्रेम सहित कर लेते।
मन था साधु संग में लागा; नहीं था गृह से कुछ अनुरागा।
मन में एक बात नित आवे, दुख से दुनिया किमि छुट जावे।
मात पिता गृह काम बतावें, गृह कारज नहीं प्रभु को भावें।
नहीं स्वतन्त्र बंधन में रहते; पंडित गुणी ज्ञानी सब कहते।
बंध-निवारण बंध न होवें; मोह निद्रा में प्रभु नहीं सोवें।

१०. कनखल में विद्या ग्रहण

दो० इस प्रकार घर में प्रभु, ठहरे थे कुछ काल।
एक दिवस चुपके चले, गृह तज दीन दयाल॥ ६५ क

अमृतसर को छोड़ कर, पहुँचे प्रभु हरिद्वार।
देखें सुन्दर सुरसरी, दीन बन्धु करतार॥ ६५ ख

हरिद्वार पहुँचे सुर स्वामी, सर्व जगत पति अंतर्यामी।
नाथ विप्रकुल कमल दिवाकर, योग सिद्धि के प्रभु रत्नाकर।
कृपा सिंधु भक्तन के प्यारे, रवि समान सुन्दर उजियारे।
जब प्रभु मंद मंद मुस्कावें, तब मनोज निज माथ झुकावें।
त्रिगुणातीत अमित वर दाता, जगन नाथ सब के पितु माता।

दो० सुरसरि योगेश्वर निरख, भई अपार आनन्द।
प्रभु जी को इमि देखती, जिमि चकोरी चन्द॥ ६६ क

हरि देखें हरि भक्त जिमि; वारिद देखे मोर।
देखे थी तिमि जाहनवी, गंडाराम किशोर॥ ६६ ख

बहुरि प्रेम से मज्जन कीना, रवि को अर्घ नाथ ने दीना।
कीनी विनय अमित सुख पावा, गंगा को प्रभु माथ झुकावा।
ब्रह्म-कुंड से जल मुख पावें, कुशा घाट श्री प्रभु जी आवें।
कनखल सकल जगत पति आये, साधू देख परम सुख पाये।
दक्ष भवन का दर्शन पाया, शिव शंकर को शीश झुकाया।
इक विद्वान सदन प्रभु आवें, उसको प्रभु निज भाव बतावें।
मैं विद्या हित द्वारे आया, पंडित वर कर मुझ पर दाया।
काशी में कुछ विद्या पाई, अधिक पढ़ूं यह मन में आई।

दो० करो कृपा मुझ दास पर, दीजो विद्या दान।
कनखल में इक आप हैं, बढ़चढ़ कर विद्वान॥ ६७ क

दासी जिनकी शारदा, वे रहे विद्या माँग।
सकल विश्वपति कर रहे, इस नरतन का स्वांग। ६७ ख

अशरण शरण कहें मृदु वाणी, सुनो विप्रवर पंडित ज्ञानी।
रामलाल है नाम हमारा, ब्राह्मण वर्ण हमारा प्यारा।
गंडाराम प्रिय पिता हमारे, ज्योतिष व्योम के मनहर तारे।
देश पंचनद वीर धुरंधर, नगर सुधासर तिस के अन्दर।
वहां निवास हमारा आया, यह वृतांत संक्षिप्त सुनाया।
विद्या पढ़ूं यही मन आवे, खेल और नहीं मोको भावे।
मैं योगी बन कर दिखलाऊं, अपना आवागमन मिटाऊं।
भव का मैं कल्याण करूंगा, सकल जगत के कष्ट हरूंगा।

दो० जो कुछ मन का भाव था, मैंने दिया बताय।
मोह माया के जाल में, मोसो रहा न जाय॥ ६८ क

इस नर तन को धार कर, जिसे नहीं हो ज्ञान।
वृथा जन्म उस जीव का, मूढ़ मती नादान॥ ६८ ख

पंडित जी जब इमि सुन पाया, तब प्रभु को निज कंठ लगाया।
आदर सहित निकट बैठावें, पंडित वर इमि शब्द सुनावें।
सुन ब्राह्मण बालक मन लाकर, कहूं भेद कुछ मैं समझाकर।
मैं कुछ विद्या तुम्हें सिखाऊं, विद्या तुम से नहीं छिपाऊं।
एक बात मैं कर नहीं सकता, योग का सागर तर नहीं सकता।
अपना विद्या धन मैं वारूं, निज मुख से मैं सत्य उचारूं।
योग साधना मोहे न आवे, बिनु जाने कोई किमि बतलावे।
पंख हीन खग उड़ नहीं पाता, योग बिना नर मुक्ति न पाता।

दो० यदि बनना योगी तुम्हें, तब ढूंढो योगेश।
तब तुमरे मिट जायेंगे, अपने आप कलेश॥ ६६ क

कर सकता हूं मैं तुम्हें, पंडित वर विद्वान।
निर्मल धी है आपकी, दूंगा विद्या दान॥ ६६ ख

पंडित की सुन कर मृदु वाणी, अति हर्षाये शारंग पाणी।
गुरु से विद्या पढ़ते स्वामी, अखिल भुवन पति अंतर्यामी।
जो कुछ पंडित जी बतलावें, उससे अधिक दयालु सुनावें।
सब सहपाठी शीश झुकाते, प्रभु बुद्धि पर बलि बलि जाते।
प्रभु पंडित की सेवा करते, गुरु चर्णन पर निज सिर धरते।
इस प्रकार कुछ दिवस बिताये, शास्त्र तत्व मन मांहि लाये।
उधर पिता जी थे चिंतातुर, पूजें जा जा मन्दिर में सुर।
कहीं पुत्र का पता न पाया, धूप-वियोग कमल कुमलाया।

दो० चिंता में रहने लगे, निश दिन गंडाराम।
रामलाल के बिनु इने, तनिक न था विश्राम॥ ७० क

एक दिवस एक पुरुष ने, मुख से कहा विचार।

रामलाल निज नैन से, देखा मैं हरिद्वार ॥ ७० ख

एक दिवस सुन ज्योतिष प्यारे, कनखल की हम ओर सिधारे।
रामलाल हमने वहां पाया, उसको अपने निकट बुलाया।
हमने कहा चलो घर प्यारे, तब उसने यूं शब्द उचारे।
विद्या पढ़ूं यहां मन लाकर, लौटूंगा मैं विद्या पाकर।
अपना उसने पता बताया, दोबारा वह नज़र न आया।
कुशल क्षेम निज सुत की पाकर, ज्योतिषि फूले अति हर्षाकर।
ज्येष्ठ पुत्र हरिद्वार पठावें, रामलाल जो जाकर लावें।
हरिद्वार पहुंचे प्रभु भाई, कनखल में फिर ढूंढें जाई।

दो० कनखल में फिर मिल गये, रामलाल प्रिय भ्रात।
तिस सुख को कैसे लिखूं, मोसे लिखा न जात ॥ ७१ क

पंडित जी से ले विदा, चले भ्रात के संग।
अमृतसर पहुंचे प्रभु, बजने लगे मृदंग ॥ ७१ ख

कहें पिता जी सुन सुत प्यारे, नहीं भावें व्यवहार तिहारे।
चपके छोड़ हमें तुम जाते, हम चिंतातुर अति दुख पाते।
प्रिय लागत हैं तुम्हें भिखारी, भावे नहीं घर की सरदारी।
यदि तुम ज्योतिष को अपनाओ, मूँह मांगा धन यहां कमाओ।
भला नहीं है गृह तज जाना, इसमें हानि और अपमाना।
बातें लोग अनेक बनावें, उत्तम वंश कलंक लगावें।
बुद्धिमान हो सोचो ताता, दुख पावत तेरे पितु माता।
कहां तलक तोहे ढूंढ के लावें, कहां कहां हम देखन जावें।

११. प्रबल वैराग्य को देख माता पिता द्वारा विवाह रचाना ।

॥ दिव्य विवाह लीला ॥

दो० कह कर मुख से बात यह, भरे पिता जी नैन ।
बोला जाए न कंठ से, आगे एक भी बैन ॥ ७२ क

मुस्काये प्रभु देखि कर, मोह माया का जाल ।
हाथ जोड़ कहने लगे, इस विधि दीन दयाल ॥ ७२ ख

सुनिये पिता प्राण से प्यारे, मैं जानूं सब कष्ट तिहारे ।
विश्वपति जो खेल रचाया, उसकी है प्रधान यह माया ।
माया जाल सुगम नहीं टूटे, नहीं टूटे तो जीव न छूटे ।
बंधा जीव कष्ट बहु पावे, त्याज्य वस्तु को यह अपनावे ।
अमृत इस को लागत खारी, विष इसको लगती है प्यारी ।
हाड़ चाम इस को है प्यारा, अन्धेरे को कहे उजियारा ।
निज को जिसने प्रथम छिपाया, नहीं अन्त में जिसकी काया ।
वर्तमान स्थिर उसका कैसे, रज्जू में अहि भ्रम हो जैसे ।

दो० कौन पिता सुत कौन है, कौन बन्धु वर तात ।
कौन किसी का विश्व में, बना है यातायात ॥ ७३ क

सत्य जगत को मानता, उसे नहीं है ज्ञान ।
चांदी माने सीप को, महा मूढ़ नादान ॥ ७३ ख

एक रहस्य और बतलाऊं, अपने जन्म का भेद सुनाऊं ।
जब जब धर्म रसातल जावे, इस धरती को पाप सतावे ।
अत्याचार बढ़े जब आकर, लुप्त होय सब धर्म दिवाकर ।

तजें योग को जब नर-नारी, भोग में रत हों जब संसारी।
अनाचार जब दुख उपजावें, सुख का लेश नज़र नहीं आवे।
योग विहीन नरक जब भरते, योग विहीन जीव नहीं तरते।
तब तब मैं नर तन को धारूं, योग वृष्टि तब मैं करि डारूं।
सुख के क्षेत्र में हो हरियाली, इस उपवन का मैं हूं माली।

दो० त्रेता में कुछ पाप रत, देखे जब नर नार।
तब लेकर चौदह कला, लिया धनुष मैं धार॥ ७४ क
रामचन्द्र के रूप में, था मेरा अवतार।
जितने पापी जीव थे, लीने मैं संहार॥ ७४ ख

अखिल विश्व को योग सिखाया, भूमि का मैं भार मिटाया।
द्वापर जीव अधिक थे पापी, पाप कर्म की माया व्यापी।
तब मैं षोडश कला दिखाई, बनकर आया कृष्ण कन्हाई।
चक्र सुदर्शन मैंने धारा, पापी खल दल को संहारा।
अधिक पाप और अधिक कलायें, निगमागम यह भेद न पायें।
योग प्रचार स्वयं मैं कीना, गीता का उपदेश मैं दीना।
कंसादिक पापी मैं मारे, उद्धव विदुरादिक मैं तारे।
योग रवि से तिमिर मिटाया, अभय दान पृथ्वी ने पाया।

दो० अब कलियुग की वारता, सुनो पिता धर ध्यान।
अमित पाप पापी अमित, अत्याचार प्रधान॥ ७५ क
अर्थ श्रुति के बदल कर, कर रहे अत्याचार।
योग दृष्टिगोचर नहीं, भोग हुवा सरदार॥ ७५ ख

कलि के धूर्त ऋषि कहलायें, भोगी योग का स्वांग बनायें।
पंथ अनेक प्रवर्तक नाना, नाना ग्रन्थ अनेक विधाना।

वृष्टि-जीव सम गिने न जाते, अपना अपना राग सुनाते।
घर घर गुरु करहिं उपदेश, सत्य ज्ञान का नहीं लवलेश।
यम और नियम न उनको भावें, आसन प्राणायाम मिटावें।
प्रत्याहार धारणा त्यागी, ध्यान समाधि तिन से भागी।
अष्ट अंग जो मुक्ति दाता, कलि में त्यागा सब ने ताता।
योग विहीन बने सब भोगी, भोगों से हैं घर घर रोगी।

दो० घर घर विधवा नारियें, घर घर हाहाकार।
घर घर बीच दरिद्रता, दुखी सकल संसार॥ ७६ क

माता पिता जीवित रहें, मरते पुत्र जवान।
सत्य कहूं सारा जगत, हो रहा नर्क समान॥ ७६ ख

जबहिं योग नाश हो जावे, तब दुनिया को पाप दबावे।
दुःख पाप का फल कहें ज्ञानी, सुख पाते नहीं नर अभिमानी।
योग जीव के दुःख हर लेता, योग मोक्ष के फल को देता।
योग कामना पूरण करता, योगी भव सागर से तरता।
योगी को नहीं रोग सतावे, योगी जीव न दुख को पावे।
जब जब योग से होत ग्लानी, सुन लो पिता परम सम्मानी।
तब तब मैं नर तन को धारूं, योग की बिगड़ी स्वयं सवारूं।
योग नष्ट मैं नहीं सहारूं, योगी पर निज तन मन वारूं।

दो० योगी मेरा रूप है, मैं योगी का रूप।
प्रजा रूप सारा जगत, योगी नर है भूप॥ ७७ क

प्रकट हुवा मैं योग हित, करना योग प्रचार।
केवल है मेरा कर्म, जीवों का उद्धार॥ ७७ ख

घर के काम न मोको भावें, बंधन नहिं मोहे बांध दिखावें।
मैं स्वतन्त्र परतन्त्र न होना, वृथा आप का है यह रोना।
मैं जो कुछ करने को आया, वही काम मेरे मन भाया।
जीवों का उद्धार करूंगा, बंधन बीच न कभी परूंगा।
सुत की बात तात सुन पाई, गंडाराम के तब मन आई।
प्यारा पुत्र योग का प्यारा, प्रकट करे यह त्याग विचारा।
किस प्रकार इस को समझाऊं, किस प्रकार मोह माया पाऊं।
घर के काम करे यह कैसे, पिता पितामह करते जैसे।

दो० सोचा गंडाराम ने, इसका करूं विवाह।
स्वयं इसें हो जायेगी, घर की फिर परवाह॥ ७८ क

ज्योतिषी जी नहीं जानते, योगेश्वर हैं लाल।
मन अपने में समझते, प्रभु साधारण बाल॥ ७८ ख

भागवंती प्रभु की महितारी, उसने भी यह बात विचारी।
द्विज-दंपति सुत निकट बुलावें, प्रभुजी आकर शीश झुकावें।
गंडाराम हिय में हर्षाते, निकट जगत करता बैठाते।
भागवंती बोली मृदु बयना, मंद मंद मुस्काय सुनयना।
सुनो प्राण प्रिय सुत हितकारी, अमित बार माता बलिहारी।
दीप से दीपक का उजियारा, जिस से मिटता है अंधियारा।
सरिता चले कोष जल पाकर, फूले क्षेत्र नीर को पाकर।
बाल्य काल में विद्या पाइये, वेद विधि सब कर दिखलाइये।

दो० शिशुता में यदि हो नहीं, विद्या रूप सहाय।
निज आश्रम तब यह शिशु, नहीं सफलता पाय॥ ७९ क

दूसर आश्रम में सदा, आश्रय देत विवाह।

इस के बिना गृहस्थ का, होता नहीं निर्वाह ॥ ७९ ख

रथ के होउ चक्र दोउ सुन्दर, उस की उत्तम गति मनोहर।
एक चक्र से चले न मोहे, और किसी का मन नहीं मोहे।
दोउ चक्र *स्यंदन के प्राण, दोउ चक्र रथ का कल्याण।
दूसर आश्रम स्यंदन प्यारा, दोउ चक्र उसका शृंगारा।
रामलाल सुन बात हमारी, मात पिता शिशु में हितकारी।
माता पिता कर्तव्य विचारें, सुत को उस मारग पर डारें।
पुत्र सुपुत्र जो होत सयाने, मात पिता की आज्ञा मानें।
पितु आज्ञा निज सिर पर धारी, श्री रघुनाथ भये असुरारी।

दो० श्री वर श्रवण सुपुत्र ने, पितु आज्ञा धरि शीश।
प्रलयकाल तक शोभते, बन आकाशाधीश ॥ ८० क

हम जो आज्ञा दें तुम्हें, मानो तुम प्रिय तात।
उसमें ही कल्याण है, सत्य कहें हम बात ॥ ८० ख

सत्य वचन कहि प्रभु मुस्काये, मात पिता मन में हर्षाये।
माथ चूम बोली महितारी, सुन सुत हम यह बात विचारी।
तुमरा हम अब करहिं विवाहू, निज नैनन देखें उत्साहू।
सेहरा बांध बरात सजावें, सुन्दर दूल्हा तुम्हें बनावें।
राम रूप तुम सीता लाओ, पितु गृह दशरथ सदन बनाओ।
तोरे सिर पर जल मैं वारूं, पुत्र वधू को मैं शृंगारूं।
पुत्र वधू मम गृह शृंगारा, उससे बढ़े अधिक परिवारा।
जो पूर्वज हैं स्वर्ग सिधाये, जल पावें मन में हर्षाये।

दो० इस कारण तेरा करें, हम अब शीघ्र विवाह।

*रथ

सुन बेटा तेरे पिता, रखते हैं यह चाह ॥ ८१ क

नत मस्तक सुनते रहे, अखिल विश्वपति राम।
रात्री जान करने चले, विश्वनाथ विश्राम ॥ ८१ ख

गंडाराम बोले मुस्काकर, प्रिये कहा तुम ने समझाकर।
प्यारा पुत्र बात तब माना; मैं समझूं मन में हर्षाना।
ऐसा को बालक है प्यारी, जिसे विवाह न लाग सुखारी।
फिर तेरा कहना अति प्यारा, ब्रह्मकुण्ड में सुरसरि धारा।
सुंदर सहज स्वर्ण जिमि प्यारी, फिर उस की पावन शृंगारी।
कहो वह मन किसका नहिं मोहे, मृदुता सत्य दोउ वर तोहे।
पहले था मेरा मन डोला, इस कारण मुख से नहीं बोला।
रामलाल माने नहीं माने, मनोभाव मेरे सकुचाने।

दो० प्यारी तुमने जिमि कहा, ऐसे कहे न कोउ।
सत्य कहूं महिला सफल, कोऊ तुम सम होउ ॥ ८२ क

मेरा मन सानन्द है, नीर पाये जिमि मीन।
तेरे वचनों ने प्रिये, सुख सागर सुख दीन ॥ ८२ ख

एक बात मैं और बताऊं, गुप्त रही अब मैं प्रकटाऊं।
रामलाल जब जन्मे प्यारी, कुंडली उस की मैं लिख डारी।
नवग्रह चाल देख हर्षाया, विद्या गणित ने यह फर्माया।
यह बालक होगा योगीश्वर, हम सम होगा नहीं वृजीश्वर।
अब हम इसका करें विवाहा, यह होगा कैसे निर्वाहा।
प्रभु माया नवग्रह से न्यारी, इससे धीरज मोको प्यारी।
जगदाधार करें शुभ कामा, हो विवाह का शुभ परिणामा।
शीघ्र करें शुभ कारज प्राणी, ऋषि मुनि संतन की यह वाणी।

दो० जननी योगी राज की, धन्य कहे संसार।
जिसमें योगी तन धरे, धन्य है वह परिवार ॥ ८३ क

रामलाल योगी बने, इसमें मुझे न रोष।
योगी नर की सप्तकुल, धो डाले निज दोष ॥ ८३ ख

योगी कल्पवृक्ष की छाया, मुंह मांगा सब कुछ नर पाया।
योगी है सम्राट सुजाना, योगी को है पूरण ज्ञाना।
इन्द्रादिक योगी के दासा, राजा और एक उपहासा।
योगी के गुण ब्रह्मा गाये, मदनारी बलिहारी जाये।
योगी देख विष्णु सुख पाते, योगी नर पर बलि बलि जाते।
योगी की सब संपद दासी, योगी उस से रहत उदासी।
योगी को यमराज न मारे, व्याधि नहीं उसे संहारे।
योगी सर्व सुखों का दाता, योगी अखिल विश्वपितु माता।

दो० तीन लोक चौदह भुवन, योगी की सब सैर।
राग न योगी नर करे, करे न कबहूं बैर ॥ ८४ क

योगी बनना कठिन है, और सुगम सब बात।
रामलाल योगी बने, ज्योतिष यह बतलात ॥ ८४ ख

* जो नव निधि कुबेर घर आई, उनके नाम सुनो मन लाई।
महा-पद्म और पदम पुकारें, शंख मकर मुनी लोग उचारें।
कच्छप और मुकुन्द सुनाई, कुंद नील ऋषियों ने गाई।
खर्वनाम नवमी का आया, प्रेम सहित मैं प्रिय सुनाया।
इन से यक्ष राज सुख पावें, योगी जन इन को ठुकरावें।

---

* कुबेर की नवनिधि :— १. महापद्म २. पद्म ३. शंख ४. मकर ५. कच्छप ६. मुकुंद ७. कुन्द ८. नील ९. खर्व

धन्य भाग्य तुम योगी जाया, यह है परम पिता की दाया।
अब तुम प्रिये कहो मन आई, मैं ज्योतिष की बात बताई।
भागवंती फिर सोचन लागी, पति वचनों की तिय अनुरागी।

दो० कथन आपका सत्य है, ईश्वर सम मम नाथ।
कर्म गति की लेखनी, है उस प्रभु के हाथ॥ ८५ क

रामलाल दूल्हा बने, देखूं मैं निज नैन।
स्वामी मिथ्या नहीं कहूं, सत्य कहे मैं बैन॥ ८५ ख

इतनी कही नैन जल छाया, मोह ममता की अद्भुत माया।
मातृ प्रेम सागर अवगाहा, होत असीम मात उत्साहा।
गंडाराम जी सोचन लागे, कहने लगे मनहिं अनुरागे।
प्राण प्रिये जो वचन उचारा, वह मोको भी लागत प्यारा।
आगे जो कुछ प्रभु को भावे, होता वही शास्त्र बतलावे।
इस प्रकार दंपति अनुरागे, अर्ध निशा भई सोवन लागे।
गंडाराम निश्चय मन कीना, करें विवाह इधर मन दीना।
कठिन नहीं है पुत्र विवाहु, ईश्वर कृपा भलो निर्बाहु।

दो० सम्बत सुंदर विक्रमी, उनीस शत और साठ।
गंडाराम रचने लगे, सुत विवाह का ठाठ॥ ८६ क

आया नगर भसीन से, नापित एक सुजान।
गंडाराम के द्वार पर, पूछत पहुंचा आन॥ ८६ ख

गंडाराम उसको सत्कारें, सादर निकट उसे बैठारें।
आदर करि जल पान करावा, नापित मन में अति सुखपावा।
नापित कहे जोरि कर हाथा, सुनिये ब्राह्मण कुल के नाथा।
मैं भसीन से चलि कर आया, पंडित माधोराम पठाया।

उनकी पुत्री युवा सुशीला, जनक सुता जिमि सिय उर्मीला।
उसका शगुण मैं लेकर आया, अहोभाग्य तव दर्शन पाया।
शगुण कृपा करके अपनाओ, रामलाल को शगुण लगाओ।
दशरथ बनो ज्योतिषि प्यारे, माधीराम हैं जनक विचारे।

दो० सिया सुभद्रा जानिये, रामलाल हैं राम।
युग जीवें जोड़ी युगल, कृपा करें घनश्याम॥ ८७ क

पहुंचें नगर भसीन में, सुन्दर जोरि बरात।
नापित कर यह प्रार्थना, नत मस्तक हो जात॥ ८७ ख

गंडाराम मन में हर्षाये, भ्रात बंधु तब निकट बुलाये।
करि स्वीकार शगुण ले लीना, नापित विदा विधि से कीना।
भागवंती माता हर्षावे, विश्व बधाई देवन आवे।
कवि विस्तार न करि दिखलावे, ग्रन्थ बढ़े इससे भय खावे।
शुभ दिन निकट विवाह का आया, मात पिता ने अति सुख पाया।
उचित वस्तु सप्रेम बनाई, सुंदर से सुन्दर अधिकाई।
भूषण वस्त्र लगें जो प्यारे, नूतन थे बनवाये सारे।
मनहर सुन्दर सजे बराती, कवि से शोभा कही न जाती।

दो० मंगल गावत नारियें, बाजे बजे अपार।
सब आनन्द मिल आ गये, गंडाराम के द्वार॥ ८८ क

ब्रह्मादिक सब देवता, देखन चले विवाह।
मिल आई देवांगनां, मन में अति उत्साह॥ ८८ ख

लक्ष्मी चली, चली इन्द्राणी, गिरजा शारदा और भवानी।
नारी बन अमृतसर आईं, भागवंती को देत बधाईं।
लोग अलौकिक निरखें नारी, देख देख सब भये सुखारी।

तनु बिनु काम देव भी आये, रति के संग अनूप सुहाये।
ऋतु सम्राट् देख तरु फूलें, मंगलमय बहु झूलन झूलें।
भानुचन्द्र देखें उत्साहु, योगीराज का आज विवाहु।
नवग्रह भये स्वयं अनुकूला, घोड़ी चढ़े सुमंगल मूला।
सिर पर सेहरा परम सुहावे, बाजे बजें समय मन भावे।

दो० भटजन गावत सेहरा, मीठे मीठे बैन।
अति प्रसन्न हिय तात का, माता के मन चैन॥ ८६ क

सुर पूजे कुल रीति से, बहु विधि कीना दान।
ब्राह्मण गुरु पूजे सभी, व्याहुन चले सुजान॥ ८६ ख

सकल शगुण नाना विधि सोहे, बर बरात सब के मन मोहे।
वृद्ध युवा बालक शृंगारे, सब ने निज निज रूप संवारे।
सब वयस्क मिल गावहिं गीता, मृदुल बैन सुग्रीव पुनीता।
वयो वृद्ध मिल सगुण मनावें, दूल्हा देख मन में हर्षावें।
नाना विधि बाजन बाजे; देख छवि रति पति मन लाजे।
दिव्य वसन आभूषण सोहें, कामदेव के मन को मोहें।
चढ़ि विमान देवांगन गावें, सबहि त्रिदशगण कुसुम बर्सावें।
अति अनूप सब चले सुजाना, शिव विरंचि पूजें विधि नाना।

दो० अति प्रसन्न मुस्का रहे, श्रीयुत गंडाराम।
कहें ईश पूरण करो, निज दासन के काम॥ ६० क

पहुंचे नगर भसीन में, करते हास्य विनोद।
युवकन को मिलि वृद्ध सब, करते नीति प्रबोद॥ ६० ख

माघीराम जबहि सुन पाया, ले बरात ज्योतिषिवर आया।
अति प्रसन्न भाई बुलवावें, हो प्रसन्न सब चलि चलि आवें।

नगर निवासी चतुर सुजाना, करन चले स्वागत मनमाना।
विधि अनुकूल करें सब कामा, मिलहिं परस्पर करें प्रणामा।
मंगल कुशल पूछ हर्षायें, दूल्हा देख मन में सुख पायें।
प्रथम सबहिं जल पान कराया, सबको सबने शीश झुकाया।
सादर नगर बीच सब आये, सादर सबने डेरे लाये।
नर नारी मिल देत बधाई, अमित हर्ष नहीं हृदय समाई।

दो० वेद विधी कुल रीति सब, हो रही थी सप्रेम।
हो रहे भी प्रबन्ध थे, जिस प्रकार है नेम॥ ६१ क

स्थान स्थान पर हो रहा, दोउ ओर से दान।
धन्य धन्य करते सभी, भट गण करते गान॥ ६१ ख

वेदी परम पवित्र सजाई, कवि को उपमा हाथ न आई।
परम हर्ष युत हुआ विवाहा, मन का प्रकट न हो उत्साहा।
मन में कवि के यही विचारा, ग्रंथ बढ़े यदि हो विस्तारा।
श्री प्रभु ने जिमी आज्ञा कीनी, उसी प्रकार कथा रच दीनी।
अतिशय उक्ति प्रभु नहिं चाहें, अपनी गाथा आप निबाहें।
यदि आज्ञा कवि प्रभु की पावे, तो करि के विस्तार दिखावे।
कवि संक्षिप्त कथा को कहता, प्रभु जी की आज्ञा में रहता।
स्वयं लिखें प्रभु स्वयं लिखावें, हो निमित्त कवि यश को पावें।

दो० बुद्धि हीन मैं गुण नहीं, नहिं विद्या बल मोर।
इस बेज़र को चाहिये, नाथ अनुग्रह तोर॥ ६२ क

कर अपनी पूरण कृपा, सिर पर देवो प्यार।
भागवंती-सुत नाथ जी, कीजो यह उपकार॥ ६२ ख

वेद विधि से हुआ विवाहु; लिखा ना जाय अमित उत्साहु।

माघो राम बहु दाज बनाया, कुला रीति सब को दिखलाया।
माघोराम कहे कर जोरी, सेवा मो सो भई न तोरी।
निज कन्या तव दासी कीनी, करि स्वीकार कृपा करि लीनी।
कहां आप कहां मैं इक दीना, अहोभाग्य अपना मोहे लीना।
मैं कुछ सेवा करि नहीं पाया, कृपा आपकी कंठ लगाया।
किस मुख से मैं तव गुण गाऊं, मांग कहां से बुद्धि लाऊं।
शाक विदुर ने जैसे दीना, करि स्वीकार कृष्ण जिमि लीना।

दो० तैसे मो पर की कृपा, श्रीयुत गंडाराम।
स्वयं अनुग्रह से किये, मेरे पूरण काम॥ ६३ क

मेरा इसमें कुछ नहीं, जो कुछ दीखे तोर।
तुमरा तुम को देत हूं, क्या लागत है मोर॥ ६३ ख

रामलाल तुम राम समाना, राम रूप तुम को मैं माना।
मम पुत्री दासी कर जानो, जनक-नंदनी इसको मानो।
निज चरणों की सेवा दीजो, इस को कभी पृथक नहीं कीजो।
आप चन्द्र यह कृष्ण समाना, नहिं नाथ इसको अभिमाना।
यदि कन्या कुछ अनुचित करहिं, पांव अयोग्य स्थान यदि धरहिं।
इसे प्रेम से तब समझाना, मन में रोष कबहुं नहीं लाना।
परम लाडली मेरी जाई, नगर रीति यह सीख न पाई।
जन्मी पली ग्राम के भीतर, सकुचायेगी नगर में जाकर।

दो० शिक्षा देनी आपने, मम पुत्री ग्रामीण।
दासी अपनी जान कर, अपनानी मति हीन॥ ६४ क

निगमागम कहते सभी, निर्बल के बलराम।
इसे बनाना रुकमणी, रामलाल घनशाम। ६४ ख

गंडाराम तब वचन उचारे, माघीराम तुम मोको प्यारे।
रामलाल को निज सुत जानो, मेरी बात सत्य कर मानो।
कन्या रूप सुभद्रा मोको, सत्य बात कहता मैं तोको।
चिंता तज कर हर्ष मनाओ, बात कोई मन में नहिं लाओ।
अष्ट सिद्धि नव निधि मैं पाई, परम अनुग्रह कथा न जाई।
किस प्रकार तव गुण मैं गाऊं, बार बार निज भाग्य सराहुं।
पारस तुम हम लोह समाना, संग तरहिं यह मम अनुमाना।
रसना क्षुद्र समुद्र बडाई, बुद्धि तुंबिका तरा न जाई।

दो० परम अनुग्रह आपका, किस विधि करूं बखान।
रखली लज्जा आपने, हम सब थे नादान॥ ६५ क

इस प्रकार दोउ ओर से, होत प्रेम की बात।
प्रेम नीर निधि देखकर, शारद भी सकुचात॥ ६५ ख

रामलाल नारिन बुलवाया, दूल्हा तिन के संग सिधाया।
कहें सालियें छन्द सुनावो, पांच मुद्रिका हमसे पावो।
मुस्कायें उनकी सुन वाणी, फिर सकुचायें शारंग पाणी।
चार वेद जिनके हैं श्वासा, ब्रह्मादिक जिनके हैं दासा।
नारद शारद जिनको ध्यावें, शेष महेश जासु गुण गावें।
सकल जगत के जो प्रभु स्वामी, वे मुस्का रहे अन्तर्यामी।
कहें सालियें गूंगा आया, मात पिता कुछ नहीं सिखलाया।
लाज सुधासर को इस लाई, बाल्यकाल नहिं विद्या पाई।

दो० इक बोली चातुर त्रिया, रामलाल चालाक।
पहले मांगे मुद्रिका, बैठा लाकर ताक॥ ६६ क

मुट्ठी इस की गर्म हो, तभी सुनावे छन्द।

रामलाल भोला नहीं, नटनी का फरजन्द ॥ ६६ ख

हंस कर सखि इक कहने लागी, रामलाल कहते वैरागी।
गंडाराम का यह नहीं जाया, भागवंति की अद्भुत माया।
संत पुत्र सन्तो से लीना, कौन कहे यह किसने दीना।
साधु संग करके सुख पावे, मात पिता न इसको भावे।
बहिन बनी साधु की नारी, विधि के लेख पे हम बलिहारी।
इक बोली यह परम सयाना, बड़ा चतुर है मैं पहिचाना।
हम सब बोल बोल कर हारी, मुख नहीं खोला इस इक बारी।
बहुत बोलना इसे न भावे, अथवा मां की याद सतावे।

दो० और एक कहने लगी, लाते माता संग।
उसकी शोभा देखते, मिलकर सभी मलंग ॥ ६७ क

फिर बोली इक सुंदरी, छन्द सुनो मन लाय।
सुनने हमने छन्द हैं, बात भूलि नहीं जाय ॥ ६७ ख

हमें न जब तक छन्द सुनावे, रामलाल जाना नहीं पावे।
छन्द कहो अब देर न लाओ, पाँच मुद्रिका ले घर जाओ।
छन्द नहीं यदि तुमको आवे, तो कोउ फीस को ले सिखलावे।
फीस एक दीजो निज भाई, और फीस हम मांग न पाई।
रामलाल तब गिरा उचारी, क्या लेगी नारी को नारी।
नर नारी को मांग दिखावे, नर के काम नारी ही आवे।
तुम नारी हो नर को पावो, मिथ्या बात न मुख पर लावो।
सब हंसे सुन कर नर नारी, कहें चतुर इसकी महतारी।

दो० छन्द छन्द करने लगे, प्रभु लगे मुस्कान।
फिर बोले करुणानिधि, मुख से वचन प्रमान ॥ ६८ क

छन्द कहे हैं वेद को, वेद सुनेगा कौन।
वैदिक शिक्षा वे सुनें, वेद जानते जौन॥ ६८ ख

वेद वचन को तुम क्या जानो, ग्राम्य बात को तुम पहिचानो।
वेद ऋचा प्रभु मुख से गावें, फिर प्रभु अर्थ उन्हें समझावें।
एक कहे यह पंडित आया, इसकी माता इसे पढ़ाया।
कहे दूसरी छन्द न आवे, मांग एकादशी हमें दिखावे।
कहे तीसरी छन्द सुनाओ, नहीं आवे तो मौन दिखाओ।
कहें प्रभु मैं सब कुछ जानूं, भाव तुम्हारा मैं पहचानूं।
सुनो सभी अब ध्यान लगाकर, हिन्दी छन्द कहूं मैं गाकर।
जहां भाव कुछ समझ न आवे, पूछे मुझ को नहिं सकुचावे।

दो० श्री करुणासागर प्रभु, कहने लागे छन्द।
पुष्पन के सम बचन थे, सुनें सभी सानन्द॥ ६९ क

आगे आगे हो गईं, जो थीं चतुर सुजान।
रामलाल प्रभु जगत पति, लागे छन्द सुनान॥ ६९ ख

छन्द :- १. छन्द सखी इक मैं कहूं जो योगी महाराज।
वे करते हैं जगत के पूरण आकर काज।
पूरण आकर काज मोक्ष का मेवा देते।
मोह माया को त्याग सदा वे आनन्द लेते।
तीन गुणों के ताप का करता वही इलाज।
छन्द सखी इक मैं कहूं जो योगी महाराज।

२. छन्द सखी इक मैं कहूं योगी सब का मीत।
घाम सताती नहिं उसे नहिं सताती शीत।
नहीं सतावे शीत द्वेष अनुराग न राखे।

मीठा कड़वा सभी एक संग योगी चाखे।
हार नहीं उसकी कभी लेता बाजी जीत।
छन्द सखी इक मैं कहूं योगी सब का मीत।

३. छन्द सखी इक मैं कहूं मुक्ती मारग योग।
योगी प्यारा ईश का नर्क द्वार है भोग।
नर्क द्वार है भोग भोग से रोग सतावें।
रोगी जो हैं जीव कभी वे सुख नहीं पावें।
रहते आवागमन में योग हीन जो लोग।
छन्द सखी इक मैं कहूं मुक्ती मारग योग।

४. छन्द सखी इक मैं कहूं स्वप्न जान संसार।
निशिदिन जीवन जात है इसका नहीं इतबार।
इसका नहीं इतबार गुरु योगी अपनाओ।
सीखो प्राणायाम ब्रह्म का दर्शन पाओ।
होती नहीं बिनु योग के बेज़र नैया पार।
छन्द सखी इक मैं कहूं स्वप्न जान संसार।

५. छन्द सखी इक मैं कहूं योगेश्वर घनश्याम।
अखिल विश्व के हित कही गीता परम ललाम।
गीता परम ललाम योग की शिक्षा देती।
सकल ताप संताप जीव के यह हर लेती।
ऐसे योगीराज को बेजर करे प्रणाम।
छन्द सखी इक मैं कहूं योगेश्वर घनश्याम।

इस प्रकार प्रभु छंद सुनाये, छंदों में निज भाव बताये।
बलि बलि जात सकल नर नारी, गिरा सुधा सम प्रभु को प्यारी।
शय्या दान समय फिर आया, शय्या पर प्रभु को बैठाया।

गठ बंधन का कारज कीना, अमित दान श्री ज्योतिषि दीना।
सभी नारि नर थे अनुरागे, सब मिल शिक्षा देवन लागे।
सुनो सुभद्रा निज मन लाकर, यश लेना तुम पति गृह जाकर।
सीता सम बन कर दिखलाना, पति चरणों पर शीश झुकाना।
माता सास स्वसुर पितु प्यारा, वृथा कथन नहिं जाय हमारा।

दो० मीठे मीठे बचन सों, सबसे करना प्यार।
ईश्वर के सम जानना, पुत्री श्री भरतार॥ १०० क

एक पतिव्रत धर्म ने, यम को अनुचर कीन।
सावित्री ने जगत में, यश अपार है लीन॥ १०० ख

सदा सुपुत्र एक कुल तारे, दो कुल पुत्री करे उजयारे।
जब स्वधर्म पालती नारी, तब सब देव जांय बलिहारी।
निज गृह नारी स्वर्ग बनाये, एक पतिव्रत से तरि जाये।
यह गंगा बन पापी तारे, काली बन दुष्टों को मारे।
बने शारदा विद्या देती, मूढ़ मतों के तम हर लेती।
प्रथम पूजना इसकी आई, नर से प्रथम यह पूजी जाई।
सियाराम कहता संसारा, राधा कह कर कृष्ण पुकारा।
राम सिया कहता नहिं कोई, सुख पावे नहिं नारि द्रोही।

दो० इस कारण पुत्री सदा, करो धर्म से प्रेम।
मानो आज्ञा वेद की, नहीं भूलना नेम॥ १०१ क

इस विधि शिक्षा दें सभी, नैनों से जल जात।
कहें सभी युगयुग रहे, अटल अचल अहिवात॥ १०१ ख

माघीराम नैन जल छाया, मोह माया की अचरज माया।
स्वसुर सदन पुत्री जब जावे, तब पितु मातु को कुछ नहीं भावे।

हो पाषाण हृदय पितु माता, तदपि रहा नहीं उनसे जाता।
प्रथम जन्म दे पाल दिखावें, मात पिता अति लाड लडावें।
पुत्र से लागत पुत्री प्यारी, सुता अधिक सुत से हितकारी।
पुत्र युवा आंखें दिखलाता, सेवा से मन सदा चुराता।
पुत्री नम्र भाव अपनाती, मात पिता को सुख पहुंचाती।
मात पिता जो दें सो लेती, सुपने में भी दुख नहीं देती।

दो० पुत्री जब बिछुड़न लगे, तब दुख देत महान।
मात-पिता के गृह विषे, पुत्री है महिमान॥ १०२ क

जिस घर में जन्मे पले, वह घर देती त्याग।
दूसर घर में जा करे, जीवित यह अनुराग॥ १०२ ख

जिनके पुत्री वह नर जानें, पुत्री हीन न परि पहचानें।
कैसे होता हृदय अधीरा, बांझ न जाने प्रसव की पीरा।
पुत्री युवा स्वसुर गृह जावे, यह विधि वेद शास्त्र में आवे।
यही प्रथा जग में चलि आई, पुत्री होती अन्त पराई।
राजा रंक सबने यह गाया, पुत्री धन है अन्त पराया।
माधीराम कहें गद गद वाणी, रामलाल तुम शारंग पाणी।
लक्ष्मी रूप सुभद्रा मेरी, चरणों की दासी है तेरी।
कृपानाथ इसको अपनाना, इस के दोषण पर नहिं जाना।

दो० सभी काम विधि वत् भये, करूं नहिं विस्तार।
फिर बरात चलने लिए, होने लगी तैयार॥ १०३ क

मिलकर सभी सहेलियें, गले सुभद्रा लांय।
जल नैनों से बह रहा, तन मन में अकुलांय॥ १०३ ख

माधीराम सब कारज कीने, भूषण वस्त्र अनेकहुं दीने।

विविध दाज शोभा अधिकाई, देख देख सब करत बड़ाई।
शगण किये बहु क्षेत्र मनाये, किये काज सब के मन भाये।
सब संबंधी मिल मिल हरषे, यश के सुमन दोउ पर बरसे।
एक एक को कंठ लगावें, वह अनुराग लिखा नहिं जावे।
याचक गण मुंह माँगा पावें, गंडाराम के गुण सब गावें।
माघीराम अति शोभा पाई, डोली में निज सुता चढ़ाई।
चली बरात सुधासर ओरा, विधु बरात बहु नैन चकोरा।

दो० अमृतसर में आ गई, मंगल सहित बरात।
उस आनन्द प्रमोद की, महिमा लिखी न जात॥ १०४ क

माता पानी वारती, हो रहे शगण अपार।
लोक रीति कीनी सभी, करता जिमि संसार॥ १०४ ख

सकल सृष्टि जिस प्रभु की प्यारी, जो भरता सब के हितकारी।
त्रिगुणातीत जगत से न्यारे, त्रिभुवन पति परम उजियारे।
नेति नेति श्रुति कह गुण गावे, मन बुद्धि में जो नहिं आवे।
इन्द्रादिक जिस प्रभु के चेरे, चलते चन्द्र रवि जिसके प्रेरे।
महिमा जिस की अपरम्पारा, भक्तन हित जो ले अवतारा।
पवन श्वास जिसका श्रुति गावे, शेष शारदा पार न पावे।
जिसके रोम रोम संसारा, भव स्वरूप भव से जो न्यारा।
योगी जन जिसके गुण गाते, जिसका पार न ऋषि मुनि पाते।

दो० तिस स्वामी के शीश पर, पानी वारे मात।
उस प्रभु की लीला अकथ, कवि से कही न जात॥ १०५ क

मन्द मन्द मुस्का रहे, सकल विश्व पति राम।
राम सुभद्रा दंपति, बेज़र करे प्रणाम॥ १०५ ख

सकल जगत के चालक स्वामी, त्रिभुवन करता अन्तर्यामी।
वह प्रभु सद् गृहस्थ बन सोहें, जो रति पति के मन को मोहें।
निराकार जो ज्योति स्वरूपा, विश्वपिता भूपन के भूपा।
यम कुबेर जिनके हैं दासा, प्रलय दृष्य जिन के उपहासा।
छंदातीत सकल अविनाशी, दुःख निवारण सुख की राशी।
मत्स्य कच्छ शूकर तन धारी, नर हरि रूप भक्त भय हारी।
वामन परशुराम श्री रामा, षोडश कला सहित घनश्यामा।
बोध रूप कलि के उजियारे, जगत रूप प्रभु जग से न्यारे।

दो० रामलाल प्रभु वर परम, लेकर कला अनंत।
गंडाराम के गृह विषे, प्रकट भये भगवन्त॥ १०६ क

धनुष सुदर्शन छोड़कर, अपनाया प्रभु योग।
आगये संकट हरण को, दुखी देखकर लोग॥ १०६ ख

योगेश्वर भक्तन के प्यारे, कलियुग में ले योग पधारे।
एक रहस्य और कवि गावें, क्यों प्रभु धनुष चक्र तजि आवें।
तुला रूप भक्तन सुखदाता, मर्यादा पालें भव त्राता।
त्रेता में खल थोरे पाये, लेकर धनुष कृपामय आये।
जो वस्तु हो जैसी भारी, बट्टा ले उतना व्योपारी।
थोरे खल धनु से संहारे, निज भक्तन के काज संवारे।
बहुत नीच द्वापर में पाये, ले प्रभु चक्र सुदर्शन आये।
खलदल मार धर्म अपनाया, यह है विश्वपति की माया।

दो० कलि में देखा नाथ ने, घर घर पाप महान।
स्थान स्थान पर हो रहा, पापी पाप प्रधान॥ १०७ क

अस्त्र शस्त्र सब तजि दिये, कीना प्रभु उपकार।

नहीं तो सारे जगत को, हो जाता संहार ॥ १०७ ख

योग शस्त्र योगेश्वर लीना, इस प्रकार सब को सुख दीना।
योगामृत प्रभु ने बरसाया, धन्य कहो जिन जिन अपनाया।
गीता में प्रभु ने फरमाया, योगी नर मोरि मन भाया।
योग भाव जो जन अपनावें, वे जन इस प्रभु के मन भावें।
केवल योगी प्रभु को प्यारे, प्रभु नैनन के योगी तारे।
योगी प्रभु के बालक जानो, योग की महिमा तुम पहिचानो।
योगी मोक्ष धाम को पाता, लाख चौरासी में नहिं आता।
योग स्थापना हित प्रभु आवें, भव की बिगड़ी स्वयं बनावें।

दो० मंद भाग उनके सदा, जो नर योग विहीन।
नहीं उनके सुख संपदा, रहें सदा वे दीन ॥ १०८ क

रामलाल कलिमल हरण, सकल जगत आधार।
उस योगेश्वर से सदा, हे मन करलै प्यार ॥ १०८ ख

धन्य धन्य योगेश्वर स्वामी, सकल जगतपति अन्तर्यामी।
सुर नर सम योगेश्वर प्यारे, गंडाराम नैनन के तारे।
कलितम नाशक रवि सुखदाई, कृपा सिन्धु प्रभु पूरण न्याई।
दीन दयाल भक्त मन रंजन, ताप निवारन भव दुःख भंजन।
ज्ञानी दयासागर अविनाशी, अजर अमर सब सुख की राशी।
कला अनन्त अयोनि अभेदा, नेति नेति कह गावत वेदा।
भक्तों के मन सदन सुहायें, तह पर आसन नाथ बिछायें।
धन्य धन्य भव के जलयाना, भाग्यवंती सुत श्री भगवाना।

१२. पितृवर्य पं० गंडाराम का देहावसान

दो० जो जन्मा संसार में, वह मृत्यु का ग्रास।
मृत्यु के पीछे जन्म, यह पूरण विश्वास ॥ १०९ क

जिनका यश संसार में, वे जीवित नर नार।
अपयश मृत्यु रूप है, कहते ऋषि विचार ॥ १०९ ख

निकट काल जिसके चलि आवे, तब उपचार अफल हो जावे।
औषधि तब कुछ कर न पावे, वैद्यराज की मति खो जावे।
काल गति वरणी न जाई, अंतिम घड़ी सभी पर आई।
राजा रंक न इससे छूटे, जीवन तंतु अंत को टूटे।
यह संसार सराय समाना, बना है इसमें आना जाना।
एक दिवस ऐसा चलि आवे, छोड़ जगत हर प्राणी जावे।
माता पिता पुत्र अरु नारी, सुंदर उपवन महल अटारी।
धन और धान्य न कुछ करि पावे, निकट काल जब चलि कर आवे।

दो० स्थावर जंगम जगत के, सदा रहें नहीं जान।
बेज़र इससे मोह तज, भज ले श्री भगवान ॥ ११० क

४ ६ ९ १
* वेद शास्त्र निधि ओम का, सम्वत विक्रम जान।
पंडित गंडाराम का, हुआ महा प्रस्थान ॥ ११० ख

गृह में महाशोक तब छाया, प्रभु के द्वार सुधासर आया।
नयन अनेक अश्रु बरसावें, कंठ अनेक रुदन ध्वनि लावें।
रोने लगे सभी नर नारी, भरे शोक में सब संसारी।
पंडित जी के सब गुण गावें, यश के पुष्प सभी बरसावें।

*संवत 1964 विक्रमी

कहे कोउ ज्योतिषि थे भारे, कोउ कहे ईश के प्यारे।
कोउ कहते उनको हितकारी, कोउ कहते पंडितवर भारी।
कहते लोग परम थे दानी, साधु कहें संत थे ज्ञानी।
कहते सभी सभा शृंगारा, ऐसा हमने नहीं निहारा।

दो० गंगा यश की बह रही, कर रहे लोग स्नान।
पंडित गंडाराम के, करें सभी गुणगान॥ १११ क

बिन योगेश्वर के सभी, दुखी हुआ परिवार।
वेद विधि से कर दिया, मरघट में संस्कार॥ १११ ख

क्रिया कर्म सब विधि से कीना, अमित दान विप्रन को दीना।
शोक प्रकट करने जन आवें, तब श्री प्रभु जी वचन सुनावें।
ध्यान लगाय सुनो सब भाई, गति काल की वरणी न जाई।
जो जितनी आयु है लाया, उसने उतना समय बिताया।
यह प्रभु की माया है प्यारे, सब कुछ होत उसी के द्वारे।
जो आया उसने चलि जाना, वृथा होत तिस में पछिताना।
पश्चाताप से कुछ नहीं होवे, क्या कर लेगा जो जन रोवे।
है मृत्यु भी उस की छाया, मोक्ष बिना मृत्यु किस पाया।

दो० प्राप्त होत है मृत्यु से, स्वर्गपुरी का धाम।
साधे है इस जीव के, एक मृत्यु सब काम॥ ११२ क

भले पुरुष की मृत्यु में, नहिं चाहिये संताप॥
स्मरण होत दुःख देत हैं, पापी नर के पाप॥ ११२ ख

पूज्य पिता वैकुण्ठ सिधारे, यश उनका विस्तृत है सारे।
जिसका यश उसने क्या मरना, उसका शोक वृथा है करना।
शोक त्याग निज निज गृह जाओ, प्रभु चरणारविंद उर लाओ।

उत्तम कर्म करो सब भाई, उत्तम कर्म सदा सुख दाई।
उत्तम कर्म मोक्ष कर दाता, उत्तम कर्म स्वर्ग ले जाता।
उत्तम कर्म प्रभु को प्यारा, उत्तम कर्म करे निस्तारा
उत्तम कर्म योग को पाना, योग मिटावत आना जाना।
योग बिना नहीं निर्मल काया, कृष्ण चन्द्र गीता में गाया।

१३. हरिद्वार ऋषिकेश और ब्रह्मपुरी वन में योगी गुरु की खोज

दो० प्रभु के इस उपदेश से, सभी हुए सानन्द।
योगेश्वर के वचन से, मिट जाते सब द्वंद ॥ ११३ क

श्री प्रभु जी आदि से, थे वैराग्य के रूप।
अब प्रभु के वैराग्य ने, धारा रूप अनूप ॥ ११३ ख

प्रभु समाधि में रहने लागें, और काम सब श्री प्रभु त्यागे।
समय अधिक ध्यान में लावें, अथवा संत दर्श अपनावें।
मन में दीन दयाल विचारा, करना मुझे काम है भारा।
ऊंची स्थिति योग की पाऊं, तजि कर अपनी नगरी जाऊं।
परम संत बस्ती नहीं मानें, नगरों में वे संत न आनें।
इस कारण मैं बन को जाऊं, संतन के जा दर्शन पाऊं।
एक दिवस श्री प्रभु जी प्यारे, हरिद्वार की ओर सिधारे।
वहां से ऋषिकेश प्रभु आये, सिंध क्षेत्र में डेरे लाये।

दो० गंगा की निर्मल छटा, निर्मल प्रभु का रूप।
निर्मलता दोनों मिलीं, बन गया समय अनूप ॥ ११४ क

श्री प्रभु जी का दर्श कर, गंग प्रसन्न महान।
धन्य भाग्य अपने कहे, आये श्री भगवान ॥ ११४ ख

श्री प्रभु जी जहां डेरे लाये, एक पथिक वहां चलि कर आये।
वह व्यक्ति निज घर से आया, फिर अपने ससुराल सिधाया।
मारग बीच हुआ वैरागी, मोह माया उस मन से त्यागी।
निज गृह त्याग बनों में आया, संत संगति में मन लाया।
ऋषिकेश में वह चलि आवे, प्रभु चरणों में शीश झुकावे।
भक्ति योग की कथा सुहाई, उस व्यक्ति प्रभु से सुन पाई।
गद गद हुआ प्रभु को पाकर, निज निवास में ठहरा जाकर।
निद्रावश निशिकाल बिताया, प्रात समय नहीं उठ कर आया।

दो० श्री प्रभु जी देखन लगे, उस व्यक्ति की बाट।
क्या कारण खुलते नहीं, सूरज चढ़े कपाट ॥ ११५ क

औरों को प्रभु पूछते, पथिक कहां है मीत।
अब तक निकला ही नहीं, रात्रि हुई व्यतीत ॥ ११५ ख

तिस निवास पहुंचे सब आकर, दी आवाज़ द्वार खटकाकर।
फिर भी उत्तर एक नहिं पाया, अमित बार द्वार खटखटाया।
फिर वहां तुरत पुलीस बुलाई, तिस को घटना सभी सुनाई।
फिर पुलीस ने दरवाजा तोड़ा, भीतर गये नहीं मुख मोड़ा।
प्राण हीन वह व्यक्ति पाया, भेद न इस घटना का आया।
आश्रम में छा गई उदासी, कौन कहे वह कहां का वासी।
हुई अचानक घटना भाई, काल गति वरणी न जाई।
अग्नि भेंट तिस का शव कीना, अंतिम कर्म वहां कर दीना।

दो० उस घटना को सोचते, दीना नाथ सुजान।

होते हैं संसार में, ऐसे काम महान ॥ ११६ क

जहां जीव संसार के, वहां पर विघ्न अपार।
हे मन इसको त्याग कर, वन की ओर सिधार ॥ ११६ ख

यह संसार दुःखों की रचना, इस से योग्य है निशिदिन बचना।
जो जन जैसा कर्म कमावे, वह जन वैसा ही फल पावे।
बोकर चना चने को पाता, क्षेत्र चने का गेहूं न लाता।
कर्म प्रधान कवि जन गावें, कर्म की महिमा वेद सुनावें।
कर्म के वश विधि जगत रचावे, जिमि कुलाल कुछ पात्र बनावे।
कर्म के वश यह विष्णु पियारा, दस चौबीस लेत अवतारा।
कर्माधीन ही वह त्रिपुरारी, लोकपाल बन जाय भिखारी।
यह संसार दुःखों की रचना, इस से योग्य है निशिदिन बचना।
दो० बेजर जी उस कर्म को, कोटिश कोटि प्रणाम।
तीन लोक के हो रहे, जिससे काम तमाम ॥ ११७ क

मन में नाथ विचारते, चलें वस्तियें त्याग।
महाप्रभु की खोज में, उत्पन्न हो वैराग ॥ ११७ ख

चलें जहां नर नज़र न आवें, भालू चीते ही दरसावें।
जहां सिंह कपि सर्प भयंकर, दुर्गम मारग कंटक कंकर।
हे मन अब तुम भय को त्यागो, प्रभु खोजो निद्रा से जागो।
इतना सोच जगत के स्वामी, चले बनों को अन्तरयामी।
ब्रह्मपुरी की ओर सिधाये, रात्री को वहां डेरे लाये।
द्वितीय दिवस श्री प्रभु जी प्यारे, गुफा वशिष्ठ की ओर सिधारे।
वहां रात्री भर कर विश्रामा, आगे चले नाथ सुख धामा।
चार दिवस जब चलि कर आये, निर्जन वन के दर्शन पाये।

दो० नहीं कोई वस्ती निकट, नहीं कोई नर नार।
गहन बनों मे जा रहे, सकल विश्व आधार॥ ११८ क

क्षुधा निवारण के लिये, नहीं मूल फल कंद।
केवल जल को पान कर, चले सच्चिदानंद॥ ११८ ख

इस प्रकार प्रभु जगदाधारा, चलते ही कुछ समय गुज़ारा।
खोजें संत जगत के स्वामी, दीन बन्धु प्रभु अंतरयामी।
एक भी संत नज़र नहिं आया, चलत चलत कुल काल बिताया।
नर तन को यह क्षुधा सतावे, क्षुधा लगे तो चला न जावे।
जो प्रभु सब की भूख मिटावें, अन्न चराचर जिससे पावें।
राव रंक सब जिस के चेरे, सब को दें प्रभु सांझ सवेरे।
पत्थर में जिमि कृमी का वासा, उसे भी होता नहीं उपवासा।
सबके पालक श्री प्रभु प्यारे, आज क्षुधा से वे प्रभु हारे।

दो० लीला पुरुषोत्तम प्रभु, लीला करें अपार।
मर्यादा पति कर रहे, मर्यादा से प्यार॥ ११९ क

माया मर्यादा रचे, माया पति भगवान।
दासी का कहना करें, गूढ़ रहस्य महान॥ ११९ ख

माया को जो नाथ सिखाया; वह कुछ उसने करि दिखलाया।
अपना किया नाथ नहिं तोड़ें, मर्यादा से मुख नहिं मोड़ें।
इस रहस्य को कोऊ जाने, मूढ़ जीव माया भरमाने।
शंका करे जीव मति हीना, रहें निशंक जो सुघढ़ प्रवीना।
जीव प्रभु का पार न पावें, नेति नेति कह वेद सुनावें।
जनता नट का भेद न पावे, कौतुक देख के मन भरमावे।
वह नटवर सब का सरदारा, उसका भेद को पावन हारा।

एक वृक्ष पर चढ़िकर स्वामी, लगे देखने अन्तरयामी।

दो० एक विटप देखें प्रभु, सुन्दर अति विशाल।
सुन्दर फल उसको लगे, झुके हुए थे डाल॥ १२० क

निकट गये उस वृक्ष के, नाथ जगत आधार।
फल उसके खाने लगे, त्रिभुवन पति सरदार॥ १२० ख

फल भरि पेट नाथ ने खाये, जगत पति निज क्षुधा मिटाये।
सुन्दर जल का स्रोत सुहाया; उससे जल प्रभु निज मुख पाया।
गड़बड़ पेट में होने लागी, पेचश बढ़ी क्षुधा सब भागी।
शौच जांय फिर शौच सतावे, जगदाधार शौच फिर जावें।
साठ बार प्रभु शौच सिधाये, इससे तन में शिथिलता आये।
निर्बल हुए लेट गये स्वामी, रात बितावें अन्तर्यामी।
दूसर दिवस धूप चढ़ि आई, उठे नाथ भक्तन सुखदाई।
निज तन निर्बल नाथ निहारें, अच्छा हुआ प्रभु उचारें।

दो० मल मूत्रादिक के रहे, मिलें न संत महान।
इस रहस्य को जानते, जो हैं सुघड़ सुजान॥ १२१ क

जो कुछ प्रकृति कर रही, उसका भेद न आय।
प्रकृति के अनुकूल जो, उत्तम वही उपाय॥ १२१ ख

उठ बैठे प्रभु अति मुस्काये, फिर जंगल की ओर सिधाये।
भूख लगी फिर वह फल खावें, उस समान वृक्ष जहां पावें।
अब वे फल कुछ कष्ट न देते, श्री प्रभु जी मुख में धरि लेते।
श्री प्रभु ने जग कारज करने, बहुत जीव इन से थे तरने।
प्रकृति प्रभु अनुकूल हुई थी, पहले जो प्रतिकूल हुई थी।

अल्प काल कीना विश्रामा, आगे चले जगत सुखधामा।
तन पर कष्ट सहें प्रभु कैसे, जल की बिन्दु सरोजहिं जैसे।
पड़ी बहुत कठिनाइयें आकर, सभी सहन कीं प्रभु मुस्काकर।

दो० महाप्रभु की खोज में, चले जात सर्वेश।
संयमी नर सब सहें, वन के सकल कलेश॥ १२२ क

वन जन्तु भालु कपि, बाघ सिंह रहे बोल।
सर्प भयंकर फिर रहे, पक्षी करत किलोल॥ १२२ ख

रात्री काल में श्री प्रभु प्यारे, वृक्ष के ऊपर नाथ पधारे।
वृक्षों पर कुछ पत्थर धरकर, आग जलावें श्री सर्वेश्वर।
इस प्रकार निशिकाल गुजारें, प्रातः होत वन ओर सिधारें।
एक रात्री को वर्षा आई, उसने अग्नि तुरंत बुझाई।
भीग भीग प्रभु रैन बिताई, प्रातः चले त्रिभुवन सुख दाई।
दीन बन्धु प्रभु जी फल खाये, उस से क्षुधा न अधिक सताये।

१४. प्रतीकोपासक लोटे वाले साधु से साक्षात्कार

दो० भिक्षाटन कारन चले, गिरिजा पति महेश।
गुण गाते त्रिभुवन फिरें, नारद शारद शेष॥ १२३ क

नभ में मिल उड़गण चलें, चले सकल संसार।
वे प्रभु वन में चल रहे, मर्यादा अनुसार॥ १२३ ख

चले जात प्रभु सुख की रासी, क्षत्री मिला लाहौर निवासी।
गंगाराम लाला का नाम, उसने प्रभु को किया प्रणाम।



प्रतीकोपासक महात्मा ने श्री प्रभु जी तथा गंगाराम को एक लोटा दिया और कहने लगा 'जिस वस्तु की आवश्यकता होगी इस लोटे से मांग लेना।'

जो मांगो लोटा यह देगा।
मन की इच्छा पूर्ण करेगा॥

(दोहा १२५ के सामने)

वह भी संत जनों का प्यारा, संत दरशहित इधर पधारा।
चला प्रभु के संग वह लाला, संत खोज में हो मतवाला।
एक रात्री एक वृक्ष सुहाना, करें वसेरा तहां भगवाना।
गंगाराम को ज्ञान सिखावें, उपदेशामृत उसे पिलावें।
एक ओर प्रभु दृष्टि उठाई, अग्नि जल रही देत दिखाई।
एक कोस दूरी पर ज्वाला, करने लगे विचार दयाला।

दो० वहां संत होगा कोई, ऐसा निश्चय कीन।
उसी समय ही चल पड़े, प्रभुवर परम प्रवीण॥ १२४ क

निकट गये जब आग के, देखें श्री भगवान।
चिमटा वहां पर था गड़ा, और वहां सुनसान॥ १२४ ख

कहें नाथ सुन गंगारामा, यहां संत कोई करें विश्रामा।
बैठ गये प्रभु अन्तर्यामी, सकल चराचर के जो स्वामी।
ब्रह्म मूहरत हुआ सुहाना, की व्यतीत रात्रि भगवाना।
साधु एक गुफा से आया, गंगाराम, प्रभु शीश झुकाया।
संत एक रक्खी वहां झारी, निज मुख से फिर गिरा उचारी।
सुनो दोऊ जन मैं बतलाऊं, झारी का गुण तुम्हें सुनाऊं।
जो मांगो लोटा यह देगा, मन की इच्छा पूरण करेगा।
इतनी कहकर संत सुजाना, हुआ गुफा की ओर रवाना।

दो० लोटे से माँगन लगा, लाला गंगाराम।
चरस तम्बाकू दो मुझे, हे लोटे सुख धाम॥ १२५ क

अति प्रसन्न लाला हुआ, जो मांगे सो पाय।
उसी स्थान दिन दूसरे, वही संत फिर आय॥ १२५ ख

संत निकट बैठे प्रभु जाई, ज्ञान वारता बैठ चलाई।
जान प्रतीकोपासक संता, मुस्काने लागे भगवन्ता।
गंगाराम सुन कहें भगवाना, संत प्रतीकोपासक जाना।
रिद्धि सिद्धि इसने है पाई, रिद्धि सिद्धि मिथ्या है भाई।
नाशवान अंत दुःख देती, परमारथ को यह हर लेती।
योग उच्चगति हमने पानी, योग बिना जीवन की हानी।
हीरा लेने को हम आये, कौन कांच पर मन ललचाये।
भूखा सिंह भले मर जावे, स्वप्न बीच भी घास न खावे।

दो० भोग सकल संसार के, नाशवान सब जान।
योग बिना होता नहीं, इस तन का कल्याण॥ १२६ क

जितनी ये हैं सिद्धियें, सभी भोग के द्वार।
भोगी को होता नहीं, ईश्वर का दीदार॥ १२६ ख

गंगाराम ने सब सुन पाया, प्रभु जी जो उपदेश सुनाया।
पर वह साधारण सा लाला, हो रहा लोटे पर मतवाला।
जो मांगे लोटे से पावे, तज कर लोटा वह नहिं जावे।
प्रभु बोले सुन गंगारामा, चलो चलें यह तजकर धामा।
गंगाराम कहे मैं कहाँ जाऊं, अब तो आयु यहां बिताऊं।
सब सुख मिले यहां मोहे आकर, और स्थान नहीं देखूं जाकर।
प्रभु जी उसे बहुत समझावें, सन्मार्ग का राह दिखलावें।
श्रोत हुए लाला के बहरे, तैल लिप्त घट जल नहिं ठहरे।

दो० बदा हो जो प्रारब्ध में, उससे इतर न होय।
छलनी में नहिं ठहरता, जिस विधि निर्मल तोय॥ १२७ क

तैसे गंगाराम भी, सुनता नहीं उपदेश।

अन्त उसे वहां छोड़कर, चले नाथ सर्वेश ॥ १२७ ख

कछुक दिवस श्री अन्तर्यामी, चले जात बन में प्रभु स्वामी।
ढूंढत महा प्रभु नहीं पाये, अंत लौट सर्वेश्वर आये।
एक और घटना वहां पाई; विहंसे नाथ जगत सुखदाई।
गंगाराम भागता आया, लोटा वही उठाकर लाया।
पीछे क्रोध में साधु आवे, ले चिमटा मारन को धावे।
कहें नाथ सुन साधु प्यारे, यह सन्मुख क्या होत हमारें।
साधु कहें सुनो तुम भाई, गंगाराम नीच दुःखदाई।
लोटा ले चोरी से भागा, यह पापी है पुरुष अभागा।

दो० मारग में लोटा इसे, मुंह मांगा नहिं देत।
तब आया मम स्थान वो, पुरुष रूप यह प्रेत ॥ १२८ क

अब हम इसको तज रहे, नहिं रखेंगे संग।
अधम नीच यह चोर है, कुटिल हैं इसके अंग ॥ १२८ ख

बोले सर्वेश्वर मुस्काकर, दया चाहिये नर तन पाकर।
दया हीन साधु नहिं सोहे, पुष्पहीन तरु मन नहिं मोहे।
दया नीर बिनु नदी डरावे, दया पक्ष बिन उड़ा न जावे।
दया जीव का सुंदर भूषण, दया हीन जीवन है दूषण।
मूरख पुरुष मूर्खता करते, डूब जायें नहीं भव जल तरते।
दया करें संतन की रीती, संत अकारण करते प्रीती।
इस पर दया करो अब भाई, दोष तजो और लो अपनाई।
गंगाराम को कहें जग त्राता, तस्करी तुम्हें उचित नहिं भ्राता।

दो० पाँव पड़ो इस संत के, मांगो क्षमा हज़ार।
आगे से रहो धर्म युत, ऐसो मतो हमार ॥ १२९ क

पांव पड़ा उस संत के, लाला गंगाराम।
क्षमा क्षमा कहता हुआ, करे हज़ार प्रणाम॥ १२६ ख

वह साधु सुन प्रभु की वाणी, कहने लगा जोरि युग पाणी।
जो कुछ आपने है फरमाया, वही मान कीनी मैं दाया।
प्रभु निज सेवक मोहे मानो, मोरा कहा सत्य कर जानो।
चलो नाथ अब आश्रम मोरे, दर्श करूं निशिवासर तोरे।
रहो आप मम कुटिया माहीं, किसी प्रकार न्यूनता नाहीं।
हंस कर कहें नाथ सर्वेश्वर, होता वही जो करे परमेश्वर।
रिद्धि सिद्धि नहीं हम को भावे, और ही मारग हमें सुहावे।
योग साधना ध्येय हमारा, कहा मान नहीं सकूं तुमारा।

१५. जय राम से भेंट

दो० इतनी कह कर चल दिये, सकल जगत आधार।
गंगाराम वहीं रहा, लूटन मौज बहार॥ १३० क

सघन वनों में ढूंढते, सहते कष्ट अपार।
श्री प्रभु ब्राह्मण कुल मणी, लौट आय हरिद्वार॥ १३० ख

महाप्रभु प्रभु जी नहिं पाये, हरिद्वार प्रभु थकि कर आये।
जयराम नामक इक भाई, श्री प्रभु जी को दिया दिखाई।
पूज्य पिता से विद्या पाई, करता रहा सदा सेवकाई।
उसने प्रभु को शीश झुकाया, कृपा नाथ निज कंठ लगाया।
कछुक मुद्रिका उसने दीनी, प्रेम भेंट वह प्रभु जी लीनी।
कहे जयराम दोउ कर जोरे, पुरवो नाथ मनोरथ मोरे।

अपने संग राखो मोहे स्वामी, मम इच्छा यह अन्तर्यामी।
परम अनुग्रह श्री प्रभु कीना, जय राम निज संग कर लीना।

दो० भक्तों के प्रभु भक्त हैं, करते कृपा अपार।
भाग्यवंती के लाल को, भज मन बारंबार॥ १३१ क

गंडाराम के सुत चरण, भव जल के जलयान।
बेज़र ब्राह्मण कुल तिलक, जय हो श्री भगवान॥ १३१ ख

इति योग महादिव्य रामायण का पं० चक्रधारी 'बेज़र' द्वारा रचित बाल काण्ड संपूर्ण।



मंगल भवन अमंगल हारी।
राम मुलख प्रभु जग सुखकारी॥

*

श्री प्रभु राम लाल जी की जय शरणम्
श्री सदगुरु देव जी की जय शरणम्





नमः श्री रामलाल प्रभु जी परब्रह्मणे नमः

योग महादिव्य रामायण का द्वितीय काण्ड

वन काण्ड

मंगल भवन अमंगल हारी ।
भज मन राम लाल सुखकारी ।।

दो० इस से आगे कर रहा, *'सेवक' प्रभु गुणगाण ।
देना मेरे नाथ जी, प्रतिभा का कुछ दान ।। १३१ ग

रहस्य आपके गूढ़ हैं, मैं तो हूं नादान ।
परिश्रम मेरा सफल हो, यदि हो कृपा महान । १३१ घ

जय राम को प्रभु समझावें, बिन गुरु योगी न सुख पावें ।
मेरा यत्न है गुरु को पाना, जिससे मिटता आना जाना ।
कितना बेशक कष्ट सहूंगा, सद्गुरु पूरण खोज रहूंगा ।
सद्गुरु बिना जीवन है ऐसा, जिमि बिन जल हो मेघ आकाशा ।
तुम भी मन को दृढ़ कर लीनो, न कोई लाभ अधिकतर चीनो ।
जब मिल जायें सद्गुरु प्यारे, धर्मादि सब मोक्ष के द्वारे ।
परम सिद्धि मैं तब ही मानूं, निज जीवन को सार्थक जानूं ।

---

*'सेवक' चमन लाल कपूर ।

घोर वनों में हम हो आये, ढूंढ ढूंढ भी गुरु न पाये।

दो० अब मैं तुमसे पूछता, है क्या तेरा भाव।
क्या है तेरे मन बसत, गुरु खोजन का चाव॥ १३२ क

सतगुरु की तो खोज में, चाहे जायें प्राण।
मैं न इसको मानता, कोई बड़ा बलिदान॥ १३२ ख

उत्तर में जयराम उचारे, तुम ही मेरे सत्गुरु प्यारे।
लक्ष्य को मैंने तो है पाया, सेवा में मोहे जानो आया।
श्री चरणों की आज्ञा पाऊं, चलने में बिलम्ब न लाऊं।
मेरा काम आपकी सेवा, जिससे मिले मोक्ष का मेवा।
मैं न जानूं अन्य उपाया, धन्य भाग्य जो चरणी लाया।
अब तो चरणों की ही सेवा, भव से पार करेगी देवा।
दर्शन आपके मैंने पाये, अन्तः करण के भ्रम मिटाये।
सत्य संकल्प है मेरा नाथ, रहूं निरन्तर आपके साथ।

दो० देना प्रभु इस दास को, निज सेवा का दान।
इस विधि हो जायेगा, मेरा तो कल्याण॥ १३३ क

लीला जो हैं कर रहे, गुरु खोजन की आप।
इसमें गूढ़ रहस्य है, मिटें जगत के ताप॥ १३३ ख

१. काठ गोदाम में राज्य वंश को दीक्षा दान

जयराम को अधिकारी चीना, संग प्रभु जी उसको लीना।
हरिद्वार से नाथ पधारे, काठ गोदाम आकर ठहरे।
पाकर धर्मशाला इक सुंदर, ठहरे उसमें दोनों जाकर।
द्रव्य था थोड़ा सा जो पास, खर्च हुआ जयराम उदास।

बोला आज्ञा जो पा जाऊं, कहीं से भिक्षा करके लाऊं।
प्रभु जी ने उसको समझाया, भिक्षा नीच से नीच उपाया।
भिक्षा वृत्ति जीव अपनाये, मान तजे व पाप कमाये।
भिक्षा से है नर्क को जाता, जड़ योनि को अथवा पाता।

दो० बादल भिक्षा माँगता, पर हित के ही काज।
तो भी उसको देखलो, मुख पर काला साज॥ १३४ क

पेट अपने के वासते, जो मांगे है भीख।
उस मानव को क्या कहें, देत थके सब सीख॥ १३४ ख

मानव देह को पाय कर, जीव करे वह काम।
जिससे उसका नाम हो, और न हो बदनाम॥ १३४ ग

छोटे छोटे जीव भी, कर्म कर भरते पेट।
मनुष्य जन्म की क्या कहें, यह तो सबसे श्रेष्ट॥ १३४ घ

हम तो अब कुछ करेंगे धंधा, भोजन का हो जिमि प्रबन्धा।
पैसे मेरे पास यह तीनों, इन से स्याही कागज लीनो।
आज्ञा जयराम ने मानी, शीघ्र कागज स्याही आनी।
प्रभु जी ने ज्ञापन लिखवाये, ज्योतिषि वैद्य यहां हैं आये।
जिसको पाती हो दिखलानी, चिकित्सा अथवा हो करवानी।
धर्मशाला में जन वे आवें, अवसर इसका लाभ उठावें।
विज्ञापन जयराम ने लीने, चिपका चौराहों पे दीने।
उसको एक सेठ ने देखा, पढ़कर मन में कीना लेखा।

दो० जन्म पत्री निज लेकर, आया प्रभु के पास।
देखें मेरे भाग्य को, मैं हूं बहुत उदास॥ १३५ क

अन्तर्यामी नाथ ने, लीनी पाती हाथ।

गूढ़ रहस्य प्रकट किये, उसने टेका माथ ।। १३५ ख

विनय सहित वह सेठ उचारे, आप ने संशय सकल निवारे।
सेवा का मोहे अवसर दीजो, जो कुछ भेंट आप की लीजो।
कहें नाथ हे सेठ पयारे, रहस्य विधि के गूढ हैं सारे।
बिना विद्या वे समझ न आवें, विद्या जानें वे ही पावें।
विद्या यह ऋषियों से पायी, इसे तो न हम बेचें भाई।
हमारा व्रत भला है करना, दुखी जीवों का संकट हरना।
भला कर्म जब कर दिखलावें, भवसागर से तर तब पावें।
भव से मुक्ति पाये नर तब ही, स्वार्थ त्याग करे वह जबही।

दो० हम आये इस नगर में, कुछ दिन करें निवास।
जनता को कुछ लाभ हो, मेरा यही प्रयास ।। १३६ क

यदि आपकी प्रीत हो, बेशक दें सहयोग।
श्रेय आपको भी मिले, और सुखी हो लोग ।। १३६ ख

प्रभु जी ने जब यों फरमाया, सेठ की बुद्धि में तब आया।
ज्योतिषि यह नहीं साधारण, यह तो आये जग को तारन।
यह तो कोई प्रभु का रूपा, तरें जिससे जन और भूपा।
क्यों न मैं भी तन मन वारूं, सुखी बनूं और जन्म संवारूं।
जब तक वास करें इस नगरी, मैं तो भेजूं सकल सामग्री।
इनको कष्ट न होने पाये, हम करें अब वही उपाय।
इस विधि उसने सोच उचारा, नाथ यह सेवक है तुम्हारा।
जो सेवा इससे हो पावे, कमी न तन मन से रह आवे।

दो० मुझे आज्ञा अब दीजिये, मैं जाऊं निज धाम।
आपको कृपा से मिले, सेवा का कुछ काम ।। १३७ क

आज्ञा प्रभु की पायकर, जब पहुंचा वह घर।
खान पान आराम का, प्रबन्ध दीना उस कर ॥ १३७ ख

कीर्ति प्रभु जी की विस्तारी, नगर में चर्चा फैली भारी।
ज्योतिषिवर हैं एक पधारे, परम ज्ञानी व पंडित भारे।
उनके दर्शन जो भी करता, दुख संकट से वह नर तरता।
उनकी ब्रह्मा सी है वाणी, औषधि उन की अमृत सानी।
जन हित कर्म है उन को रीति, सज्जनों की जिमि होती नीति।
जो है उनके दर पर जाता, मनोकामना उनसे पाता।
भूत भविष्य की वह बतलायें, इक पुड़िया से रोग मिटायें।
नर न कर्म ऐसे कर पाये, ये तो आये हैं रघुराये।

दो० चांद की जैसे चाँदनी, सूरज का प्रकाश।
शोभा प्रभु की का तिमि, सब था हुआ विकाश ॥ १३८ क

राजा के दरबार में, पहुंच गई यह बात।
नृप तो माता के सहित, शरण आये इक प्रात ॥ १३८ ख

नत हो राजा करे जयराम, माता ने भी कीन प्रणाम।
आशीर्वाद प्रभु की पायी, उनके मन में भक्ति समायी।
हृदय हुआ था गद गद भारी, राजा गिरा सप्रेम उचारी।
नाथ कहां से आप पधारे, इस नगर के भाग्य हैं भारे।
इस नगर में आपका आना, पुण्योदय है सबने जाना।
राजमहल में धारो चरणा, पाप ताप हम चाहें तरना।
आप सरीखे महानुभाव, दिखावें कारण बिन सद्भाव।
मैं और मेरी प्रजा सारी, गुण पर आप के हैं बलिहारी।

दो० हम संसारी जीव हैं, दोषों के भण्डार।
किरपा जो हो आपकी, लग जायें तब पार ॥ १३९ क

राजा की सुन बेनती, प्रभु जी भये दयाल।
बोल उठे, "प्रासाद में, ठहरेंगें कुछ काल" ॥ १३९ ख

इस विधि प्रभु जी जब फरमाया, राज माता का चित हर्षाया।
प्रभु जी पर तन मन धन वारे, अपना जीवन सकल संवारे।
राज महल में प्रभु जब आये, देवों ने तो पुष्प बरसाये।
परिजन में उमंग थी भारी, बीते सेवा बेला सारी।
राज माता ने मांगी भिक्षा, हे प्रभो हमें दीजो दीक्षा।
गुरु दीक्षा बिन जीवन ऐसा, प्राण रहित हो नर तन जैसा।
तुम से हम जो दीक्षा पावें, जीवन अपना सफल बनावें।
श्री प्रभु जी ध्यान लगाया, उत्तम पात्रा उस को पाया।

दो० योग्या उसको जानकर, दिया योग का दान।
उस पर किरपा जो हुई, कर न सकें बखान ॥ १४० क

गांठ हृदय की खुल गई, आत्म दर्श लखाय।
छिन्न संशय सकल हुवे, को वर्णन कर पाय ॥ १४० ख

उस अलौकिक कृपा को पाकर, तन मन की कुल सुधि विसराकर।
सेवा में रत रहने लागी, प्रभु चरणों की वह अनुरागी।
एक क्षण भी प्रभु कहीं जायें, और जो उसको न दिखपायें।
मीन बिछुड़ि जिमि जल से होवे, ऐसे ही वह सुधि को खोवे।
प्रभु ने ऐसी भक्ति दीनी, विदुरानी ने जैसी लीनी।
प्रेम प्रभु में आपा खोवे, तन बदन की सुधि न होवे।
कुछ दिवस जब थे हो पाये, श्री प्रभु जी को उस जा आये।
विचार उनके मन में आयें, उचित न अब और रुक पायें।

दो० मेरा यहां अब ठहरना, उचित नहीं है और।
पूर्ण सत्गुरु जहां मिलें, हम जायें उस ठौर ॥ १४१ क

शिष्य चकोर हैं बापुरा, सत्गुरु हैं राकेश।
मिलें न सत्गुरु जब तलक, मनमें रहे कलेश ।। १४१ ख

क्या जानें प्रभु किधर मिलेंगे, कब तलक यह कष्ट सहेंगे।
पग पग आशा धार चलेंगे, अन्तर्यामी कहीं तो मिलेंगे।
जाना उनने प्रभु विचारा, व्याकुल भया सकल परिवारा।
सत्गुरु प्रकट करो निज इच्छा, आप न जायें मांगें भिक्षा।
राजपाट वा नगरी सारी, हाट बाट व महल अटारी।
जो कुछ मेरा है वह तोरा, मैं तो चरणों का हूं चेरा।
राजगुरु बन आप रह पायें, त्याग न दास यहां से जायें।
लोह काठ के संग ज्यों तरता, सद्गुरु से मिल जीव उधरता।

दो० धर्म का उद्धार होवे, पाप की होय हान।
आपके यहां वास से, जीव तरेंगे आन ।। १४२ क
विधाता के सुयोग से, मिले स्वयं अब आप।
सहन नहीं हम कर सकें; बिछुड़न का संताप ।। १४२ ख

राजा की सुन विनय पुकारा, श्री प्रभु जी ने वचन उचारा।
राजन हम यहां रहन न आये, हमें न सुख वा भोग सुहाये।
राज गुरु न हम ने बनना, पा योगी गुरु साधन करना।
तब उद्धार धर्म हो पाये, निज सुधार प्रथम हो जाये।
आत्मोद्धार सबन से ऊपर, कर पाय जो योग में तत्पर।
योग साधना में चित्त लाना, लाभ महान है इस को पाना।
लक्ष्य हमारा सत्गुरु पाना, वन में जा कर योग कमाना।
मुझे नहीं है लौकिक चाह, दुःख सुख से हूं बेपरवाह।

दो० अनुकम्पा गुरु देव की, करे योग का दान।
योगीश्वर गुरु देव ही, करते हैं कल्याण ।। १४३ क

ऋषि मुनि जितने हुये, और हुये अवतार।
उन सब को था योग का, केवल ही आधार ॥ १४३ ख

२. मुरादाबाद में पदार्पण

इस विध सब को प्रभु समझायें, वे न मन में धीरज लायें।
प्रभु जी ने प्रस्थान जो कीना, जनता का मन साथ ही लीना।
मुरादाबाद पग निज आनें, प्रभु के रहस्य प्रभु ही जानें।
भक्तों का उद्धार जहां करना, निज पग उसी दिशा को धरना।
जब प्रभु भू पर लें अवतारा, गृहस्थित भक्तों का उद्धारा।
कौन राम की जाने माया, शबरी वा हनुमान तराया।
कौतुक अपना प्रकट दिखायें, संग गोपियन रास रचायें।
रामलाल धर नाम परमेश्वर, कलि में प्रकट भये योगेश्वर।

दो० जयराम को साथ लिये, आये गुरु की खोज।
मुरादाबाद नाथ जी, देत शिक्षा हर रोज ॥ १४४ ख

जयराम को उपदेश सुनायें, संशय उसके सकल मिटायें।
वह भी प्रभु चरणों का प्यारा, सेवा में रहता दिन सारा।
एक दिवस राम गंगा तीर, मुद्रा में थे प्रभु गम्भीर।
चर्चा चली योग की न्यारी, अणिमादि सिद्धियों की सारी।
बहुत वहां थे भक्त विराजे, प्रभु चरणों के जो अनुरागे।
निज मुख से इक भक्त उचारा, नाथ यहां इक योगी भारा।
महिमा उसकी लोग बखानें, सिंह धेनु इक संग थे आनें।
सकल भूत उसके अनुगामी, ऋद्धि सिद्धि का वह है स्वामी।

दो० दर्शन उसके पायकर, रोग शोक न आंय।
ऐसा योगी न मिले, जो कहीं भी जांय ॥ १४५

३. वन तीर्थ के सिद्ध योगी पुरुष का उपाख्यान

योगी का इतिहास पुराना, वन तीरथ में उसका स्थाना।
तप था उसने उस जा कीना, ऋद्धि सिद्धि को उस पा लीना।
इक दिन उस के मन में आवे, मन्दिर का निर्माण करावे।
दिव्य दृष्टि से उसने देखा, भूमि गत वहां द्रव्य विसेखा।
पाण्डव काल के मन्दिर भारे, भूमि गत जो हुये थे सारे।
इस भूमि को खोद दिखायें, मन्दिर निकलें द्रव्य को पायें।
संकल्प उठा जो उस मन न्यारा, श्रमिकों का दल आन पधारा।
आज्ञा योगी वन को काटें, और उस भूमि को भी पाटें।

दो० पता लगा जब भूप को, उसने भेजे दूत।
बिन आज्ञा के कौन है, जिस की यह करतूत ॥ १४६

उसको यहां पकड़ के लाओ, बीच कचहरी पेश कराओ।
दूतों ने फरमान सुनाया, श्रमिकों ने फिर मार भगाया।
राजा को जा व्यथा सुनाई, नृपति ने तब फौज भिजाई।
सेना जब बढ़ आई आगे, श्रमिक प्राण को लेकर भागे।
सेना ने आ साधू बाँधा, और उसे हाथी पर लादा।
साधू की चेरी चाण्डाली, उसको देख हुई बेहाली।
पूंछ से उसने हाथी पकड़ा, चिंघाडा और बेहद अकड़ा।
बनमें उसने शोर मचाया, यह सुन हाथियों का दल आया।

दो० सेनापति यह देखकर, हुआ बहुत हैरान।
योगी से पाला पड़ा, जिस की शक्ति महान॥ १४७

सोचा उस कुछ करें उपाय, जैसे हटा वहां से जाये।
"फायर कर" का हुकम सुनाया, वर्षा गोलों की कर पाया।
बन गजों ने मुंह को मोड़ा, चण्डाली न पूंछ को छोड़ा।
निज गुरु की वह भक्त प्यारी, सहन करे न विपदा भारी।
सेनापति ने भी समझाया, शस्त्रों अस्त्रों से धमकाया।
हस्ती ने भी ज़ोर लगाया, हिल न सका योगी की माया।
सेनापति क्रोध में आया, कहन लगा कुछ करूं उपाया।
अबला मान न कीना प्रहार, क्यों न पकड़ूं या डालूं मार।

दो० उतर पड़ा निज अश्व से, चला उसी की ओर।
सब का मन था रिस भरा, धर पकड़ो का शोर॥ १४८

योगी ने तब कीन ईशारा, "हाथी छोड़ न कर तकरारा।
हम शीघ्र ही लौट के आवें, योगी नर न कैद में जावें।
हमें न कोई बांध दिखावे, वायु को जिमि रोक न पावे।
रहें हम ईश्वर के आधीना, सकल जगत है जिसने कीना।
*ईशावास्यं विश्व है सर्वम्, ममता वश हो मानें यह मम।
*"इदं न मम" जो कह दिखलावे, वश उसी के सब कोई आवे।
"इदं न मम" है मुक्ति का द्वारा, शास्त्रों ने यह वचन उचारा।
योगी नर ही ऐसे होवें, ममता व अहंकार को खोवें।

दो० ईश्वर की कृपा सदा, योगी नर के पास।
राजा की शक्ति नहीं, डाले कारावास॥ १४९

सेना चली नगर की ओरा, बजे नगारे जोश न थोरा।

*जगत में जो कुछ है वह सब ईश्वर का है। *संसार के पदार्थ मेरे नहीं हैं।

राज द्वार पर चल कर आये, दीनी खबर अपराधी लाये।
राजा यह *फरमान सुनावे, बाद पाँच दिन *पेशी पावे।
कारावास में साधु डाला, कैसा था उपहास निराला।
योगी जन निग्रह में लाना, दुष्कर जैसे पवन दबाना।
योगी ने कह सबन सुनाया, हम चले अब कर लो उपाया।
ऐसे कहकर योगी निकला; प्रभु जानें वह कैसे फिसला।
देख देख कर सब हैराना, योग की शक्ति का न ज्ञाना।

दो० साधु वहाँ से छूटकर, पहुंचा नैनीताल।
भक्त जनों के मध्य में, करे ज्ञान विस्तार॥ १५०

राजा के जन खोजत आयें, नैनीताल उसी को पायें।
"पकड़ो इसे" कहा कर कोपा, योगी हुआ वहां पर लोपा।
राजा को आ हाल सुनाया, वह तो महाक्रोध में आया।
कह सेना को हुक्म सुनाया, उसने वन को घेरा पाया।
हिरासत में फिर साधू लीना, पेश राजा के कर दीना।
राजा कहे साधू से बात, क्यों हमारा भय नहीं तात।
अब तो देंगे दण्ड कठोर, तेरे तो अपराध हैं घोर।
अब कहीं न भाग सकोगे, जीवन भर यहां बन्द रहोगे।

दो० राजा की सुन बात को, साधु दिया मुस्काय।
"ब्रह्मा भी न बांध सके, नरपति क्या कर पाय॥ १५१

योगी के मन ज़रा न कोप, तुरत हुआ वह वहां से लोप।
राजा ने जब कौतुक देखा, चकित हुआ वह मन में पेखा।
"क्यों रोकें" हम इसको भाई, कर ले जो इसके मन आई"।

* आज्ञा * उपस्थित किया जाये।

योगी जा पहुंचा निज धामा, किया आरम्भ रुका जो कामा।
काटे वृक्ष वा पाटी धरती, धन निकला न उसकी गिनती।
एक दिवस मृगया को राजा, तीरथ वन में आ विराजा।
सिंहों का शिकार करे वह, मन सबके आतंक भरे वह।
योगी ने यह ठीक न जाना, तब उसको सन्देश भेजाना।

दो० सिंह हमारे पालतू, इस वन में तुम आय।
राजन; हिंसा रोक दो, कोई क्षति मत पाय॥ १५२

राजा सुन साधु ढिग आया, श्रद्धा से उस शीश झुकाया।
सिंह व गऊयें देखीं पास, इक संग विचरें खायें घास।
देख यह नृप हुआ हैरान, कहने लगा "कुछ मांगो दान"।
साधु कहे "मैं न मांगन हारा, प्रकट करो जो भाव तुम्हारा"।
स्थान वहां जब नृप ने देखा, लगी इमारत को जब पेखा।
यहां सामग्री व धन चाहिये, चूना और द्रव्य पहुंचाइये।
सेवक जन को आज्ञा दीनी, शिरोधार्य उन सब ने कीनी।
साधु का इक शिष्य सुविचारी, उस नीति की बात उचारी।

दो० पृथ्वी बिना क्योंकर भये, मन्दिर का निर्माण।
इस कारण दे दीजिये, भूमि का भी दान॥ १५३

राजा के तब मन में आई, उसने विनती प्रकट सुनाई।
सन्त जनों का सारा राज, जैसे चाहो करा लो काज।
जितनी भूमि तुम को चाहिये, उतनी पै निशान लगाइये।
शिष्य चढ़ा अश्व के ऊपर, सीमा मापी लगाकर चक्कर।
एवमस्तु राजा ने कीना, और हस्ताक्षर भी कर दीना।
पग स्पर्श योगी का कीना, आशीर्वाद उस का पा लीना।

योगी फिर यह शिक्षा देवे, हिंसा न इस वन में होवे।
घोर नरक में वह है पड़ता, जो निर्दोष की हिंसा करता।

दो० इन्द्र राजा विश्व का, वेदन की पुकार।
शान्ति से सब जीव रहें, प्राणी का अधिकार॥ १५४

अहिंसा परम धर्म है भाई, इसका त्याग महा दुखदाई।
धर्म अहिंसा को जो माने, सब जग अपने वश में आने।
साधन उसके सब हस्तागत, करे अहिंसा का जो स्वागत।
अहिंसा योग का है आधार, सारी सिद्धियों का यह द्वार।
अहिंसा को जो न अपनावे, अधोगति को जीव वह पावे।
सब ऋषियों का यही उपदेश, अहिंसा धारो त्यागो द्वेष।
अहिंसा में प्रतिष्ठा लावे, वैरी मीत एक हो जावे।
उस का जग में रिपु न कोई, वसुधा उसका कुनबा होई।

दो० हिंसा करो न तुम कभी, ग्रहण करो उपदेश।
तन मन से सब सुख मिलें, निश्चय यह आदेश॥ १५५

राजा ने फिर आज्ञा लीनी, योगी ने सहर्ष वह दीनी।
श्रमिकों ने कीनी खोदाई, खूब विशाल शिलायें पाई।
एक का दो शत गज परिमाण, हिलायें कैसे थे हैरान।
योगी तब सब को समझायें, मत घबराओ स्वयं उठायें।
शत कोठी चहुं ओर बनायें, उन पर शिला हम धर दिखलायें।
शिलायें छत का रूप धरेंगी, इस विध सुन्दर शाल बनेंगी।
प्रभु यह सब कुछ करने हारे, सेवक केवल हम बेचारे।
यह मेमारों ने सब कीना, धरो शिला तब उन कह दीना।

दो० वंशी लीनी हाथ में, साधू फूंक लगाय।

शिला हिलीं निज स्थान से, बैठीं ऊपर जाय ॥ १५६
इस विध चतुशाला बन पाई, स्थापन शिव प्रतिमा करवाई।
कीर्ति साधु की सब ओरा, फैल गई जिमि ज्योति भोरा।
नवाब हस्तिनापुर का आया, परीक्षा का विचार बनाया।
साधु से जब ताड़ना पाई, क्षमा मांगी अपराध बख्शाई।
दूर दूर से जन चलि आयें, आशीर्वाद साधु का पायें।
प्रभु जी ने यह सुन सब पाया, प्रेम से भक्तों ने बतलाया।
कुछ इक भक्तों को संग लीना, तीर्थ वन की ओर चल दीना।
प्रभु जी जब उस जगह पधारे, बाबा लक्ष्मण दास निहारे।

४. श्री प्रभु जी का वन तीर्थ में पदार्पण और बाबा लक्ष्मण दास से भेंट।

दो० यह तो लक्ष्मण दास है, भरे योग का स्वांग।
जनता को भरमाय कर, पुजावे अपने आंग ॥ १५७

बाबा को प्रभु देत बुझाई, यह क्या करते मेरे भाई।
पूजा योग्यता बिन करावो, ढोंग रचो वा पाप कमावो।
साधु मिला जो नदी किनारे, प्राण तजे तुम जल में डारे।
बना भेस फिर इस जा आये, तेरा भेद न कोई पाये।
बोलो झूठ वा पाप कमाओ, धन लूटो तुम चरण पुजाओ।
है अनर्थ यह जानो भारी, सत्य की हानी और खवारी।
साधु जन का यह कर्तव्य, योग प्रचारें शास्त्र मन्तव्य।
साधु बन ना साधे योगा, जानो उस को प्रिय हैं भोगा।
दो० योग से वंचित न रहो, शास्त्र का फरमान।
गुरु योगी को पाय कर, करो अपना कल्याण ॥ १५८

बाबा ने जब सच सुन पाया, उस के मन में तब यह आया।
मुझे मिले हैं अन्तर्यामी, जानूं इन्हें योग का स्वामी।
और गुरु को कहां मैं खोजूं, बन शिष्य इन के पाओं पूजूं।
पकड़े उस ने प्रभु के चरणा, तेरी शरण पड़ा उच्चरणा।
मानें लोग वही मैं साधू, शिव पूजूं न करूं अपराधू।
मुझे योग की दीक्षा दीजो, शरणी अपनी प्रभु जी लीजो।
साधन जो भी आप बतायें, प्रेम सहित हम सब कर पायें।
मिथ्या बात मैं कर न जानूं, अपना नाथ तुम्हें पहचानूं।

दो० गुरु दीक्षा अब दीजिये, करिये यह उपकार।
आया शरण तुम्हारी, तेरा ही आधार॥ १५६

प्रभु जी ने जब यह सुन पाया, उन के मन में तब यह आया।
मंत्र की उसे दीनी दीक्षा, औषधि की भी साथ में शिक्षा।
मंत्र साधना करते रहना, औषधि का निर्माण कराना।
सेवा जनता की कर पाना, जन्म योग से सफल बनाना।
कह इतना प्रभु चलने लागे, बाबा उन के पग में लागे।
सिंहनी का उस दूध मंगाया, सिंह शाला भी ले कर आया।
वे सब प्रभु के अर्पण कीने, आशीर्वाद नाथ जी दीने।
फिर भी इस जा दर्शन देना, ऐसा कह कर लागे चरणा।

५. जसपुर में कुम्हार बालक को शरण प्रदान।

दो० चलकर वहां से फिर प्रभु, पहुंचे जसपुर स्थान।
खेद उन्हें इस बात का, मिला न साधु महान॥ १६०

जसपुर में इक मन्दिर सुंदर, प्रभु पधारे उसके अन्दर।

लोग करें आ पूजा अर्चा, ईश्वर भक्ति की भी चर्चा।
एक भक्त की करें प्रशंसा, छोटी ही थी जिसकी वयसा*।
घंटों ध्यान भजन में रहता, मन में खेद न किंचन वहता।
सत्य वचन तो उस का ऐसा, ऋषियों का हम सुनते जैसा।
उस के मुख से निकली वाणी, होती सच है हमने जानी।
कलयुग में तो ऐसी भक्ति, विरलें में करने की शक्ति।
देखो, प्रभु की कैसी माया, वह केवल कुम्हार का जाया।

दो० कीचड़ में ज्यों कमल हो, अथवा लाल कुथान।
छोटे कुल में उपज कर, करता काम महान॥ १६१

सुनकर ऐसी एक की बात, दूसरा कहन लगा सुन तात।
जात पात न पूछी जाये, भक्ति करे सो भक्त कहाये।
प्रभु जानें भक्ति का नाता, बाकी सारी झूठी बाता।
उन की यह सब बातें न्यारी, प्रभु जी को लागीं बहु प्यारी।
कहते मुख से भाई मेरे, वह बालक कब आये डेरें।
ऐसे जीव कहां मिल पाते, हम भी उस को देखन चाहते।
इतने में इक लड़का सुंदर, आ पहुंचा उस मन्दिर अन्दर।
लोगों ने ईशारा कीना, पास प्रभु जी आसन दीना।

दो० प्रभु जी समीप बैठाय कर, उससे पूछें बात।
सिद्ध है तेरी खेचरी, कह दो हम से तात॥ १६२

सुन कर ऐसी प्रभु की वाणी, चौंक उठा वह बालक मानी।
उठकर लैंप एक ले आया, और प्रभु को शीश झुकाया।
नाथ क्षमा अवज्ञा की चाहूं, पर अपना भी भ्रम मिटाऊं।

*आयु

आपके मस्तक पर वह पाऊं, जो निशान मैं देखन चाहूं।
बांई ओर वह क्षत निशान, जानूं आपकी यही पहचान।
मैं देखता आपकी राह, शबरी को जिमि राम की चाह।
हो गया हूं मैं अब निहाल, मुझे मिले हैं आप दयाल।
खेचरी का जो किया बखान, मुझे न कुछ भी इस का ज्ञान।

दो० यह आज्ञा गुरुदेव की, जो थे निपुण महान।
गहूं शरण मैं आपकी, दीजो मुझ को ज्ञान॥ १६३

प्रभु जी उसकी सुन कर वाणी, पूछन लागे बालक मानी।
कौन थे तेरे सद्गुरु प्यारे, जिसने कहे भेद यह सारे।
जरा खोल कर हमें बतायें, बातें ताकि समझ में आयें।
बालक बोला हे गोसाईं, क्यों पूछें अंजान की नाईं।
आप से है छिपा क्या नाथ, मुझ को करने आये सनाथ।
मेरे गुरु थे परम वैरागी, मुझे बनाया प्रभु अनुरागी।
जब विदाई वे लेने लागे, गले लगाया कहने लागे।
साधनों का था जितना ज्ञान, हम ने तुम्हें दिया यहां आन।

दो० श्रद्धा प्रेम स्थिर रहे, शंकर हों सहाय।
आगे का जो ज्ञान है, देंगे खुद प्रभु आय॥ १६४ क

मैंने पूछा नाथ जी, प्रभु की क्या पहचान।
हे बालक तुम जान लो, पंचनद उनका स्थान॥ १६४ ख

ब्राह्मण उनका वंश है, गोरा वर्ण महान।
माथे पर है नाथ के, चोट का एक निशान॥ १६४ ग

गुरुओं के हैं वे गुरु, जाना उन के पास।
प्रभुओं के हैं वे प्रभु, हम भी उनके दास॥ १६४ घ

इस प्रकार मुझ को समझाया, आगे गुरु जी कदम बढ़ाया।
इस मन्दिर में नित मैं आऊं, साधन को मैं करके जाऊं।
अन्तःकरण में रहत अधीर, किस से कहता अपनी पीर।
कल दिये थे आपने दर्शन, दिव्य रूप वा चित्ताकर्षण।
मुझे अब नाथ करो स्वीकार, जैसे मेरा हो उद्धार।
इमी शरण मैं तोरी आया, जिमि कुम्हार माटी पाया।
गूधों जैसे गूंधन चाहो, बनू वैसे जिस रूप बनाओ।
मेरा आपा तेरे अर्पण, चरणों में सर्वस्व समर्पण।

दो० दास जान अपनाओ मुझे, मुझ सा नीच न होर।
माटी तो कुच्छ चीज़ है, मैं नाचीज़ हूं तोर॥ १६५

बालक के सुन चतुर विचारा, प्रभु जी ने फिर वचन उचारा।
हे बालक अब तुम घर जाओ, प्रातः काल स्नान कर आओ।
हम से फिर तुम शिक्षा पाओ, यत्न करो वा योग कमाओ।
आज्ञा बालक प्रभु की मानी, घर चला वह प्रभु सन्मानी।
प्रातः काल समय पर आया, प्रभु जी को निज शीश झुकाया।
प्रभु जी कीना शक्ति संचार, कुंडली जाग पड़ी तत्काल।
समाधि में वह हुआ तल्लीन, भक्ति जल में बना मन मीन।
समाधि से उत्थान हुआ जब, प्रभु चरणों में लोट हुआ तब।

दो० प्रभु जी ने फिर प्यार से, दीनी आशीर्वाद।
ध्यान बढ़ाओ यत्न से, समाधि का लो स्वाद॥ १६६ क

योग भक्ति से बढ़त है, भक्ति योग सहारे।
इन्हें पृथक जो जानें, बालबुद्धि वे सारे॥ १६६ ख

पंडित जन ही भेद यह जानें, बालबुद्धि न इसे पहिचानें।

भक्ति योग वा ज्ञान के लक्ष, सब साधक के आयें समक्ष।
प्रभु से नाता जब जुड़ जावे, नाता वही योग कहलावे।
उपजे प्रेम मन हो विभोर, मानो योग का यही निचोर।
प्रेम से होवे भक्ति विकास, ज्ञान का भी वहीं प्रकाश।
ज्ञान योग व भक्ति जान, नहीं भिन्न ये एक समान।
पृथक जन जो इन्हें बताते, भेद बुद्धि वे हैं उपजाते।
बढ़ावें संशय और क्लेश, शान्ति मन न पावें लेश।

६. अयोध्या (अल्मोड़ा) में अवधूता को योग दीक्षा देना।

दो० इस प्रकार कुम्हार को, श्री प्रभु जी समझाय।
जसपुर से प्रस्थान कर, पहुंच अयोध्या आय॥ १६७ क

अल्मोड़ा में यह स्थान है, अयोध्या जिसका नाम।
सुंदर हिमचल आंचल, भक्त जनों का धाम॥ १६७ ख

अयोध्या पहुंचे जग के स्वामी, निहारें साधू अन्तर्यामी।
ढूंढें पूरण योगी कोई, पायें गुरु जो ऐसा होई।
गुरु बिन मन में चैन न आता, गुरु बिन आवागमन न जाता।
गुरु बिन साधन कौन करावे, गुरु बिन संशय कौन मिटावे।
गुरु बिन किसके लागें चरणा, गुरु बिन भव से कैसे तरना।
गुरु बिन आशिश किस से पायें, गुरु बिन मन की किसे बतायें।
गुरु बिन को है सागर तरणी, गुरु बिन कौन लगावे शरणी।
गुरु बिन जो सो जीवन खोवे, गुरु बिन जो सो मुक्त न होवे।

दो० इस विधि गुरु को ढूंढते, योगिन के सरदार।
स्वयं औरों को तारते, ढूंढें तारनहार॥ १६८ क

आगे बढ़े देखी इक नार, वेष अवधूता का जिस धार।
बैठ वहां पर विलप रही थी, अपनी किस्मत कोस रही थी।
उस पर दया प्रभु को आई, जा पूछा क्यों रोती माई।
उत्तर दीना नज़र उठाई, मैं साधुन को रोती भाई।
होय हैरान प्रभु उचारें, साधु जन तेरा क्या बिगाड़ें।
रहस्य न कोई होवे भारी, बातें खोल बताओ सारी।
अवधूतानी लगी बताने, बीती अपनी उन्हें सुनाने।
विधवा बाल एक मैं नारी; उपजी मन में भक्ति न्यारी।

दो० मैं नीमानी जगत में, बिन प्रभु कौन सहाय।
दीनानाथ जिमि मिलें, करूं वही उपाय॥ १६९ क

अनाथन के नाथ प्रभु, नीमानन के मान।
सहायक दीन जनों के, और भक्तों के प्रान॥ १६९ ख

दुनिया से मैं मुंह को मोड़ूं, नाता ईश्वर से मैं जोड़ूं।
जिसको जगत देत ठुकराये; प्रभु लें गोद उसे उठाये।
सोच यही मैं रहने लागी, भक्ति में दिन रैन मतवाली।
जिमि मीरा ने प्रभु को पाया, मैं भी करूं वही उपाया।
उसके नाथ थे गिरवरधारी, मिलें मुझे भी वे असुरारी।
नाचूं गाऊं उन के साथ, दर्शन पा मैं बनूं सनाथ।
गुरु बिन दर्शन तो ना होवे, व्यर्थ में जन यह जीवन खोवे।
गुरु बिन होवे कभी न ज्ञाना, गुरु बिन किमि मिलें भगवाना।

दो० ईश कृपा से मिलत हैं, सद्गुरु इस जग मांही।
गुरु कृपा से प्रकट हों, ईश्वर सन्मुख आहीं॥ १७०

ऐसा बना मेरा विचार, पाय गुरु करूं निजन उद्धार।

मिला गृहस्थी मुझ को ज्ञानी, पूरण योगी पूरण ध्यानी।
उन के पास मैं रहने लागी, पति पत्नी की मैं अनुरागी।
ध्यान भजन में मुझे लगायें, प्रभु महिमा भी नित्य सुनायें।
एक वैरागी तब चलि आया, सबने उसका दर्शन पाया।
जनता को उपदेश सुनावे, भक्ति भाव बहुत दिखलावे।
स्वरूप विचित्र उसका पेखा, पत्थर आंख पर रखा देखा।
यह देख कर हुई हैरानी, अनोखा कैसा साधु मानी।

दो० लिया पूछ मैं साधु से, हे साधो परवीन।
देखें हम यह आप में, अद्भुत बात नवीन॥ १७१ क

बाँधा बाटा आंख पर, है विचित्र यह काम।
कौन कष्ट है आपको, या यों मिलते राम॥ १७१ ख

साधु ने जब यह सुन पाया, उसका क्रोध न हृदय समाया।
बात काट कर मुझ को डांटा, कहती शालिग्राम को बाटा।
पत्थर क्या तुम इसको जानो, शालिग्राम न तुम पहिचानो।
इसे यहां पर बांध दिखायें, दर्शन सदा प्रभु के पायें।
प्रभु के दर्शन अत्यन्त महान, प्रभु के दर्शन सन्त जन पान।
प्रभु के दर्शन बन्धन काटे, प्रभु के दर्शन से दुःख नाटे।
प्रभु के दर्शन उच्चगति पायें, प्रभु के दर्शन मुक्त करायें।
प्रभु के दर्शन लगे न पापा, प्रभु के दर्शन मेटे तापा।

दो० प्रभु का दर्शन अहर्निश, इस विध होता मोहे।
सदगुरु का उपदेश यह, मुझ को तो यह सोहे॥ १७२

साधु का उपदेश सुन पाया, हृदय में आश्चर्य समाया।
मैं भी क्या दर्शन कर पाऊं, सोया अपना भाग्य जगाऊं।

जो दर्शन बिन जीवन बीता, लगता मुझको रीता रीता।
मन्त्र साधु से पा जाऊं, अब न समय बरबाद गवाऊं।
यहां पर साधू जी का आना, जानूं मुझे मिले भगवाना।
मैं बोली "क्या कर दिखलाऊं, जिस विध मैं भी दर्शन पाऊं।"
साधू बोला "दर्शन चाहो, तब तुम सेवा कर दिखलाओ।"
प्रभु मेरे की अद्भुत माया, जिसने मुझ को था भरमाया।

दो० "बिना सेवा के दर्शन, पाना है दुश्वार।"
बोल उठी मैं "रे स्वामिन, मुझ को यह स्वीकार॥ १७३

सेवा मैं तुमरी कर पाऊं, तो फिर दर्शन भी करवाऊं।
ऐसा निर्णय जब हो पाया, साधू को तब वहाँ ठहराया।
तीन मास तक सेवा कीनी, मैंने विनती फिर कर दीनी।
दर्शन को मैं करना चाहूं, बोले अभी योग्य न पाऊं।
अब कुछ सेवा और कमाओ, तब तुम दर्शन को कर पाओ।
तीन मास मैं और बिताये, सेवा में रत रह दिखलाये।
विनय पुनः दोबारा कीनी, इच्छा दर्शन की कह दीनी।
साधू बोला तब मुस्काई, तुम तो दर्शन की रट लाई।

दो० इमी न दर्शन हो सकें, तुम जिमी कह पाओ।
यज्ञ करेंगे यहाँ पर, सब सामग्री लाओ॥ १७४ क

मन में हर्षित मैं भई, फूली ना समायी।
सकल सामग्री प्रेम से, मैं वहां ले आई॥ १७४ ख

लोगन को आमन्त्रण दीना, यज्ञ सम्पूर्ण साधू कीना।
फिर महात्मा ने फरमाया, रेशमी इक रूमाल मंगाया।
कांख से एक गांठ निकाली, रखे जिसे था सदा सम्हाली।

गांठ खोल निकाला डिब्बा, डिब्बा खोला फिर इक डिब्बा।
उसको खोला कर प्रणाम, निकला उससे शालिग्राम।
मुझे हुई थी देख निराशा, बैठी क्या थी इसकी आशा।
छः मासन की सेवा कीनी, बाटे की फिर झांकी चीनी।
कह साधु को दिया उलाहना, क्या था मुझे यही दिखलाना।

दो० ऐसे शालिग्राम हम, देख चुके आगाध।
दिव्य चतुर्भुज राम के, दर्शन की अब साध॥ १७५ क

बोला साधू पलट कर, कर कलयुग की बात।
अब वह योग न कर सको, जिससे हो साक्षात॥ १७५ ख

क्या जानें वह साधुआ, बीज नहीं है नाश।
अब भी योगी देश में, करें योग प्रकाश॥ १७५ ग

संग गृहस्थी योगी रह जाती, दर्शन ऐसों को करवाती।
मन्द था मेरा पर वह भाग, त्यागा गुरु आई जो भाग।
अब फिर ढूंढन उनको जाऊं, चरण पड़ूं अपराध बख्शाऊं।
ऐसा निश्चय मन मे धार, वहां से चल पड़ी तत्काल।
मैं ढूंढा निज गुरु का स्थान, उसने किया तीर्थ प्रस्थान।
क्या कहूं मेरा हृदय टूटा, भाग फूटा व घर भी छूटा।
छोड़ा घर फिर फिरने लागी, इक वेदांती था वैरागी।
उसकी शिष्या मैं बन पायी, मेरा दीना शीश मुंडाई।

दो० सिर मुंडा कर लिया मुझे, उसने शिष्य बनाय।
भीख मांगू पेट भरूं, था न और उपाय॥ १७६

कोरा ज्ञान मुझे सिखलाया, और साथ वेदान्त पढ़ाया।
ब्रह्मास्मि की रटन लगाना, इससे बड़ा न कोई ज्ञाना।

दर्शन की जो तुमने ठानी, यह सब झूठी सुनो कहानी।
क्या दर्शन, को देखन हारा, यह झूठा सब समझ पसारा।
माया ने तुम को अंधयाना, इससे ढूंढो तुम भगवाना।
तुम स्वयं को ब्रह्म लो मान, छूटे माया टूटे अज्ञान।
एक ब्रह्म न दूसर भाई, ब्रह्म न ब्रह्म का दर्शन पाई।
त्यागो जगत त्याग दो इच्छा, त्याग कर्म कर केवल भिच्छा।

दो० सुनकर ऐसे ज्ञान को, मैं थी बड़ी हैरान।
यदि यह इसका ज्ञान है, होता क्या अज्ञान॥ १७७ क

अति भ्रान्त था मन हुआ, रह उस गुरु के पास।
छोड़ा उसके संग को, बैठी यहां उदास॥ १७७ ख

साधुन को थी रो रही, तुमने पूछी बात।
शांत हृदय यह कुछ हुआ, कह दी अपनी बात॥ १७७ ग

अन्तर्यामी प्रभु भगवाना, दीन जनों का करें कल्याणा।
दुखिया नारी को जब देखा, वंचना बूड़ी* उसको पेखा।
दीन दयाल दया दिखलावें, उस अवधूता को समझावें।
ईश्वर तो है सब के तन में, दर्शन करिये अपने मन में।
शालिग्राम में भी भगवान, पायें तब जब गुरु दे ज्ञान।
चाहे भक्त वा हो वेदान्ती, योग बिना किमि पावे शान्ति।
ऐसा योग गुरु सिखलावें, मूर्ति में भगवान दिखावें।
योग से दिव्य दृष्टि मिल जाये, सर्वत्र आत्म तत्व लखाये।

दो० दिव्य चक्षु जो मिल गये, अर्जुन को उस काल।
रूप विराट प्रकट हुआ, भरम मिटा तत्काल॥ १७८ क

---

* अर्थात् डूबी हुई।

अर्जुन को थे कृष्ण मिले, वायु पुत्र को राम।
योगी गुरु तुम्हें मिलें, तब पाओ विश्राम। १७८ ख

उस अबला जब सुना उपदेश, शांत भयी और मिटा क्लेश।
प्रभु चरणों को ऐसे देखे, जैसे चांद चकोरी पेखे।
उस की टक टकी इसी लागी, सुध बुध मानो जैसे भागी।
चरण पड़ी और करे पुकार, भव बहती तुम लिया उबार।
और भ्रमों में न भरमाओ, अब तो मुझे किनारे लाओ।
दीन दयाल विरद संभाला, कृतार्थ अबला को कर डाला।
उसके संग में मन्दिर जाकर, दीक्षा दी प्रतिमा दिखलाकर।
*मणिपुर में राम बिठलाओ, मन्त्र श्वासों में जप पाओ।
दो० इस विध साधन जो करे, साथ में हो वैराग।
योग युक्त हो कर रहे, जागें सोये भाग। १७९ क

मन जब प्रभु में लीन हो, और प्राण भी लीन।
पांच कलेश मिट जात हैं, तीन ताप भी क्षीन।। १७९ ख

अविद्या अस्मिता राग द्वेषा, अभिनिवेश ये पांच क्लेश।
अविद्या सब की जननी जानो, सब से प्रबल उसे ही मानो।
अविद्या को अन्धेरा जानो, आत्म तत्व सूरज पहचानो।
दर्शन आत्मा का हो पाये, अविद्या अन्धकार मिट जाये।
तीन ताप भी तुम पहचानो, भौतिक दैविक आत्मिक जानो।
ये सब दुख समझो तुम भारी, जिनसे हो जगत में खवारी।
योगी नर ना इनमें उलझे, प्रभु किरपा से सब कुछ सुलझे।
अब तुम योग युक्त हो जाओ, व्यर्थ न जीवन श्वास गंवाओ।

*नाभि चक्र।

दो० दीन नारी पर इस विधि, कृपा कर सर्वेश।
अयोध्या से वह चल पड़े, खोजें गुरु महेश ॥ १८० क
जब कुछ काल व्यतीत कर, आये प्रभु हरिद्वार।
वहां वही अवधूतनी, गुरु के आई द्वार ॥ १८० ख

उसके संग नारी समुदाया, आकर सबने शीश झुकाया।
प्रभु चरणों में कीन अरदास, नाथ आपकी हम सब दास।
चरण आपके सब को प्यारे, आप रहें न इक क्षण न्यारे।
ध्यान में हर दम दर्शन पावें, अपने चरणों से लिपटावें।
रूप स्थूल आप का स्वामी, निरन्तर खोजें अन्तर्यामी।
जो जिसकी हो जैसी इच्छा, पूरण होवे बिन प्रतिच्छा।
देव लोक में जाना चाहें, आप वहाँ भी संग ले जाहें।
इन्द्र वहां निज आसन देवे, कल्प वृक्ष के पावें मेवे।

दो० हे नाथ आपकी मूर्ति, सदा हमारे पास।
ध्यान उसी का हम करें, अटल बने विश्वास ॥ १८१ क
कृष्ण राम और आपकी, शक्ति में नहीं भेद।
आप सबन में बसत हैं, मन में कोई न खेद ॥ १८१ ख

रोती को तुम दिया सहारा, जीवन कर दिया सुखी हमारा।
भ्रांत मतों से थी भरमाई, आपने योग में दी लगाई।
योग से उत्तम न कुछ जानूं, योग से आगे न कुछ मानूं।
योग से नूतन जीवन पाया, योग से दिव्य लोक दिखपाया।
योग से ब्रह्मनाण्ड के दर्शन, योग से शक्ति का आकर्षण।
योग से शिव लोक को जाना, योग से वैकुण्ठ को पाना।
योग से आसन प्राणायाम, योग से सिद्ध धारणा ध्यान।

सफल योग से जीवन मानूं, योग से तृप्त पितर भी जानूं।

दो० योग क्षेम का वर्णन जो गीता में नाथ।
दान उसी का देत हो, अब हम भयी सनाथ॥ १८२ क

विन्दा शिष्या आपकी, गिरी कूप में जाय।
दास पुकारें "नाथ जी", तभी निकाला आय॥ १८२ ख

ऐसे ऐसे काम तो, नित्य करें हैं आप।
और वियोग न सहन हो, शरण रखे अब आप॥ १८२ ग

ऐसा कहकर लागी चरणा, 'आवें आसन करें अर्चणा।"
करुणा सागर जी फरमायें, समय मिला तो फिर हम आयें।
योगाभ्यास निरन्तर करना, विषय भोग से बच कर चलना।
निग्रह इन्द्रियों का कर पाना, मन को वश में करते रहना।
सदा विवेक शील बन रहना, बुरी मति को मत अपनाना।
सद्बुद्धी हो मन पर हावी, इन्द्रियों पर हो मन प्रभावी।
इन्द्रियां पुण्य कर्म कमावें, फिर न जीव नरक को जावें।
इससे उल्टा जो कर पावें, घोर नरक में वे नर जावें।

दो० प्रभुजी का उपदेश सुन, कीना उन प्रणाम।
नाथ वहां से चल पड़े, वे आईं निज धाम॥ १८३ क

साथ लिये जयराम को, प्रभु जी मथुरा आन।
संग और भी मण्डली, ठहरें सुंदर स्थान॥ १८३ ख

७. मथुरा में जयराम को विषयों से विरक्त रहने का उपदेश।

मथुरा नगरी यमुना तीरा, बहता जिसमें पावन नीरा।

कृष्ण लीला की याद दिलावे, मन में भक्ति रस उपजावे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण अलापें, सब थाहीं यह शब्द व्यापें।
कीर्तन से भरपूर समीरा, जैसे यमुना बहता नीरा।
मन्दिर मन्दिर में हो पूजा, घण्टी घण्टन की ही गूंजा।
द्वापर में यहां ले अवतारा, किया जिन्होंने धर्म उद्धारा।
और दीना गीता उपदेश, योग के जिसमें भेद अशेष।
वे ही कलि में ले अवतार, पधारे रूप योग का धार।

दो० मथुरा में प्रभु ठहरकर, करें योग प्रचार।
भक्त सुनें उपदेश को, ज्यों अर्जुन कृष्ण मुरार॥ १८४ क

उमड़ उमड़ कर भक्त जन, प्रभु दर्शन को आंय।
सुने मधुर उपदेश को, सुख अलौकिक पाँय॥ १८४ ख

सुंदर प्रभु जी का उपदेश, मनहर प्रभु जी का था वेश।
गौर वर्ण था उनका प्यारा, सकल जगत को मोहन हारा।
शास्त्रों का वे ज्ञान बताते, अपने अनुभव से समझाते।
जटा जूट था उनका साज, लगते शंकर स्वयं विराज।
जनता उमड़ उमड़ कर आवे, भेंट अनेकों संग में लावे।
प्रभु जी न कोई वस्तु लेते, स्पर्श करें व वापस देते।
श्रद्धा भक्ति से जो आवें, मथुरा के वे पेड़े लावें।
प्रभु जी पेड़े न स्वीकारें, कह प्रसाद वापस दे डारें।

दो० एकाहारी थे प्रभु, खाते इक ही बार।
भक्तन की वे वस्तु को, क्यों कर लें स्वीकार॥ १८५

प्रभु जी जब ना कुछ भी लेवें, जयराम को तभी वे देवें।
वह करता न था एकाहार, पेड़े कर लेता स्वीकार।

भक्त प्रेम से लाकर देवें, जयराम जी खुशी से लेवें।
नित्य भक्षण की जो चलि रीत, रसना रक्त खानें में प्रीत।
संयमी जीव ही बच के रहते, अन्य सकल रस में बह जाते।
जिस दिन पेड़े ना आ पाते, भक्तों से कह कर मंगवाते।
प्रभु जी ने यह सब सुन पाया, बिठला पास उसे समझाया।
लोलुपता नहीं अच्छी भाई, इससे नाशे सकल कमाई।

दो० विषयन के प्रभाव से, होता महां उत्पात।
उच्च स्थिति को पाय कर, फिर भी नीचे पात॥ १८६ क
योगी का कर्तव्य यह, इनसे हो अविराम।
ऐसा कौन है धीर, मोहे जिसे न काम १८६ ख

प्रभु जी ने तो बहुत समझाया, उसकी समझ में न कुछ आया।
विषयों का स्वभाव निराला, मन बुद्धि पर घाले* ताला।
कारण एक और भी जानो, भक्त बिगाड़ें यह भी मानो!
क्या न रहस्य विदित है सबको, भक्त बिगाड़ें योगी नर को।
भक्तों से जो बच कर रहता, वह योगी न भव में बहता।
प्रभु सेवक का हित कर पावें, जिस विध विषयन से छुटकावें।
विषयन का जब विष चढ़ जाता, कौन न मूर्छा में गिर पाता।
मोह मूर्छा से प्रभु जगावें, ध्यान भजन में भक्त लगावें।

दो० हे मन अब तो होश कर, प्रभु मिले हैं आय।
खिन खिन उनका भजन कर, न तो फिर पछताय॥ १८७ क
ऐसे प्रभु को छोड़कर, भजे किसी को आन।
उस नर को हम क्या कहे, वह तो है नादान॥ १८७ ख

*डाले

प्रभु ने लीना सोच उपाय, पेड़े पांच सेर मंगवाये।
जयराम को पास बिठलाया, वह मिष्ठान बलात खिलाया।
अब तो उसको हुई ग्लानी, पेड़ों की गंध लगे घिनानी।
छूटा सभी रसना का स्वाद, नाशा मोह वा गया प्रमाद।
प्रभु चरणों में करे प्रणाम, आपने मुझे बचाया राम।
हम जीव तो बड़े नादाना, अपने हित को जाने हाना।
अमृत लाग सभी को खारी, रस विषयन का परम हितकारी।
मेरी विनती सुनो भगवान, ऐसा बहुरि न उपजे अज्ञान।

दो० पाप भरे इस दास की, लाज तुम्हारे हाथ।
छोड़ूं कभी न भूल से, मैं चरणों का साथ॥ १८८ क

चरण पड़े उस भक्त को, लीना हृदय लगाय।
आशीर्वाद प्रभु देयकर, दीनी बीति भुलाय॥ १८८ ख

८. सवाई में प्रथम पदार्पण

मथुरा से फिर चल दिये, आये संवाई ग्राम।
आगरा के समीप जो, प्रसिद्ध प्रभु का धाम॥ १८८ ग

लीला कीनी उस जगह, को वर्णन कर पाय।
प्रकटीं अद्भुत शक्तियां, कवि से रहा न जाय॥ १८८ घ

इस कारण वर्णन करे, निज मति के अनुसार।
हाथ जोड़ विनती करे, करो सफल भरतार॥ १८८ ङ

मन्द बुद्धि यह जीव है, इसमें गुण न कोय।
कर जो सर पर आपका, बस यह बल है मोय॥ १८८ च

आगरा से कुछ हटिकर, नगर इत्मादपूर।
ग्राम संवाई वहीं पर, पवित्र जिसकी धूर ॥ १८८ छ

जब सर्वेश पहुंचे उस भूमी, देवन ने वह भूमी चूमी।
प्रभु लीला की श्रेष्ठ स्थली है, वहां नाथ की गुफा बनी है।
जिसमें आये प्रभु कई बार, और भक्तों ने किया सत्कार।
प्रथम बार अब प्रभु का आना, नया नया था उनको स्थाना।
मार्ग मिले उन्हें इक सज्जन, प्यारे लाल थे भक्त शिरोमन।
प्यारे लाल ने अति सत्कारा, साधु जनों का था वह प्यारा।
प्रभु जी उसने वहां ठहराये, सेवा में तन, मन, धन लाये।
सब लोगन ने लिया यह जान, स्वामी आये कोई महान।

दो० निज निज कार्य विसार कर, दर्शन को वे आन।
उनकी श्रद्धा देख कर, प्रसन्न भये भगवान ॥ १८९

प्रभु उन्हें उपदेश सुनावें, सत की महिमा खोल बतावें।
सनातन ही तो सत कहावे, रूप भेद किमि सत हो पावे।
वो यह सदा सनातन जानो, प्रकृति दूजा पुरुष पहचानो।
पुरुष पिता सम जानो भाई, प्रकृति माता सृष्टि जिस जाई।
मात पिता का पावन जोड़, सके न इसे काल भी तोड़।
शिव शिवा का जानो रूप, लक्ष्मी लक्ष्मीकान्त स्वरूप।
घट में अंश पुरुष का रहता, जीव की संज्ञा जो है वहता।
प्रकृति घट का रूप बनाये, अंत में अपने मांझ समाये।

दो० प्रकृति पुरुष का ज्ञान यह, सत्य सनातन जान।
क्षेत्र क्षेत्रज्ञ नाम दिया, गीता में भगवान ॥ १९० क

मन वचन और कर्म में, वर्ते सत्य अनुसार।

बखानें शास्त्र उसी को, योगिन में सरदार ॥ १६० ख
अन्तकरण में ज्ञान विराजे, वाणी वीणा में जो साजे।
प्रकट कर्म में फिर वह होवे, ऐसा पुरुष न जीवन खोवे।
कर्म को ज्ञान कसौटि जानो, वाणी धार ज्ञान की मानो।
कर्म परीक्षा में हो पास, ऐसे ज्ञान पै हो विश्वास।
मन वाणी और कर्म समान, प्रभु के पावे *दरगह मान।
मन वचन और कर्म से भिन्न, ऐसे नरन से प्रभु भी खिन्न।
सत्य बिना कोई फल न पावें, कैसा भी शुभ कर्म कमावें।
दान व्रत और तीर्थ स्नान, सत्य बिना सब धूली समान।

दो० सत्य के आचरण में हि, है जीवन की शान।
झूठा नर जीता नहीं, वह तो मरे समान ॥ १६१ क

नित्य निरन्तर प्रभु जी, करें ज्ञान उपदेश।
रोगिन को भी देखते, औषधी दें विशेष ॥ १६१ ख

दूर से रोगी चल कर, आयें प्रभु के पास।
ये तो ऋषि धन्वन्तरी, ऐसा था विश्वास ॥ १६१ ग

इस विश्वास में सत भरा था, औषध में गुण बहुत बड़ा था।
जो जीवन से ऊब चुके थे, रोगी असाध्य स्वस्थ हुये थे।
रात बैठ दवाई बनाते, पुड़ियों में प्रभु जी बंधवाते।
भोर हुये रोगी चलि आते, पुड़ियां वे उन में बंटवाते।
चमत्कारी था प्रभु का ज्ञान, लाखों बूटियों की पहचान।
जब जड़ियों पर दृष्टि जाती, बूटी अपना गुण बतलाती।
ऐसा क्यों न होने पाये, स्वयं सृष्टि के कर्त्ता आये।
यह भी तो इक लीला न्यारी, औषध दे हरते बीमारी।

*दरगह—दर्बार

दो० जिनके एक निमेष से, होते कर्म तमाम।
बिन औषध के क्या प्रभु, दे न सकें आराम॥ १६२ क

पर मर्यादा प्रिय उन्हें, स्वयं राखी जो बांध।
वे मर्यादा पुरुषोतम, लिया विरद यह सांध॥ १६२ ख

दिन बीस और सात प्रभु, रहे समाहीं मांहि।
चलने का विचार बना, ढूंढन सत्गुरु जांहि॥ १६२ ग

लोगन ने वीदाई दीनी, चरण पकड़ प्रार्थना कीनी।
नाथ हमें न आप विसराना, शीघ्र इधर फिर फेरा पाना।
इक जा नहीं हैं साधु रहते, इस विध रुकने को न कहते।
हमारा मन पर तोरे साथ, हम पर राखो दया का हाथ।
आंखों से था बह रहा नीर, प्रभु ने देखे भक्त अधीर।
प्रभु उन्हें आश्वासन देते, ज्ञान की नौका से थे खेते।
देख सबन को दुःख ने घेरा, दिया वचन "हम पायें फेरा"।
साधू वचन न दे दीखाये, प्रेम में नेम न रह पर पाये।

दो० प्रेम से होते बश में, सदा एव भगवान।
एक बार की बात क्या, चार बार फिर आन॥ १६३

लीला स्थल था इसे बनाना, योग के चमत्कार दिखाना।
क्यों न फिर प्रभु इस जा आयें, योग भक्ति की धार बहायें।
पर इक काम रहे था करना, गुरु चरणों पर मस्तक धरना।
था अभी तो वनों को जाना, महा प्रभु के दर्शन पाना।

९- काशी में शंकर पूजा और प्रण

प्रभु निरन्तर खोज उस रहते, हंस हंस कर दुःख थे सहतें।

चलते चलते पहुंचे काशी, सब तीर्थन में अति प्रकाशी।
शिव शंकर की नगरी प्यारी, आदि योग का जो अवतारी।
चन्द्र मौली है नाम प्यारा, गंगाधारी रूप न्यारा।

दो० शंकर का जो रूप है, उसमें रहस्य महान।
इसे तो समझें वे नर, जो हों चतुर सुजान॥ १९४

सुमेरु पर्वत शिव का प्यारा, मेरू दण्ड जो घट में न्यारा।
कैलाश पर्वत वही सुहावे, घट में सहस्रार कहलावे।
निकली शिर से गंगा मानो, शिव संकल्प योगी का जानो।
मस्तक पर जो चांद विराजे, समाधि में ऋतंभरा साजे।
देह पर जो सर्प लिपटावे, जागृत कुण्डलिनी दिखलावें।
तन पर लागी विमल विभूति, योगी जाने राख संभूति।
कण्ठ में हलाहल जो पावें, दुःख से योगी न घबरावें।
तीसरा नेत्र काम जलावे, तृष्णा योगी पास न आवे।

दो० अर्ध नारी देह शंकर, अर्थ इसका जान लो।
शक्ति योगी को भजे, भाव यह पहचान लो॥ १९५ क

उमा शंकर एक रूपा, तात्पर्य इसका यह है।
घन में विद्युत ज्यों रमे, योग भीतर शक्ति है॥ १९५ ख

तीन तापों का हनन, त्रिशूल करता है सही।
योगसाधन जो करे, भजे शंकर को वही॥ १९५ ग

ताण्डव नृत्य हैं शंकर करते, योगी आवागमन संहरते।
प्रभु जी शिव मन्दिर में जाते, श्रद्धा से वे शीष निवाते।
मन में सोचें प्रभु जी प्यारे, भारत में थे योगी सारे।
गौतम मारकण्डे जैसे, शुक व्यास मिलें अब कैसे।

शिव शंकर भी भारत वासी, माया से जो रहत उदासी।
कृष्ण चन्द्र थे योगी भारे, अर्जुन के जिन भरम निवारे।
क्या न योगी भीष्म पितामा, काल को भी जिन्होंने थामा।
कबीर नानक तुलसी सारे, भक्ति योग के पालन हारे।

दो० शारद शेष न गिन सकें, योगी जो इस देश।
मार्ग सबने छोड़ दिया, इस विध बढ़ा कलेश॥ १६६ क
भेद योग में है नहीं, क्या पुरुष क्या नारी।
योग सबन को चाहिये, राजा या भिखारी॥ १६६ ख

अनुसूया गार्गी चूडाला, योग धर्म था इनने पाला।
थी शकुन्तला योगिनी नारी, हुई भरत की जो महतारी।
योग की शिक्षा जब अपनावें, शिव शंकर को तभी रिझावें।
शिव संहिता में हुआ बखान, शिव शंकर का योग महान।
कोई शास्त्र न ऐसा देखा, योग का जिसमें नहीं उल्लेखा।
हमने शास्त्रों को भी छोड़ा, स्वाध्याय से मुख है मोड़ा।
अपनी संस्कृति भी त्यागी, पर मुख पेखी बने अभागी।
घोर निराशा में है देश, हुये परतन्त्र चले न पेश।

दो० शिव की सही उपासना, करूं मेरी यह आस।
योग सिद्धि को पा सकूं, जा सद्गुरु के पास॥ १६७ क

सेवा अपने देश की, करूं वहां से आन।
शिव सन्मुख मैं प्रण धरूं, वारूं अपने प्राण॥ १६७ ख

शिव शंकर कल्याणघन, कर प्रण मेरा पूर्ण।
आया घर से जिस लिये, कारज हो सम्पूर्ण॥ १६७ ग
यही भाव मन लायकर, करते प्रभु प्रणाम।

नभ से वाणी यों भयी, "जय हो तेंरी राम" ॥ १६७ घ

१०. काशी में योगाभ्यासी ब्रह्मचारी को दर्शन देने

सकल जगत के ईश स्वामी, अलख निरंजन अन्तर्यामी।
अपना आप सदैव छिपावें, दुनियां से निज रूप दुरावें।
देव गणों को शीश निवावें, भक्त जनों को आ अपनावें।
सच्चे साधक जो मिल जावें, उनसे न निज रूप छिपावें।
प्रभु जी तो हृदय की जानें, बाहरी वेष से न भरमानें।
दिव्य दृष्टि जो उनकी न्यारी, उससे बचें किमि नरनारी।
घटना सेवक एक सुनावे, गूढ़ रहस्यों को प्रकटावे।
काशी में था इक ब्रह्मचारी, उसकी घटना बड़ी न्यारी।

दो० वेश्या को संग लेयकर, बोतल थामे हाथ।
सड़कों पर नित निकलता, करके ऊंचा माथ ॥ १६८ क

जनता उसको देखकर, करती खूब उपहास।
ब्रह्मचारी कहलावे, राखे वेश्या पास ॥ १६८ ख

प्रभु जी के इक संग था रहता, जो था पाण्डा भक्त कहलाता।
प्रभु जी को उसने दिखलाया, देखो प्रभु यह कैसी माया।
कलयुगी यह है ब्रह्मचारी, संग में रखता अपने नारी।
पीत वसन को लाज लगावे, मदिरापान से न शरमावे।
अब धरा पाताल को जावे, धर्म तो माटी में मिल पावे।
कैसा यह दुष्कर्म कमावे, हमें देखकर लज्जा आवे।
यह किसी से नहीं शर्माता, जो टोके वही गाली पाता।
सुन पाण्डा की प्रभु यह वाणी, मन में हंसते अन्तर्यामी।

दो० प्रभु जी उठ कर चल दिये, ले पाण्डा को साथ।

ब्रह्मचारी ने देखा, टेका प्रभु को माथ ॥ १९९ क

प्रेम से कीनि वार्ता, प्रभु दीनी आशीष।
अपने पग पर चल दिया, घुमा नशे में शीष ॥ १९९ ख

पाण्डा भक्त विस्मित कह पाया, नाथ मुझे कुछ समझ न आया।
आप प्रेम से बातें कीनीं, आशीर्वाद साथ में दीनी।
क्या यह है अधिकारी इसका, सब जन अवगुण गाते जिसका।
प्रभु जी बैठ मौन अपनावें, पाण्डा की सब सुनते जावें।
अन्त में नाथ जी फरमाया, इसका भेद न तुमने पाया।
सांझ को जब वे घर पधारे, थे तो पाण्डा के ही ठहरें।
कहने लागे याद दिला कर, देखें ब्रह्मचारी को जा कर।
पाण्डा ने आश्चर्य से देखा, पर प्रभु का रूप फिर पेखा।

दो० मध्य रात में निकल पड़े, कीना ज़रा न शोर।
ब्रह्मचारी था ध्यान में, उस जा कोई न और ॥ २०० क

छत पर बैठ उन्होंने, देखा उसका रूप।
वर्णन उसका क्या करें, वह तो देव स्वरूप ॥ २०० ख

वह तो था इक योगी भारी, समाधि उसकी परम न्यारी।
सन्मुख उनके त्यागी धरती, काया जिसकी देखी उठती।
छत से उसका सर जा सटका, समाधि में ही धड़ था लटका।
रात्रि भर वह यों ही ठहरा, नीचे आसन प्रात उतारा।
पाण्डा ने यह सब कुछ देखा, उसके विस्मय का न लेखा।
प्रभु जी ने ईशारा कीना, वापिस उनके संग हो लीना।
घर पहुंचे वे अति अनुरागे, नित्य कर्म में प्रभु जी लागे।
पाण्डा भक्त भी करने लागा, संध्या वंदन का अनुरागा।

दो० प्रात कर्म से निपट कर, माथा प्रभु को टेक।
प्रश्न किया उस प्रेम से, कहो भेद यह एक॥ २०१

"मूढ दुष्कृति न मुझ को पावें", गीता में भगवान फरमावें।
फिर किमि यह विषय रस लीना, समाधि में हुआ लिव लीना।
प्रभु जी ने तब उसे फरमाया, मैं ने था तुम्हें समझाया।
मुझे न विषयासक्त था लागा, योगी वह तो प्रभु अनुरागा।
योगी जब प्राणों को साधे, विषयवासना उसे न बाधे।
सुषुम्ना में हो मन का वासा, प्राण का हो ऊर्ध्व आवासा।
फिर जब साधना बहुत कमावे, तब जाकर आसन उंठ पावे।
पर तेरा यह संशय भारी, इसे निवारे वही ब्रह्मचारी।

दो० सायंकाल फिर जब हुआ, जा मिले उस स्थान।
ब्रह्मचारी को देखकर, दोनों लगे मुस्कान॥ २०२ क

प्रभु को सन्मुख देखकर, उसने किया प्रणाम।
प्रभु जी उससे पूछते, उसका भेद तमाम॥ २०२ ख

न था प्रभु से कुछ छिपाना, कर दिया उसने सब बखाना।
नाथ ! मैं यह स्वांग रचाऊं, ऐसे जनता से बच पाऊं।
जनता मायावश भरमाती, साधु से भी धन ही चाहती।
अथवा चाहती है सन्तान, करती योगी को परेशान।
न कोई ज्ञान गोष्ठ कर पाता, और न साधन को अपनाता।
मैं तो सोच यही कर पाया, अपने को बदनाम कराया।
मेरे पास कोई न आते, सब मेरे से बच के जाते।
घंटा भर मैं करता ऐसे, फिर रहता देखा तुम जैसे।

दो० अपनी बात सुनाय कर, कीना उस प्रणाम।

प्रभु उसे समझावते, वेश न कर बदनाम ॥ २०३ क

ऋषियों ने है वेष की, महिमा कीनि बखान।
दोष से वे न मुक्त हों, रखें न इसका ध्यान ॥ २०३ ख

वेश को लाज लगानी, बहुत बुरी है बात।
है मर्यादा टूटती, होता वा उत्पात ॥ २०३ ग

इस विधि बहु समझाय कर, लौटे प्रभु निज स्थान।
पांडा को फरमावते, करना है प्रस्थान ॥ २०३ घ

पाण्डा बात यह सुनकर, हुआ अतीव उदास।
हाथ जोड़ विनती करे, रखो मुझे भी पास ॥ २०३ ङ

११. पांडा भक्त को अष्टांग योग का उपदेश

प्रभु जी ने अनुमति दे दीनी, प्रातः उठ तैयारी कीनी।
वहां से चले गया की ओर, जहां था पाण्डा का भी ठौर।
मार्ग में प्रसंग चलाया, प्रश्न था पाण्डा ने कर पाया।
नाथ ! आपने है फरमाया, योगी ब्रह्मचारी बतलाया।
मुझे न योग का कुछ भी ज्ञान, योग को सीखूं बनूं सुजान।
मुझे यदि अधिकारी पाओ, करो कृपा और योग सिखाओ।
"प्रश्न तुम्हारा" प्रभु फरमाये, मन हमारे को भी भाये।
योग की विद्या परम सुहाई, वेद शास्त्रों ने महिमा गाई।

दो० आठ अंग हैं योग के, मुझ से लो तुम जान।
ऋषि पतंजली ने कहे, दर्शन रचा महान ॥ २०४

यम नियम और आसन जान, प्राणायाम की कर पहचान।

प्रत्याहार वा धारणा धार, ध्यान समाधि का आधार।
इन अंगों का पालन करता, भव सागर से वह नर तरता।
यम भी पांच प्रकार के जानो, अहिंसा सत्य अस्तेय पहचानो।
चौथा ब्रह्मचर्य सब जानें, पांचवां अपरिग्रह को मानें।
भेद नियम के पांच बताय, शौच संतोष तप स्वाध्याय।
पांचवां है ईश्वर प्रणिधान, जिसके साधे मिलें भगवान।
यम नियमों को यों तुम जानो, मानवता का धर्म पहचानो।

दो० देशकाल का भेद ना, यम नियमों के माहिं।
जात पात का भी नहीं, शास्त्र प्रकट लिखाहिं॥ २०५ क

धर्म के आधार ये, धर्म ग्रन्थ के मूल।
कौन ऐसा धर्मात्मा, रहता इनसे दूर॥ २०५ ख

सुखी स्थिर हो बैठते, जिसमें करते ध्यान।
आसन वही कहलावे, योगी करें बखान॥ २०५ ग

आसन प्राणायाम का, है संबंध अति गूढ़।
आसन साधे प्राण को, जाने इसे अमूढ़॥ २०५ घ

मिले न योगी सद्गुरु, किमि पायें यह भेद।
शरण बैठ के सीखिये, कहते हैं सब वेद॥ २०५ ङ

रेचक पूरक कुम्भक जानो, प्राणायाम की क्रिया मानो।
कुम्भक के भी भेद पहचानो, सहित उज्जायी मूर्च्छा मानो।
चौथा भस्त्रिका किया बखान, पांचवां सूर्यभेद है जान।
छटा भ्रामरी है बतलाया, सातवां शीतली कहलाया।
आठवां केवली प्राणायाम, गुरु से समझे रहस्य तमाम।
प्राणों को जो साध दिखावे, उत्तम योगी वही कहलावे।

जब तक चाहे सांस ठहराये, उस का यम भी क्या कर पाये।
दशम द्वार में उसका आसन, यम का जहां नहीं है शासन।

दो० सद्गुरु का वह स्थान है, सहस्रार प्रदेश।
बिन सद्गुरु की आज्ञा, पावे कौन प्रवेश॥ २०६

साधक उसमें बैठ दिखावे, प्रत्याहार में सिद्धि पावे।
इन्द्रियों से जब नाता टूटे, बाह्य जगत की सुध सब छूटे।
इन्द्रियां हों चित्त स्वरूपा, चित्त भी बुद्धि का हो रूपा।
यह इन्द्रियों का संयम जान, इससे बड़ा न मिले प्रमाण।
ऐसे चित्त भी वश में आवे, योग धारणा कर दिखलावे।
धारणा होती त्रिविध रूपा, सूक्ष्म ज्योति स्थूल स्वरूपा।
स्थूल में इष्ट रूप दिख पाये, ज्योति दिव्य प्रकाश दिखलाये।
सूक्ष्म समझ विचार स्वरूपा, धारणा करे श्रद्धानुरूपा।

दो० गुरु की लेकर आज्ञा, धारणा धरे सुजान।
बिन सद्गुरु निर्देश के, कभी न बदले ध्यान॥ २०७ क

चित्त पर गुरु का राज है, जो बुद्धि का रूप।
मन अपना जो मानता, गिरे मोह के कूप॥ २०७ ख

धारणा एक तान हो जाये, वह ही योग ध्यान कहलाये।
मन बुद्धि न भिन्न दिखपायें, दोनों यों ही घुल मिल जायें।
ऐसा ध्यान विरले नर पायें, जो पायें वे पुण्य कमायें।
जिस जां ध्यान योगी का वास, वह धरती में पुण्य आवास।
जो उसके हों बान्धव भाई, उसका भाग्य कहा न जाई।
समाधि इससे उत्तम जानो, मन बुद्धि का लय अब मानो।
दोनों हों स्वरूप में लीना, प्रगटे आत्म ज्ञान नवीना।
पाण्डा ने यह सब सुन पाया, अपना आपा भी विसराया।

दो० इतनी बात बताय कर, प्रभु जी भये खामोश।
पाण्डा गद गद हो गया, उपजा मन सन्तोष ॥ २०८ क

१२. गया जी में योग शक्ति से वाम मार्ग का खण्डन

गया जी में पहुंच कर, रहे पाण्डा के साथ।
पाण्डा था श्रद्धालु जन, करे सेवा निस्वार्थ ॥ २०८ ख

एक है दिन की वार्ता, प्रभु आसन आसीन।
पाण्डा भक्त था बैठा, सेवा में लवलीन ॥ २०८ ग

वाम मार्गी इक ब्राह्मण आया, माथे पर था तिलक लगाया।
देख पांडा उठा कर जोड़े, तन कांपे मन भय ना छोड़े।
साष्टाँग फिर किया प्रणामा, दीना आसन पूछा कामा।
कछु बेला उस वहाँ बितायी, वार्ता पांडा से कर पाई।
चला गया वह वहाँ से जब, पांडा स्वस्थ हुआ कहीं तब।
प्रभु जी ने आश्चर्य यह माना, पांडा से कहा बात बताना।
उसकी तो थी उखड़ी वाणी, बात प्रभु की फिर भी मानी।
कहने लगा वह उस का हाल, मन को अपने प्रथम संभाल।

दो० नाथ आपसे क्या छिपा, जानो हो तुम ईश।
आज्ञा आपकी जो भई, कहता हूं जगदीश ॥ २०९

मारग वाम पंथ कुख्याता, उसका मुखिया यह विख्याता।
नारी नर इसके अनुयायी, मानें भय करें सेवकाई।
इसकी बात जो टोक दिखाये, उसका अंग भंग हो जाये।
है शक्ति मन्त्र इसकी ऐसी, देखी सुनी कहीं ना जैसी।
जिसकी ओर देख यह पाये, भय से काँपे व घबराये।

शंकित रहते इससे लोगा, जाने इसकी शक्ति अमोघा।
राहु केतू वत इसे मनावें, सूरज चन्द्र जो ग्रस जावें।
अथवा शनि मंगल हैं जैसे, इसके कर्म सभी हैं वैसे।

दो० जिस समय यहां आ गया, मेरे उड़े हवास*।
शाप कहीं मिल पाये न, इसका क्या विश्वास॥ २१०

अनेक हैं इसने किये अपंग, करे अहित लागे जिस संग।
नाथ बतायें खोल के सार, कैसा इस से हो व्यवहार।
महान शक्ति के आप स्वामी, दुःख भंजन प्रभु अन्तर्यामी।
आपके चरणों में जो लागें, उनके दुःख क्षणों में भागें।
विपदा में निमग्न जो आवें, आप सदैव उन्हें अपनावें।
तुम हो निराकार अवतारी, पापी नर के भव भयहारी।
रहता जीव सदा आशंकित, अपने पापों से आतंकित।
जब तक शरण न तेरी आवे, कैसे भय से मुक्ति पावे।

दो० विनती उसकी जब सुनी, खिन्न भये सर्वज्ञ।
पाण्डा को समझावते, भय मानो न विज्ञ॥ २११ क

ऐसे जीव अधन्य हैं, करते पर अपकार।
जन्म बिगाड़ें आपना, है उन्हें धिक्कार॥ २११ ख

ऐसे ब्राह्मण को धिक्कार, करे जो जीवों का अपकार।
ब्राह्मण तो हम उसको मानें, ब्रह्म ज्ञान में रुचि जो आनें।
वेद पढ़े व उसे पढ़ावें, यज्ञ करे और साथ करावे।
ऐसा मनुष्य न मानुष मानो, पुछ विषान बिन पशु ही जानो।
मार्ग वाम को धर्म जो माने, मदिरा मांस को रोचक जाने।

*होश

मीन व मैथुन से हो प्यार, ले मारण मन्त्र का आधार।
यदि वे भैरवी चक्र लगायें, हमें बताओ तोड़ दिखायें।
योग विद्या का हो सम्मान, उनको मिले शुद्ध विज्ञान।

दो० देखा पाण्डा भक्त ने, प्रभु को आया क्रोध।
हाथ जोड़ कहने लगा, जिमि था उसको बोध॥ २१२ क

नाथ कोप न कीजिये, प्राणी करता पाप।
जैसा कर्म जो नर करे, फल पाता है आप॥ २१२ ख

ये मिल भैरवी चक्कर लगाते, पाप कर्म वहां सब कर पाते।
समय स्थान का पता लगाऊं, फिर सब आपको आ बतलाऊं।
ऐसा पाण्डा ने कर पाया, प्रभु जी को सब आ बतलाया।
गुप्त काज उनका महाराज, कोई न जाने पाये आज।
प्रभु जी को क्या रोक दिखायें, योग शक्ति से भीतर जायें।
देखा दृश्य अतीव घिनौना, नर नारी सब मुद्रा लीना।
उनके मध्य में एक प्रदीप, वह खप्पर में था रखा दीप।
प्रभु जी ने स्वबल प्रकटाया, दीप और खप्पर उड़ता आया।

दो० प्रभु जी के इस कर्म में, न कोई अद्भुत बात।
असंख्य खगोल चलत हैं, उस बल से दिन रात॥ २१३ क

युग युग में अवतार लें, दुःख हरण भगवान।
करें पाप का नाश स्वयं, और धर्म उत्थान॥ २१३ ख

हाथ में धारा प्रभु ने खप्पर, स्तंभित रह गये नारी व नर।
खप्पर जब तक लौट न आये, शक्ति न कोई उठ कर जाये।
इस विधि हुई सभी को बाधा, को जाने किस का अपराधा।
भैरवी चक्र तोड़ दिखायें, उसके आगे सब झुक जायें।

ब्राह्मण वही प्रभु ढिग आया, यह कह चरणी शीश झुकाया।
"आपकी शक्ति बहुत घनेरी, दीप लौटा दो करो न देरी।"
लगे प्रभु जी तब फरमाने, हम न आये शक्ति दिखाने।
पाप प्रपंच न हमें सुहाये, हमें इस कारण प्रभु ले आये।

दो० चक्र भैरवी आपका, घोर पाप का मूल।
धर्म की तुम आड़ में, करो कर्म प्रतिकूल॥ २१४

धर्म का नाश न प्रभु सहारें, धर्म की खातिर स्वयं पधारें।
युग युग में वे लें अवतार, पापी जनों का करें संहार।
अधर्म को वे करें निर्मूल, और करें दृढ़ धर्म का मूल।
साधु जनों का करें परित्राण, शास्त्रन लीला करें बखान।
तुम करते हो धर्म की हानी, क्षम्य नहीं हैं तुमसे प्राणी।
प्रतिज्ञा अब तुम कर दिखलाओ, कभी न ऐसे कर्म कमाओ।
तब हम देंगे क्षमा का दान, नहीं तो भोगो दण्ड महान।
प्रभु जी जानें जग की नीती, कभी न होवे भय बिन प्रीती।

दो० त्राहि त्राहि करने लगे, सुनकर प्रभु के बयन।
शरण योगी की गहें, छोड़ें मारग अयन॥ २१५ क

हे प्रभो मूर्ख जीव हम, भटकें अंध समान।
आप किया उपकार जो, जानें इसे महान॥ २१५ ख

विषयों का स्वभाव है, हरें जीव के प्राण।
योगिन का उपकार है, देवें सब को त्राण॥ २१५ ग

नाथ आपने हमें बचाया, विषय भंवर से हमें छुड़ाया।
गिरतों को भव कूप से थामा, किया सचेत दिया विश्रामा।
कानों को हम हाथ लगायें, ऐसे कर्म न फिर कर पायें।
मद्य मांस से रहें हम दूर, इन्द्रिय संयम करें ज़रूर।
ब्रह्मचर्य को पाल दिखायें, दया हम जीवों पर कर पायें।

ईश्वर भक्ति में मन लायें, चरण आपके अवश्य ध्यायें।
दीजो प्रेम भक्ति का दान, निमान बनें न करें अभिमान।
ध्यान भजन की विधि बताओ, पाप कर्म से हमें छुड़ाओ।

दो० योग शरणं प्रभु शरणं, हमको आया जान।
अब दया की दृष्टि कर, करें आप कल्याण॥ २१६ क

चरण आपके अब बनें, जीवन का आधार।
विषया-मुख न मन रहे, जान विषय निःसार॥ २१६ ख

प्रभु जी ने सुन पाई, उनकी आर्त पुकार।
दया हृदय में धार कर, किया उसे स्वीकार॥ २१६ ग

दीनानाथ उन्हें समझावें, मुखारविन्द से यह फरमावें।
भक्तो तुम्हें यही उपदेश, समझो जीवन का उद्देश।
जीव चौरासी भटक दिखाये, फिर कहीं नर तन को वह पाये।
आत्मा का यह चक्कर जानो, निज कर्तव्य को तुम पहचानो।
आत्मा का जो करे उद्धार, उसने समझा जीवन सार।
आत्मा जिमि न गिरने पाये, करें आप सब वही उपाय।
आत्मा का आत्मा बंधु मानो, आत्मा अपना ही रिपु जानो।
विषयों में भूल न रखें पैर, क्यों करे कोई निज से वैर।

दो० मन अपने को जीत कर, कर अपना उद्धार।
यही मोक्ष की राह है, करो योग स्वीकार॥ २१७ क

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
पर ब्रह्म को पाइये, मन के ही परतीत॥ २१७ ख

इस प्रकार समझाय कर, मारग योग बताय।
नाथ वहां से चल दिये, सबको स्वस्थ बनाय॥ २१७ ग

मुद्रा सबने त्याग दी, छोड़ भ्रांति निर्मूल।
शरण योग की ग्रहण करि, उलटा मार्ग भूल ॥ २१७ घ

प्रभु जी आये पाण्डा के धाम, उठ कर कीना उस प्रणाम।
तब पूछा उस वहां का हाल, प्रभु संक्षेप से कहा तत्काल।
वे विस्तार से क्यों बतलावें, अपनी स्तुति क्यों कर पावें।
लोगों से फिर सब कुछ जाना, आश्चर्य का न रहा ठिकाना।
कहे "नाथ ! लोग यों बतलाते", प्रभु न सुनना वह भी चाहते।
जो हठ करे तो यों फरमानें, "प्रभु की माया प्रभु ही जानें।"
प्रभु रखें सदा निज को ऐसे, जान सके न उन्हें कोई जैसे।
इस में रहस्य गूढ़ महान, मुक्त होय जो जाय पहचान।

दो० अतः अधिकारी भक्त ही, सकें प्रभु को जान।
गीता में भी है कहा, न मूढ़ सके पहचान ॥ २१८ क

मैं जब मानुष रूप में, आऊं ले अवतार।
मूढ़ जीव अवज्ञा करें, जानें न मम सार। २१८ ख

१३. दक्षिण दिशा को प्रस्थान, नर्बदा परिक्रमा

चर्चा होती बहु जब देखी, भीड़ सेवकन की भी पेखी।
प्रभु जी का मन तब उकताया, गुरु खोजें यह चित्त में आया।
गया तक तो ढूंढते आये, महाप्रभु जी कहीं न पाये।
हे मन चल अब दक्षिण ओर, शायद मिलें गुरु उस ही ठोर।
राम को जिधर अगस्त्य मिले थे, जहां कृष्ण गुरु पास रहे थे।
वेदों की जहां घर घर चर्चा, मन्दिर मन्दिर ईश की अर्चा।
धर्म का जहां निर्मल प्रकाश, संस्कृति का भी पूर्ण विकाश।

दण्डकारण्य का जहाँ विस्तार, जो पंचवटी का भी आधार।

दो० जांयेगे हम ढूंढने, गुरु वर को उस ओर।
क्या कोई बतला सके, गुरु मिलें किस ठौर॥ २१६

राम की लीला भूमि प्यारी, देखें हम भी कैसी न्यारी।
गीधराज की भक्ति से पावन, अर्पण प्राण किये प्रभु कारण।
शबरी जहां भक्ति थी पाई, राम प्रतीक्षा आंख बिछाई।
जहां था वायु सुत प्रगटावा, प्रभु कारज लगि निजहिं बंधावा।
वानरगण जहां भक्त प्यारे, कोटि कोटि संख्या में भारे।
प्रभु कारज लगि तन मन वारा, अपना लोक परलोक संवारा।
वनचर प्राणी थे वे सारे, उन में न थे गुण कुछ भारे।
भक्ति का परताप दिखाया, ऋषियों में निज नाम लिखाया।

दो० हे मन तू भी भक्ति कर, तन धन दे सब बार।
अपना तो कुछ है नहीं, संकोच तुझे किस कार॥ २२० क

पत्र पुष्प हो भेंट करि, लेते प्रभु रिझाय।
उनको जो कुछ मिलत है, को वर्णन कर पाय॥ २२० ख

देह को प्राणी पात है, लाख चौरासी मांहि।
एक बार गुरु सौंप दे, आवागमन नसांहि॥ २२० ग

प्रभु जी रुख दक्षिण को कीने, संग में बहु भक्त हो लीने।
प्रभु सबन को बहुत निवारें, वे प्रभु शक्ति पर निज वारें।
कौन भक्त को रोक दिखायें, ऐसे गुरु भी तो न पायें।
यह तो प्रीती होत स्वभावी, अन्तरात्मा पर जो हावी।
किरपानाथ गुरु खोजन जात, भक्तों को मिल गये साक्षात।
क्यों कर फिर कोई शरण त्यागे, स्वारथ सब को ही प्रिय लागे।

मुखराम सा पंडित विद्वान, जो था वैय्याकरण महान।
षट शास्त्री थे दण्डी स्वामी, वे सब हुये प्रभु अनुगामी।

दो० बीस तीस का काफ़ला, चला प्रभु के संग।
मध्य देश पावन भया, नित्य धर्म प्रसंग॥ २२१

आगे चलते प्रभु जी प्यारे, पीछे पीछे भक्त थे सारे।
कभी नाम की धुनी लगाते, कभी ज्ञान चर्चा कर पाते।
चलते चलते जब थक जाते, संकेत प्रभु का पा रुक जाते।
संध्या हुई देख कर ठहरें, एकांत स्थान डेरा डारें।
नित्य कर्म में सब लग जाते, जैसे प्रभु की आज्ञा पाते।
पद्मासन में बैठ दिखावें, प्राणायाम से सांस चढ़ावें।
षटचक्रन में ध्यान लगावें, जिमि निर्देश प्रभु से पावें।
मन बुद्धि दोनों करके एक, बैठें स्थिर ले गुरु की टेक।

१४. शिष्य का धर्म

दो० ध्यान भजन से निपट फिर, बैठें प्रभु के पास।
अपने मन की सब कहें, धारें दृढ़ विश्वास॥ २२२ क

शंका जिसकी जो रहे, प्रकट करे प्रभु पास।
निवारण सद्गुरु करत वह, बलिहारी सब दास॥ २२२ ख

मुखराम आचार्य था, शास्त्रन का विद्वान।
उसने प्रभु से पूछा, शंका का समाधान॥ २२२ ग

नाथ आपसे आज्ञा चाहूं, अपने मन की बात बताऊं।
गुरु हो आप पूर्ण योगेश्वर, जग तो क्या देवों के ईश्वर।

शंका मन में न कोई आनूं, चाहूं अपना धर्म पहचानूं।
शिष्य रूप हम जो यहां रहते, इसी धर्म का ज्ञान हैं चाहते।
धर्म शिष्य का क्या है नाथा, समझ आपसे बनें सनाथा।
कौन शिष्य हम उत्तम मानें, किसको अधम जान पहचानें।
वे गुण कौन जिन्हें हम धारें, अवगुण क्या वह जिसे निकालें।
यह सब बात खोल बतलावें, हम निर्बोध आप समझावें।

दो० सुनकर उसके वचन को, कहें प्रभु जी तात।
प्रश्न तुम्हारे ठीक हैं, समझें सब यह बात॥ २२३ क

गुरु की आज्ञा पालनी, मुख्य यही है धर्म।
शिष्य हृदय में जान ले, न इससे बढ़ कर कर्म॥ २२३ ख

गुरु को ईश्वर सम जिस जाना, उत्तम शिष्य वही बखाना।
मनुष्य मात्र गुरु को कह पावे, ऐसा शिष्य अधम कहलावे।
जिसकी होवे भावना जैसी, गुरु मूर्ति देखे वह तैसी।
ईश भाव से उत्तम होवे, नर भाव से अधमता गोवे।
जैसा जिस का मन बन जाता, वैसा ही वह जन हो जाता।
गुरु को ईश्वर कर जो जाने, उस को ही सर्वज्ञ जो माने।
गुरु वचनों में प्रीति रखता, गुरु मुख ज्ञान प्राप्त करता।
पाप कर्म से बच कर रहता, गुरु का भय काल सम वहता।

दो० ऐसे शिष्य को मानते, शिष्यन का मूर्धन्य।
इतर जो इससे होवे, वह मानो जघन्य॥ २२४

यम नियम हैं कहे जो सारे, योगी शिष्य के गुण हैं भारे।
जो इनको न पाल दिखावे, अवगुणी शिष्य वह कहलावे।
यह उपदेश सबन मन भाया, जयकारा गुरु देव बुलाया।

प्रभु मिले थे सद्गुरु प्यारे, सकल चराचर प्राणाधारे।
अपना भाग्य किमी कथ पायें, दर्शन कर उनके हर्षायें।
जिस स्थान पर वे पग धारें, सकल धाम उसको सत्कारें।
नर्वदा नदी का भाग्य महान, करें परिक्रमा कृपा निधान।
सब नदियन में भई सरदार, चलते जिस तट जगदाधार।

दो० चलते प्रभु को देखकर, देव करें सत्कार।
जगदाधार हैं जा रहे, मानव तन को धार॥ २२५

बालु कंकर वहां के सारे, भाग्यवान जहां प्रभु पग धारे।
पशु पक्षी और तरुवर तट के, हर्ष प्रफुल्लित दर्शन करके।
मारग चलते मन्दिर पावें, दर्शन करके प्रभु जी जावें।
भक्तन को उपदेश सुनावें, देवों की महिमा बतलावें।
सकल देव हैं घट के अन्दर, योगी दर्शन पायें सुंदर।
देह देवालय यह कहाता, आत्मा शिव रूप बस पाता।
पूजा जैसे हैं सिखलावें, वैसे भीतर भी कर पावें।
मन की चंचलता मिट जाती, आत्म ज्योति प्रकट हो पाती।

दो० देव पूजा का लक्ष्य यह, पायें आत्म ज्ञान।
ऋद्धि सिद्धि जो शक्तियां, योगी वे भी पान। २२६

१५. प्रेतग्रस्त मंदिर का उद्धार

पर्वत पर इक मन्दिर पाया, चलने का संकल्प बनाया।
तट से लगता था वह सुंदर, भक्त कहें यह उत्तम मन्दिर।
प्रभु तो थे सब जाननहारे, लिये भक्त और उधर पधारे।
इक पगडंडी ऊपर चढ़ती, घूम घाम कर वह थी बढ़ती।
उधर चलें सब पंक्ति साजे, आगे आगे नाथ विराजे।
श्रांत होंय तो कुछ दम लेते, पीछे मुड़कर दृष्टि देते।

दूर दूर का दृष्य दिख पावे, वेग नर्बदा का मन भावे।
ऊपर मन्दिर को वे देखें, नीचे विस्तृत भूमि पेखें।

दो० भक्त दृश्य यह देखकर, परस्पर करें बखान।
प्रशंसें सिरजनहार की, लीला अति महान॥ २२७ क

जब पहुंचे वे शिखर पर, देख वहां की शान।
प्रभु जी को रुचिकर जचा, ठहरे उसी स्थान। २२७ ख

श्री प्रभु जी सब को बतलायें, इस मन्दिर में रात बितायें।
आसन सब ने वहां लगाया, बाहर भीतर जहां मन भाया।
चहल पहल थी अब हो पायी, जहां पर रही शून्यता छायी।
भीतर जाकर मूर्ति देखें, पुजारी पूजा न कुछ पेखें।
इतना भारी सुंदर मन्दिर, बैठा न कोई उसके अन्दर।
पास ग्राम भी था दिख पाता, दिखता कोई न इस दिक आता।
भक्त प्रभु से प्रश्न कर पावें, नाथ हमें यह रहस्य बतावें।
बना तो है यह सुंदर मन्दिर, क्यों न है कोई इसके अन्दर।

दो० अन्तर्यामी नाथ जी, सुन प्रश्न मुस्कान।
यही दुविधा सुलझान हित, पर्वत चढ़ कर आन॥ २२८ क

जड़ चेतन यह विश्व सब, प्रभु का प्रिय आवास।
संकट मोचन के लियें, करें स्वयं प्रयास॥ २२८ ख

प्रकट भये चराचर स्वामी, संकट हरने अन्तर्यामी।
प्रभु को जो भी जहां पुकारे, शुद्ध हृदय से उन्हें सत्कारे।
स्वयं चलकर प्रभु वहां आयें, संकट आते ही टल जायें।
जग में विदित यह इतिहासा, द्रुपद सुता का संकट नासा।
गज के लिये दौड़ते आये, जब वह ग्राह से पकड़ा जाये।

अब मन्दिर की आर्त पुकार, क्यों न सुनें वे जगदाधार।
जड़ चेतन है उनका सारा, आर्त होय जब किसी पुकारा।
नाथ पहुंचें न लायें देरी, करें भक्त पर कृपा घनेरी।

दो० भक्तों की सब श्रवण करि, नाथ कहें समझांय।
गुप्त प्रभु की माया, रहस्य योग से पांय ॥ २२९ क
जीव कर्म है करता, माया वश भरमाय।
पुण्य में पाप बसत जिमि, डोरी मिश्र मंझाय ॥ २२९ ख

इच्छा राखे सुख विषे, उल्टा दुःख में जाय।
योगी सद्गुरु बिन मिले, न कर्म गांठ खुल पाय ॥ २२९ ग

बातें प्रभु की समझ न आईं, भक्त देखें इक दूजे ताईं।
उधर से मुखराम चलि आया, सज्जन एक संग में लाया।
लाला सा था उसका जामा, किया प्रभु को उस प्रणामा।
जोड़े हाथ कहे भगवाना, यहाँ से तुरंत करो प्रस्थाना।
जो भी यहाँ ठहर है पाता, जीवित कभी नहीं है जाता।
पड़े ग्राम पर विपदा घोरा, काटें लकड़ी उठकर भोरा।
सज्जन छोड़ें अपना धंधा, शव को वें सब मिल कर कंधा।
एकाध का होवे संस्कार, इतनों का क्या करें उपचार।

दो० इतना तो ईन्धन नहीं, इस गांओ के पास।
आप यहां से चलते बनो, हम पर कर विश्वास ॥ २३०क
लाला की सुन बात को, सारे भक्त उदास।
सोचें है यह सत्य ही, या करता उपहास ॥ २३० ख

प्रभु जी बैठ करें विचार, है कुछ मन्दिर से संस्कार।
चलकर तभी यहाँ सब आये, अब तो न यह छोड़ा जाय।

साधु संग का यही उपकार, इस मन्दिर का करें सुधार।
पूछें प्रभु लाला से बात, कौन हो तुम बताओ तात।
किसने था मन्दिर बनवाया, किस किस ने है ठहर दिखाया।
क्या तुम्हारे भय का कारण, किस विध सकता हो निवारण।
क्या सकते हम कर इमदाद, जो रहे शोक न इसके बाद।
साधु संगत यहां जुट पाई, इसमें स्वार्थ जरा न भाई।

दो० अपने दुःख की खोल कर, कर दो हमें बखान।
हम साधु हैं विचर रहे, जग का हो कल्याण॥ २३१ क

अन्तर्यामी नाथ जी, घट घट जिनका वास।
सभी उन्हीं की माया, योग से हो विश्वास॥ २३१ ख

पर साधारण वह लाला, न सका प्रभु पहचान।
फिर कर कोप वह बोला, शीघ्र करो प्रस्थान॥ २३१ ग

देखे हमने बहुत हैं, मरते इसके मांहि।
आप जनों की बात क्या, पुजारी टिक न पांहि॥ २३१ घ

कई पुजारी यहां पर आये, थे अपने जिन प्राण गंवाये।
कोई पुजारी निकट न आवे, जीवन अपना खो क्यों पावे।
भूतों का है यह तो मन्दिर, बचाओ जान न ठहरो अन्दर।
मैंने सबन को किया सचेत, अब समझो या जानें प्रेत।
कह कर इतना लाला भागा, जैसे उसको प्रेत हो लागा।
उस की भी तो बात थी ठीक, थी संध्या आ चली नज़दीक।
शाम वहां न रह कोई पावे, जो रहे सो जान गंवावे।
जाते को तब प्रभु ने बोला, यह संगत तो रहे अडोला।

दो० आयी संध्या देखकर, लगे करन नित कर्म।

प्रभु जी के था सामने, सारा वहां का मर्म ॥ २३२ क

नित्य कर्म से निपट कर, बैठे प्रभु के पास।
सब जन मिलकर सोचते, मन्दिर का इतिहास ॥ २३२ ख

मुखराम बोला प्रभु से वचना, नाथ क्या यह अद्भुत रचना।
इतना सुंदर मन्दिर भारी, प्रभु की प्रतिमा भी है न्यारी।
जीव मन्दिर से शांति पावें, ये जन इसके निकट न आवें।
सुनकर प्रभु जी उसकी शंका, बोले मुख से करें निःशंका।
कर्म जीव के संग हो लागें, शुभ अशुभ संस्कार ही जागें।
जीव दया न कर दिखलाये, किसी न भय को वह नर पाये।
जिन जीवों को हम दुःख देवें, भूत रूप वे बदला लेवें।
उभय पक्ष अशांत वा रोगी, हो निस्तार मिलें गुरु योगी।

दो० पाप कर्म से धन कमा, करें मन्दिर निर्माण।
किमि मन्दिर हो सकत है, शाँति का वह स्थान ॥ २३३ क

भूतों का वह घर बने, बने न देव स्थान।
आकर तो तब देव बसें, जब हो धर्म प्रधान ॥ २३३ ख

भूत बसें जहं पाप कमाई, भूत बसें जहां धर्म न भाई।
भूत बसें जहं दया न होवे, भूत बसें जहं सत्य न होवे।
भूत बसें जहं चोरी करते, भूत बसें जहं लोभी बसते।
भूत बसें जहां संयम त्याग, भूत बसें जहं तप का त्याग।
भूत बसें जहां पाठ न होवे, भूत बसें जहं जाप न होवे।
भूत बसें न ईश्वर भक्ती, भूत बसें जहं मायासक्ती।
भूत बसें जहं योग न ध्यान, भूत बसें जहं कपट प्रधान।
भूत बसें न गुरु का मान, भूत बसें अज्ञान प्रधान।

दो० जहां पर योगाभ्यास हो, या योगी का वास।
भूत वहाँ न रह सकें, मेरा दृढ़ विश्वास ॥ २३४ क

सब देवन का वास हो, योगी के घट माँही।
जहां पर योगी बसत है, तीर्थ वही कहांहि ॥ २३४ ख

उन तीर्थन में जायकर, जीव मुक्त हो जाय।
योग ध्यान का लाभ कर, परम शांति को पाय ॥ २३४ ग

भूत प्रेत जो वहां बसैं, शांति वे भी पांय।
वैमनस्य का त्याग करि, उत्तम गति को जांय ॥ २३४ घ

रात्री-चर्या में लग जाओ, अपना अपना ध्यान लगाओ।
भूत प्रेतों की बातें छोड़, ईश्वर भक्ति में चित्त जोड़।
प्राणों का सोपान बनाओ, गगन मण्डल में चढ़ दिखलाओ।
शिव शंकर की गंग बहाओ, जीवों के तुम पाप मिटाओ।
शिव संकल्प का हो विस्तार, जीव जन्तु का हो उद्धार।
ऐसी गंगधार बह पाये, जग का क्लेश सकल मिट जाये।
भय का कारण रह न पाये, आपें दुखी सुखी हो जाये।
सब का भला करें भगवान, ऐसा योग मुझे परवान*।

दो० सकल नरण को चाहिये, धरें योग में ध्यान।
स्वारथ और परमारथ, जिससे सध सब जान ॥ २३५

शिक्षा प्रभु की सब मन भायी, सद्गुरु की जयकार बोलायी।
दण्डवत सबने उनको कीना, रात्री-चर्या में मन दीना।
प्रभु ने भी स्वरूप संभाला, समाधि लीन हुये तत्काला।
रात्री बीती सब उठ पाये, प्रात कर्म में मन तब लाये।

*स्वीकार

शौच कर्म कोई करने लागा, नित्य कर्म में था कोई लागा।
उधर ग्राम में शोर मचा था, लाला ने सचेत किया था।
आज मन्दिर में भारी काम, बीस पचीस हैं गये सुरधाम।
उन्हें तो क्या जला सकेंगे, जल में ही सब बहा सकेंगे।

दो० घर घर में यही चर्चा, घर घर में यह बात।
घोर आज विपदा पड़ी, यह कैसा उत्पात॥ २३६ क

लाला को कोई कोसे, बताया इस न हाल।
कोई सेठ को कोसे, भूत बनाई साल॥ २३६ ख

सज्जन मिलकर सब कहें, है प्रभु के हाथ।
लाला अथवा सेठ का, क्या है इसमें स्वार्थ॥ २३६ ग

अपना हम अब कर्तव्य पहचानें, चलो लगायें शव ठिकाने।
जिस के भाग्य लिखी जो धरती, वही वह पाये कहती शुर्ती।
भूमी न कहीं चल के जाती, मौत खींच कर खुद है लाती।
और न अब हम काल गवायें, शीघ्र चल कर कर्म करायें।
न जाने यहां पड़ा क्या भार, अब हे राम! करो निस्तार।
सबने आहें भरी जो ठंडी, खड़े हुये और पकड़ी डण्डी।
मुंह लटकाये मन्दिर आये, उधर दृश्य कुछ और ही पाये।
सत्संग वहां पर होते देखा, व्यासासन पर प्रभु को पेखा।

दो० जीवित सब को देख कर, हुये बहुत हैरान।
"क्या स्वप्न हम देख रहे", इस विधि करें बखान॥ २३७

सूचना यह मन्दिर की सारी, फैली जैसे अग्नि भारी।
गांव के लोग उमड़ कर आये, अपने संग वे भेंटें लाये।
अन्य गांओं में पहुंची बात, भीड़ अब रहन लगी दिन रात।

देख प्रभु भण्डार लगाये, जनता भोजन कर के जाये।
सूचना पा सेठ भी आया, जिसने मन्दिर था बनवाया।
मन्दिर खुला जब उसने देखा, और प्रभु के रूप को पेखा।
उसने जाना किस्मत जागी, बना नाथ का पग अनुरागी।
सेवा में वह तत्पर रहता, आशीर्वाद प्रभु का पाता।

दो० कई दिन ऐसे बीते, सेठ करे विचार।
अब तो चल वहां देखें, पीछे का व्यापार॥ २३८ क

प्रार्थना उसने कीनी, गुरु देव महाराज।
यह सब रचना आपकी, आप चलायें काज॥ २३८ ख

मैं हूं सेवक आपका, सेव करूं मन लाय।
जितना भी धन चाहिये, मुझ को दें बतलाय॥ २३८ ग

सैंकड़ों दैनिक खर्च हों, भेजूंगा मैं देव।
मेरा सब कुछ आपका, लगे आपकी सेव॥ २३८ घ

सुन प्रभु जी सेठ की वाणी, बोले मुस्का अन्तर्यामी।
चिरञ्जीव हम सत्य बतायें, अब हम यहां तो रुक न पायें।
मन्दिर का सब दूर है दोष, पुजारी पूजा करे बिन रोष।
विद्वान पुजारी करो नियुक्त, साधन से भी होवे युक्त।
धर्म कर्म में राखे अनुराग, विषय भोग से रहे विराग।
तुम भी यहां पर श्रद्धा राखो, यश की लेश भी चाह न राखो।
सेवक बन मन्दिर में आओ, पूजा भक्ति सेव कमाओ।
ऐसा धन ही यहां पर लाना, धर्म द्वारा जिसे कमाना।

दो० प्रभु जी का प्रस्थान सुन, सेठ भया उदास।
गुरु कृपा बिन भाग्य का, किस विध होय विकास॥ २३९ क

प्रभु मिले हैं भाग्यवश, विचित्र भया यह योग।
अब वे चलना चाहते, कैसे सहें वियोग ॥ २३९ ख

प्रभु जी से विनती कर पायें, नाथ यहां कुछ रुक ही जायें।
मिले भाग्य से सत्संग ऐसा, प्रभु कृपा से पाया जैसा।
जनता बहुत दूर से आती, आपके दर्शन मात्र चाहती।
रूप ईश का आप को मानें, आप की शक्ति को पहचानें।
यदि वह आपको यहां न पायें, उनका हाल ध्यान में लायें।
उनकी इस विध सुनी पुकार, प्रभु जी कीना फिर विचार।
कुछ दिन रुक ही हम यहां जायें, प्रार्थना इनकी को अपनायें।
शुद्ध हृदय से निकली पुकार, प्रभु जी सदा करें स्वीकार।

दो० प्रभु लीला का सब रहस, कितना है दुर्बोध।
शारद शेष न कह सकें, जीव तो है अबोध ॥ २४० क

गुप्त प्रकट चरित्र का, कैसे हो प्रकाश।
च्योंटि का सामर्थ्य न, जा बैठे आकाश ॥ २४० ख

प्रभु लीला आगाध है, किस विध करें बखान।
होवे कोई अगस्त्य मुनि, करे समुद्र पान ॥ २४० ग

ठीक रहस्य तो तब खुलें, प्रकटे कोई व्यास।
आवे कोई बाल्मीक, अथवा तुलसीदास ॥ २४० घ

अकर्ता का यह दिव्य कर्म, वर्णन ना हो पाय।
महा प्रतिभा के दान को, देकर करें सहाय ॥ २४० ङ

मान भक्तों की बात को, प्रभु ठहरे उस ठौर।
ध्यान में किसके आवे, था रहस्य कुछ और ॥ २४० च

प्रभु विराजे शिखर पर, नभ पर हो जिमि चन्द।

नीचे देखा गाओं में, अद्भुत एक द्वन्द्व ॥ २४० छ

१६. ब्राह्मण युवक हरिराम (हरिहरानन्द) को अपनाना

एक युवक था झुंड पर टूटा, जिमि गरुड़ हो नाग पै छूटा।
भगदड़ मचती देखी भारी, बीच में बैठी पाई नारी।
रोक श्वास निहारें सारे, "क्या देखें" इमि नाथ पुकारें।
कैसा दुष्ट कोई यह मानव, स्त्री घेरे जैसे हो दानव।
रोती अबला दया न आवे, पीटे उसे जो इसे बचावे।
इसका अपराध अति ही घोर, हम से देखा जाय न और।
इमि फरमा प्रभु देखन लागे, द्वन्द्व दृश्य में भये अनुरागे।
लठ्ठ द्वन्द्व था बहुत विषमतर, द्वन्द्व नहीं यह युद्ध भयंकर।

दो० नारी को छुडान हित, झुण्ड उमड़ कर आय।
परास्त पुनः वह होकर, अस्त व्यस्त हो जाय ॥ २४१

एक पै टूटें बीसों योद्धा, पिट कर फिर वह लौटें औंधा।
सिर फटे और टाँगें टूटें, मुख से लहू की धारें छूटें।
युवक अडिग डटा था ऐसे, खर सेना में राम हो जैसे।
उसकी लाठी का प्रहारा, प्रकटे विद्युत का चमकारा।
वज्र पात का था आघात, कैसे उठे हो जिस पर पात।
पैंतरे युवा भरे निराले, घूम घूम कर चोटें घाले।
सीधी उलटी लाठी मारे, इक प्रहार से कई पछारे।
लताकार वह घूम दिखाये, आगे पीछे भी मुड़ पाये।

दो० अद्भुत उसकी शिक्षा, अद्भुत था अभ्यास।
अद्भुत उसकी कुशलता, अद्भुत था प्रयास ॥ २४२

लाठी से ही अंग बचाये, लाठी से ही मार गिराये।
लाठी से हो वह धमकाये, लाठी से ही दूर भगाये।
लाठी बनी थी उस की ढाल, लाठी ही उस की तलवार।
लाठी घूमे चकराकार, लाठी से ही रण की मार।
लाठी घूम छलाँग लगावे, लाठी मार फुदक कर आवे।
लाठी से लाठी टकरावे, लाठी छीनी शत्रु की जावे।
लाठी त्रिशूल सम चलावे, लाठी खडग समान घुमावे।
लाठी भाला भी बन पावे, लाठी महराठी हो जावे।

दो० उसका कौशल देखकर, हुये सभी हैरान।
गद गद होकर शंसते, यह अभिमन्यु समान॥ २४३ क

ऐसे सबन पछाड़ कर, कीनि खतम लड़ाई।
अबला को प्रणाम कर, दीनी उसे विदाई॥ २४३ ख

ग्राम जनों से प्रभु कह पायें, कौन यह बालक हमें बतायें।
क्यों थी इसने नारी घेरी, छोड़ी क्यों बिन लाये देरी।
कौन घेराव करने वाले, सब पछाड़ जो इसने डाले।
कहें ग्रामीण जग के स्वामी, आप सब जानें अन्तर्यामी।
वह थी जमींदार की नारी, है यह बालक सद् आचारी।
जमींदार से सब परेशान, नर नारी का करे अपमान।
बच न लाज किसी की पावे, ऐसा वही अधर्म कमावे।
कोई उसे समझाने जाये, गुण्डों से वह उसे पिटाये।

दो० सब नर उससे हैं दुःखी, सब नारी हैरान।
गुण्डों की जुट जुण्डली, सबन करे परेशान॥ २४४

इस गाँव में जीवन दूभर, स्त्री बाहर न निकले दिन भर।

वह तो नर नहीं है राक्षस, जैसे प्रकट भया हिरण्याक्षस।
उससे करे न कोई लड़ाई, उसके पुलिस में भी भाई।
इस बालक के पिता व माता; स्वर्ग सिधारें हैं जग त्राता।
यह ननिहाल में वास करे था; पितृ घर को त्याग चला था।
देखी इसने ग्राम की पीर, लौट के आया फिर यह वीर।
जमींदार से इस ने ठानी, स्त्री उस की खींच के आनी।
अनुभव उसे यही करावे, सज्जन कैसे है दुःख पावें।

दो० वीर युवक के कर्म से, लोगों में कुछ चैन।
गुण्डा गर्दी शान्त है, ग्राम सुखी दिन रैन॥ २४५

सुन कर प्रभु जी उन की बात; मन में हर्षित थे जग त्रात।
दुष्ट दमन है दैवी काम, किया कृष्ण और प्रगटे राम।
जब यह बालक इस जा आवे, लाना इधर हमें मिल पावे।
संकल्प प्रभु का जब हो पाया, बालक प्रेरित शीघ्र आया।
बोले लोग हे सुख के धाम, यह वह बालक है हरिराम।
आकर उसने शीश झुकाया, आशीर्वाद प्रभु दे पाया।
प्रभु जी निज मुख से फरमाये, "कौन वर्ण में हो तुम जाये"।
"ब्राह्मण वर्ण है मेरा प्यारा, जो सब वर्णन का सरदारा"।

दो० प्रभु जी सुनकर यह वचन, बालक को फरमान।
क्या तुम्हें सब विदित है, ब्राह्मण कर्म महान॥ २४६ क

ब्राह्मण वीर परम हुये, द्रोण व परशुराम।
सर्व जगत को विदित है, यह इतिहास पुराण॥ २४६ ख

प्रभु की सुनकर बात को, बालक दीना ध्यान।
देखा कोई ऊंठ था; चलता उसी स्थान॥ २४६ ग

नीचे उसके जायकर, पकड़ा हाथ लगाय।
इक झटके के साथ ही, लीना ऊंट उठाय ॥ २४६ घ
इस कर्म को देखकर, लोग हुये हैरान।
छोड़ युवक ने ऊंट को, पकड़े पग फिर आन ॥ २४६ ङ

प्रभु ने प्यार किया फरमाया, हम प्रसन्न जो तुम दिखलाया।
ऐसा बल न हम कहीं पायें, पर यह राक्षस भी अपनायें।
ब्राह्मण होते सात्विक धीर, होते त्यागी दानी वीर।
देवो हमें तुम कुछ प्रमाण, जिससे हम जायें दानी मान।
हरि राम ने उत्तर दीना, सर से बढ़कर दान न चीना।
मैं हूं सर देने को त्यार, इसको बेशक करो स्वीकार।
"हां हम इसको लेना चाहें", उत्तर में झट प्रभु फरमाहें।
सुन कर हरि राम था चौंका, भक्तों ने था दम को रोका।

दो० प्रभु का उत्तर श्रवण करि, भक्त भये हैरान।
क्या ये सचमुच कहत हैं, लेने को सर दान ॥ २४७ क
इसके सिर को क्या करें, योगी ये महान।
गाओं का है भूषण, बालक परम सुजान ॥ २४७ ख
प्रभु के मन कुछ और था, क्या समझें ये लोग।
बिन सर दिये न मिलत है, दिव्य लोक का भोग ॥ २४७ ग

नाथ अवश्य सर तुम ले लेवो, मोहलत मुझ को कुछ दे देवो।
एक दिवस मैं घर जा पाऊं, सारे घर के काम चुकाऊं।
इसी काल कल मैं आ जाऊं, अपने सर को चरण चढ़ाऊं।
अब तो तुम हो इसके मालक, मोड़ूं वचन न मैं जग पालक।
मैंने वचन जो है दे डारा, प्राणों से प्रण मुझे प्यारा।

बदले में मैं कुछ न चाहूं, बस खुशी से वचन निभाऊं।
करके प्रभु को फिर प्रणाम, चला गया घर वह हरिराम।
जाकर उसने लोग बुलाये, सब मिल जिमींदार को लाये।

दो० पंचायत मिल के बैठी, कीना सबन विचार।
बुलाया जिमींदार को, पाले सद आचार॥ २४८

जिमींदार ने मत को माना, सन्मुख पंच लिखा परवाना।
अब मैं दुष्कर्मन को त्यागूं, जनहित कर्मन में मैं लागूं।
सुनकर उसकी ऐसी वाणी, पंचायत को हुई हैरानी।
पर जहं प्रभु करें निज आसन, रह न पाये पाप का शासन।
प्रभु की थी सारी प्रभुताई, हरिराम की क्या मनुसाई।
जिसको प्रभु निमित्त बनावें, अहोभाग्य हम उसके पावें।
जिमि अर्जुन को किया निमित्ता, पवन सुत के आ बैठे चित्ता।
तिमि प्रकटी हरिराम में शक्ति, और लोकोत्तर देखें भक्ति।

दो० प्रशंसा कीनी सबन ने, हर्षित जिमींदार।
प्रकटाया हरिराम ने, फिर अपना विचार॥ २४९

मुझे मिले अब गुरु के चरणा, मैंने वास वहीं है करना।
गांव में मेरा जो घर बार, मेरा उससे न सरोकार।
गौ ब्राह्मण हित उसे लगांय, आज्ञा पा लगूं गुरु पांय।
सुन के उसके शुभ विचारा, सबने वाह वाह कह पुकारा।
जिमींदार के मन ग्लानी, पूरण वैर भाव की हानी।
भक्ति भाव सब में था छाया, जयकारा गुरु देव बुलाया।
हरिराम ने आज्ञा चाही, विसर्जित पंचायत हो पाही।
बिलम्ब न हरिराम ने लाया, खडग उठाई प्रभु ढिंग आया।

दो० धर कर चरणों में खडग, कीना उस प्रणाम।
गुरु देव स्वीकार हो, मेरा सर सुखधाम ॥ २५० क

मेरा क्यों यह आपका, करें इसे स्वीकार।
खडग के इक प्रहार से, करदें भव से पार ॥ २५० ख

कहें प्रभु तू वचन नीभाया, धन्य वह जननी जिस तू जाया।
तेरा सर है हमें स्वीकार, लेंगे इसको अन्य प्रकार।
आओ चलें नदी के तीरा, सर लेवें बहे काया नीरा।
गुप्त रहे यह सारी बात, प्रस्थान करें हम फिर तत्काल।
हरिराम ने आज्ञा मानी, नदी पर चला प्रभु सन्मानी।
नदी में लेट गया वह वीर, रखा उसने अपना सर तीर।
पकड़ी खडग प्रभु ने हाथा, उसे घुमाया वेग के साथा।
धुनी हुई जो अति गंभीर, मानो नभ ने मानी पीर।

दो० श्वास देवों का रुका, क्षण में क्या हो जाय।
निराकार भगवान की, लीला समझ न आय ॥ २५१ क

खडग नीर में फैंक कर, बालक लिया उठाय।
निज हृदय से लगायकर, दीना सिद्ध बनाय ॥ २५१ ख

निराकार ब्रह्म अवतारा, कर स्पर्श दें शक्ति अपारा।
हरिराम बालक ग्रामीण, कर दिया सिद्धों में प्रवीण।
दिव लोक में उसे पहुंचाया, बाह्य जगत का बोध मिटाया।
सर तो था न उसका काटा, उस का पाप ताप ही नाटा।
अपना प्रभु ने अंग बनाया, अहंभाव उसका मिट पाया।
प्रभु सागर उसका मन मीन, इस विध सुध भयी सारी लीन।
प्रभु ने उसको पीठ उठाया, मन्दिर में स्वयं पहुंचाया।



समाधि अवस्था में ही हरिहरानन्द को श्री प्रभु जी स्वयं पीठ पर उठा कर
अपने आसन स्थान पर ले आये ।

प्रभु ने उसको पीठ उठाया ।
मन्दिर में स्वयं पहुंचाया ।।

(दोहा २५१ के सामने)

आठ दिवस समाधि में लीना, आकर जनता दर्शन कीना।

दो० जनता वहीं पर आकर, प्रभु से करे सवाल।
स्वामिन हमें बताइये, हरिराम का हाल॥ २५२ क

इतने दिन से है पड़ा, बिन भोजन व पान।
अब यह कब उठ पायगा, करिये आप बखान॥ २५२ ख

भक्तों को प्रभु करें बखाना, हरि राम का उच्च ध्याना।
पाई इसने प्रीति आगाद, जैसे ध्रुव अथवा प्रहलाद।
खान पान बिन यह रह जाये, अमृतदान भीतर हीं पाये।
करता देवों के यह दर्शन, हो न उनसे बिछुड़न इक क्षण।
आशीर्वाद इसे दे पावें, इसकी उपमा प्रकट सुनावें।
गुरु भक्ति में तन मन वारें, सकल देव उनको सत्कारें।
स्वर्ग लोक में यह जा पाये, इन्द्र इसको गले लगाये।
रुद्र लोक में इसका जाना, शिव व गौरी करें सन्माना।

दो० वैकुण्ठ लोक में जाय कर, चतुरभुजी हो जाय।
दिव्य अलौकिक तेज में, आतम रूप लखाय। २५३ क

सुनकर प्रभु की वार्ता, जयकारा बोलाय।
जनता प्रभु पग पड़त थी, भक्ति वर्णी न जाय॥ २५३ ख

याचना भक्तन ने मिल कीनी, नाथ अलौकिक शक्ति चीनी।
ऐसी घटना सुनी न देखी, जैसी हम ने अब है पेखी।
हमको अपने दास पहचानो, निज चरणों के सेवक जानो।
दान हमें भक्ति का दीजो, ऐसा अनुग्रह हम पर कीजो।
हम भी ध्यान दर्शन कर पावें, मन के अपने भ्रम मिटावें।
विनती एक और कर पावें, हरिराम को शीघ्र उठावें।

कीने दिव जो इसने दर्शन, सुनना चाहें उनका वर्णन।
समाधि स्थित जो इसका रूपा, मनमोहक है देव स्वरूपा।

दो० हम सब की यह कामना, सुनें आप भगवान।
हरि राम जागृत बने, मांगें हम यह दान॥ २५४ क

अन्तर्यामी नाथ ने, मानी उनकी बात।
माथे ऊपर हाथ धर, कीना शक्तिपात॥ २५४ ख

पलकों मे कंपन भया, फिर दीखा चमकार।
आंखें उसकी खुल गईं, नभ में जय जय कार॥ २५४ ग

तब सभी ने फूल बरसाये, प्रभु चरणों पर माथ झुकाये।
हरि राम था बिट बिट देखे, अपने सन्मुख यह क्या पेखे।
कहां से कहां उतर कर आया, प्रभु चरणों पर शीश झुकाया।
प्रभु न मुझ से दान यह छीनो, उसी जगह अब रहने दीनो।
है देवों का जो आवासा, जहां निरन्तर सुख का वासा।
बिन धूम के वहाँ हुताशा, कोटि सूरज का प्रकाशा।
आपके चरणों से गंग धारा, बहती देखी जगदाधारा।
उसके कण मात्र का पान, कर दे पापी देव समान।

दो० मज्जन उसमें कर रहे, देवों के भी देव।
यशोगान हैं कर रहे, सद्गुरु का अधिदेव॥ २५५ क

ऐसे उत्तम लोक से, क्यों नीचे हैं लाय।
क्या मेरा अपराध हैं, पायी जो सजाय॥ २५५ ख

सुन कर उसकी आर्त पुकार, दीना फिर समाधि में डार।
भक्तों को प्रभु तब समझाया, दिव लोक हरिराम बस पाया।
इसको अभी यहां ना लायें, सुख में कोई न बाधा पायें।

अब तो साक्षात यह देवा, फल पायेगा करे जो सेवा।
प्रभु की बात सबन ने मानी, सेवा करने की उन ठानी।
कोई उसको पंखा करता, पग रज कोई माथे धरता।
कोई पुष्प था ला चढ़ावे, भू पर कोई माथ टिकावे।
कोई फल प्रसाद ले आते, आशीर्वाद को पा के जाते।

दो० तांता लोगों का लगा, समाधि का प्रचार।
गांव गांव में था भया, प्रभु का जय जयकार॥ २५६

बहुत समय वहां बीता देखा, प्रभु ने मन में किया उल्लेखा।
अभी तो बहुत काम है करना, गुरु खोज में दूर विचरना।
अब चलने की करें तैयारी, एक जगह पर ना हों भारी।
इतनी मण्डली का जो वासा, ग्राम जनों पर बोझ बड़ा सा।
समाधि से हरिराम उठाया, चलने का विचार बताया।
उसको रहने का कह पाये, सुन कर हरि राम विकलाये।
नाथ बिछोड़े की क्यों मानूं, सर तेरा न अपना जानूं।
देकर लेना दान न सीखा, तुमने मेरी कीनी परीखा।

दो० सर को अपने साथ ही, रख लो मेरे नाथ।
सालम अथवा काट कर, जिस विध भये सनाथ॥ २५७ क

रखिये अपने पास ही, जहां जाओ सरकार।
तेरी ही यह वस्तु है, मेरा न अधिकार॥ २५७ ख

सत्य बात उसकी सुन पायी, प्रभु ने आज्ञा प्रकट सुनायी।
उठो चलने की करो तैयारी, चलें शीघ्र यह मति हमारी।
आज्ञा प्रभु की पा हर्षाया, हुआ सचेत बिलम्ब न लाया।
क्षण इक पूर्व अचेत पड़ा था, अब वही सचेत खड़ा था।

प्रभु महिमा को को लख पाये, जिसको जैसे चाहे नचाये।
योग साधना के योगेश्वर, योगीजनों के हैं योगीश्वर।
जड़ चेतन के वे हैं स्वामी, करें जो चाहें अन्तर्यामी।
हरि राम को शिक्षा दीनी, ब्रह्मचर्य की दीक्षा दीनी।

दो० नामकरण उसका किया, रखा नया तब नाम।
हरिहरानन्द हो गया, पहले जो हरिराम॥ २५८

हरि व हर के जो हैं स्वामी, दीन बन्धु प्रभु अन्तर्यामी।
आनन्द उन्हीं से उसने पाया, हरिहरानन्द नाम रखाया।
समाचार जनता ने पाया, आ कर डेरा वहां पर लाया।
जिस विध प्रभु वहाँ रुक पायें, अपना अपना जोर लगायें।
चरण पकड़ था इक कह पाता, दूजा आंसू खूब बहाता।
प्रभु ने सब को तब समझाया, आत्म ज्ञान रहस्य बताया।
माया फिर थी उन पर पायी, खुशी खुशी उन दीनि विदायी।
प्रभु का जयकार बोलाया, वहां से चले बिलम्ब न लाया।

दो० आगे आगे प्रभु चले, पीछे हरिहरानन्द।
सब जन उसके बाद में, सिमरन परमानन्द॥ २५९ क

सर पर दिन का ताप था, नीचे मार्ग कठोर।
जगत नियन्ता चल रहे, गुरु मिलें किस ठौर॥ २५९ ख

श्रमित प्रभु को देखकर, शीतल बहे समीर।
प्रभु की सेवा में लगे, त्याग नदी का तीर॥ २५९ ग

बदली छाया करत थी, अंग संग लगि जाय।
वृक्ष जिस नीचे गुजरते, फूल पात बरसाय॥ २५९ घ

जगदाधार हैं आ रहे, सब के मन था चाव।

जड़ चेतन थे देखते, उनका परम प्रभाव ॥ २५६ ङ

जिधर निहारें प्रेम से, करके दृष्टि पात।
उस जा परमानन्द का, अनुभव हो साक्षात ॥ २५६ च

जिस भी तरु के तर में, बैठ करें विश्राम।
तुरियावस्था में भये, पा दर्शन सुखधाम ॥ २५६ छ

संशय इसमें न करें, जड़ का लागे ध्यान।
जड़ चेतन का भेद तो, अनात्म तक सीमान ॥ २५६ ज

१७. षट् चक्रों में देवताओं के वास का वर्णन ।

आगे आया एक स्थान, देखा लाकर प्रभु जी ध्यान।
गाओं से था वह कुछ हटकर, ना ही बहुत नदी से सटकर।
प्रभु भक्तों को आदेश सुनायें, डेरा आज हम इस जा लायें।
खेमा तम्बु वहां लग पाया, प्रभु आसन हरानन्द बनाया।
प्रभु का संग इक क्षण न छोड़े, सेवा में भी ध्यान न तोड़े।
प्रभु आज्ञा मिलने से पूर्व, सारी सेवा करे अपूर्व।
सब कुछ ले ध्यान से जान, प्रभु इच्छा को करे पहचान।
उत्तम योगी ध्यान लगायें, मन अपना प्रभु मांहि समाये।

दो० निर्मल मणि वत होत है, योगी जन का चित्त।
दिव्य भाव उस पर लखें, जैसे चित्र भित्त ॥ २६०

सब जन नित्य कर्म में लागे, हरानन्द प्रभु पग अनुरागे।
रात भयी सब मिलकर आये, प्रभु चरणों में शीश झुकाये।
प्रश्न एक मुखराम ने कीना, अपने संशय को कह दीना।

नाथ ! देवालय घट बतलावें, इसमें किमि सब देव समावें।
किस विधि हो हम को विश्वास, कि घट में देवों का आवास।
किस जा कौन देव है रहता, कैसा अपना रूप दिखाता।
हमें यदि अधिकारी जानो, इन बातों को खोल बखानो।
गुरु के मुख से निकली वाणी, सब भ्रमों की करती हानी।

दो० सुनकर उसके वचन को, कहें प्रभु जी तात।
प्रश्न तुम्हारा ठीक है, सुनो हमारी बात॥ २६१

घट देवालय सत्य उच्चारा, शिव शंकर का वचन प्यारा।
योगी इसे प्रत्यक्ष कर देखें, आगम उनके वचन उल्लेखें।
बात हमारी सुनो ला कान, साक्षात देख सको ला ध्यान।
मेरु दण्ड सब घट के माहीं, मध्य सुषुम्ना उसके आहीं।
उसी सुषुम्ना के हैं अन्दर, सारे देवों के जो मन्दिर।
दैवी शक्ति एक विराजे, लेकर रूप भेद वह साजे।
जहां पर जो तत्व प्रधाना, उसी शक्ति का वही निशाना।
देवों के जो छः हैं स्थान, षट् चक्र शास्त्र करें प्रमाण।

दो० चक्रों के जो नाम हैं, कहता हूं तुम पाहिं।
सावधान हो श्रवण कर, कदाचित भूलो नाहिं॥ २६२ क

क्रमशः उनके नाम जो, क्रम वह लो तुम जान।
नीचे से आरम्भ करि, भृकुटी तक पहचान॥ २६२ ख

पहला मूलाधार है, दूसरा स्वाधिष्ठान।
मणीपूरक है तीजा, चतुर्थ अनाहत जान॥ २६२ ग

पंचम चक्र विशुद्ध है, छट्टा आज्ञा मान।
षट चक्रन के नाम यह, स्मरण करो धर ध्यान॥ २६२ घ

अब मैं तुमसे कहत हूं, इनमें जिनका वास।
कौन देव किस जा बसे, कैसा वह आवास॥ २६२ ङ

चक्र मूलाधार जो नामा, द्वांगुल गुदा के ऊपर धामा।
गणपति देव वहां विराजे, पृथ्वी तत्व के जो हैं राजे।
ऋद्धि सिद्धि हैं उनके साथ, ध्यान लगा नर बनें सनाथ।
पृथ्वी का गुण कहा है गंध, नासिका इन्द्रिय से सम्बन्ध।
गणपति उसी तत्व के भूपा, देखो नाक सुण्ड स्वरूपा।
दूजा चक्र स्वाधिष्ठान, लिंग मूल है उसका स्थान।
ब्रह्मा जी हैं उसके देवा, करे सावित्री उनकी सेवा।
जल तत्व के वे अधिकारी, उन्हें पूज बने ब्रह्मचारी।

दो० ब्रह्मचर्य को साध कर, विद्या नर ले पाय।
ज्ञान विज्ञान पाय कर, चतुर्मुखी हो जाय॥ २६३

मणीपुर जो है तीजा धाम, नाभी चक्र भी उसका नाम।
नाभी के हैं विष्णु स्वामी, लक्ष्मी जी उनकी अनुगामी।
अग्नि तत को वे अपनावें, विष्णु जगत पालक कहलावें।
जो अग्नि को पाल दिखाये, लक्ष्मी पति वही हो जाये।
चतुर्थ अनाहत चक्र माना, शिव शक्ति का वही स्थाना।
वायु के हैं वे ही भोगी, साध प्राण बने थे योगी।
हृदय में है उनका स्थान, जहां पर बसते सब के प्राण।
शिव भावना हृदय में धारे, योगी उसको जगत पुकारे।

दो० को साधे बिन प्राण को, योगी नर हो पाय।
भावना शिव की न करे, न साधक कहलाय॥ २६४

चक्र विशुद्ध पांचवां नाम, आकाशी तत्व का जो धाम।

कण्ठ मध्य है उसका स्थान, जीव पाय जहां अपना ज्ञान।
आकाश मुक्त और स्वतन्त्र, क्यों कर जीव बने परतन्त्र।
दर्शन अपने करे यहां पर, भव से छूट जाय हो तत्पर।
आज्ञा चक्र है छटा स्थान, भृकुटी मध्य में इसका ध्यान।
प्रणव का है यही प्रदेश, जो है विश्वपति अखिलेश।
तीन गुणों से ईश न्यारा, स्वामी बन कर करे पसारा।
इस चक्र में बैठ दिखलाये, उसकी आज्ञा में सब आये।

दो० सब देवन के स्थान ये, कीने मैं बखान।
संकेत से तुम जान लो, शास्त्र का जो ज्ञान॥ २६५ क

पांच तत्वों के भेद से, देवन में है भेद।
देव अनेक जो सृष्टि में, कारण तत्व भेद॥ २६५ ख

देवों के स्वरूप से, विश्व में मत अनेक।
तत्व गुण विचार कर, निर्णय बनता एक॥ २६५ ग

मूढ़ जन भ्रम में पड़ें, योगी भ्रमित न होय।
योग शास्त्र विज्ञान ही, सब भ्रमों को खोय॥ २६५ घ

१८. भ्रांत रूहों द्वारा मण्डली को भयभीत करना और श्री प्रभु जी द्वारा रक्षा।

भक्तों ने जो ज्ञान सुन पाया, अपना सब ने भरम मिटाया।
तब प्रणाम प्रभु को कीना, इधर उधर जा शयन में लीना।
थके मांदे संज्ञा से हीन, शीघ्र हुये निद्रा में लीन।
हरिहरानन्द केवल जागे, प्रभु चरणों की सेव में लागे।
आधी रात जब हुई व्यतीत, सुन शोर सभी जागे सभीत।

"मारा मारा" यह सुन पाये, हरिहरानन्द प्रभु जगाये।
नाथ होवे यह कैसा शोर, कौन है मारे आ इस ठौर।
मण्डली सारी है भयभीत, आज्ञा मिले तो करूं प्रतीत।

दो० विश्व पति ने जाग कर, दृष्टि उधर लगाई।
"हरिहरानन्द जाओ", आज्ञा यह सुनाई॥ २६६ क

हरिहरानन्द जाय कर, खड़ा हुआ उन पास।
रोना सबने बन्द किया, उपजा था विश्वास॥ २६६ ख

हरिहरानन्द इत उत देखा, मारन वाला कोई न पेखा।
फिर भी सब ने यह कह पाया, हरिहरानन्द हमें बचाया।
हम तो सारे मारे जाते, जो यह आकर नहीं बचाते।
कैसे घोर रुधिर के भूखे, देख हमारे प्राण थे सूखे।
तिस पर जब वे काटन लागे, हम चिल्लाये परम अभागे।
हरिहरानन्द देर लगाता, एक भी यहां न जीवित पाता।
किस विध प्रकट करें आभार, सब के प्राण लिये उद्धार।
तब मिल कर वे प्रभु ढिंग आये, सबने अपने हाल सुनाये।

दो० उनकी हालत देख कर, प्रभु हुये हैरान।
कैसी यह बिडम्बना, भ्रांत रूहें कर पान॥ २६७

सबको प्रभु आश्वासन दीना, भजन करो यहां भय विहीना।
ईश्वर सबके रक्षक भाई, निकट न आ सकें दुखदाई।
सबने प्रभु की आज्ञा मानी, करने लगे भजन गुरु ध्यानी।
प्रात भयी नित कर्म में लागे, प्रभु कृपा सिमरत अनुरागे।
ग्राम की जनता मिल कर आई, देखन हित दृश्य दुखदायी।
स्वस्थ वहां जो सारे देखे, हो हैरान करें उल्लेखे।

नाथ ! रात जो चीख चिल्लावें, वे नर कहां हैं हमें दिखावें।
हैं ये स्थान बहुत ही भारे, यहां जो ठहरे जीवन हारे।

दो० प्रभु बिठलाये पास सब, कही प्रेम से बात।
भक्तो अब सब ठीक है, डरो नहीं तुम तात ॥ २६८ क

सद्गुरु के प्रभाव से, शुद्ध हुआ यह स्थान।
चाहे जो भी ठहर ले, कुछ न हो अब हान ॥ २६८ ख

ग्राम जनों को हुआ विश्वास, साधु आये हैं कोई खास।
लोग निरन्तर आयें ऐसे, पंक्ति पर साजे पंक्ति जैसे।
देख प्रभु ने भीड़ बहुतेरी, लंगर खोला लाई न देरी।
उपदेश सुनें व भोजन पायें, दर्शन करके घर को जायें।
इक दिन साधु वहां कोई आया, अपने कर में खप्पर लाया।
भण्डारे अन्दर उसने जाकर, खप्पर पसारा सब को कह कर।
मेरा नियम खप्पर भर लाना, और जाय एकान्त में खाना।
इस खप्पर को भर दिखलाओ, आशीर्वाद मेरा पा जाओ।

दो० खप्पर मेरा जो भरे, जानूं उसको सिद्ध।
काम भण्डारे तोड़ना, मैं हूं साध प्रसिद्ध ॥ २६९

१९. खप्पर वाले साधु का गर्वचूर।

यदि खप्पर न भर दिखाओ, लंगर टूटा ही बस पाओ।
यहां पर कुछ भी रह न पाये, हर नर भूखा फिर घर जाये।
मेरी शक्ति को सब जानें, सारा देश मुझे पहचाने।
मेरी आज्ञा को ही पाकर, करें भण्डारे सब नर आकर।
यही भण्डारा ऐसा पाऊं, बिना निमन्त्रण ही चलि आऊं।

मेरी आज्ञा को बिन पाये, कौन भण्डारा कर दिखलाये।
यह भण्डारा टूटे ऐसे, शिक्षा सब जन पायें जैसे।
मेरा खप्पर भर दिखलाओ, या भण्डारा टूटा पाओ।

दो० सुन कर धमकी साध की, गये सभी घबराये।
लगे उड़ेलन खाप में, जो पकवान बनाये॥ २७० क

ज्यों ज्यों वस्तु पड़त थी, खप्पर बढ़ता जाये।
उसमें जो भी डालते, सब कुछ वहीं समाय॥ २७० ख

कैसा खप्पर यह निराला, साध की शक्ति सहित प्याला।
भाण्डे उसने रिक्त कराये, खप्पर भरने में न आये।
चर्चा लोगों में चल पाई, शुभ कारज में पड़ी खटाई।
समाचार जब प्रभु जी पाया, हरानन्द को वहाँ भिजाया।
आकर हरानन्द ने देखा, तमोगुणी वह साधु पेखा।
रिस भरा था उसका रूप, किस को समझे निज अनुरूप।
उसके निकट न कोई आवे, जिस किसी को गाली सुनावे।
खीर की लुटिया हरि उठाई, जाकर खप्पर में उल्टाई।

दो० खप्पर उसका भर गया, साधु भया हैरान।
तमोगुणी स्वभाव वश, न सका प्रभु पहचान॥ २७१ क

सूरज जब नभ आयकर, प्रकट करे प्रकाश।
तारे की सामर्थ्य क्या, दीख पड़े आकाश॥ २७१ ख

जनता सब आश्चर्य से देखे, प्रभु की शक्ति सन्मुख पेखे।
प्रभु जी का जयकार बोलाया, साधु सुन कर क्रोध में आया।
गाली गलोच बकता जाता, हरानन्द को आंख दिखाता।
उसको हरानन्द समझावे, समझ में उसकी कुछ न आवे।

लड़ने की फिर उसने ठानी, अपनी शक्ति का अभिमानी।
उस ने जूं ही हाथ उठाया, हरानन्द ने पकड़ दबाया।
उस की शक्ति सब छिन पायी, बहु वर्षों की जोय कमायी।
अब तो वह था रोने लागा, फूट फूट चिल्लाने लागा।

दो० चिल्लाना उसका सुनि कर, प्रभु जी उठकर आन।
हरानन्द को रोक कर, साधु को समझान॥ २७२ क

क्या कारण है साध जी, रोने की क्या बात।
साधु को प्रिय साधना, तजत जगत उत्पात॥ २७२ ख

प्रभु की सुन कर गूढ़ यह वाणी, साधु चौंका निज अभिमानी।
प्रभु में उसने देखी शक्ति, उपजी जैसे गुरु में भक्ति।
चरण पकड़ कर लगा गिड़ाने, बखशो नाथ, हम भूलाने।
था न मैंने तुम्हें पहचाना, आया सधुआ कोई मैं जाना।
आप से ही तो शक्ति पाई, मूर्खतावश दीनि गंवायी।
निज अपराध अब मैंने चीना, आपके शिष्य ने उसको छीना।
बिन शक्ति के जीवन ऐसा, अर्थ बिहीन वणिक हो जैसा।
कृपा कर अब उसे लौटाओ, जीवन मेरा सुखी बनाओ।

दो० शक्ति बिन जीवन मेरा, ज्यों बिन मणि के सांप।
एक भी क्षण न जी सकूं, जानत हैं सब आप। २७३ क

ऐसी वाणी बोलकर, साधु भया बेहाल।
चरण प्रभु के पड़ गया, जिस विध होय निहाल॥ २७३ ख

प्रभु जी ने फिर उसे उठाया, सन्मुख प्रेम सहित बिठलाया।
कृपा उस पर ऐसी कीनी, मती सकल तमोगुणी छीनी।
शक्ति का यह नशा जो भाई, सुरापान सम है दुखदाई।

साधन लक्ष न शक्ति पाना, साध को उचित मोक्ष कमाना।
शक्ति से जो पाप कमायें, साधु उससे नरक में जायें।
योग साधन से मोक्ष द्वार, शक्ति साध को करे ख़्वार।
भ्रांत करे शक्ति का मान, पाय राज ज्यों बने गुमान।
गुरु किरपा का राखे ध्यान, करे न योगी वह अभिमान।

दो० करो प्रतिज्ञा इस क्षण, धर्म की हो न हान।
गो ब्राह्मण व लोक हित, रहे तुम्हारा ध्यान॥ २७४ क

शक्ति वह फिर पायकर, धारो यह सौगन्ध।
राखो इसे सम्भाल कर, बसे पुष्प ज्यों गंध॥ २७४ ख

करि प्रणाम प्रभु चरण में, कहे साध विश्वास।
सर्वज्ञ, सर्वेश दयाल प्रभु, रहूं चरणों का दास॥ २७४ ग

अन्तर्यामी नाथ ने, धरा माथ पर हाथ।
उंसको शक्ति मिल गई, आशीर्वाद के साथ॥ २७४ घ

हर्ष प्रफुल्लित होयकर, लीनि साध विदाई।
प्रभु किरपा की कीरती, करें लोग लुगाई॥ २७४ ङ

पावन वह प्रदेश प्रभु कीना, भ्रांत रूहों को मार्ग दीना।
प्रभु जी तब विचार बनाया, आगे चलें आदेश सुनाया।
ग्राम जनों ने दीनि विदायी, आंखें सब की थीं भर आईं।
उनकी प्रीति वर्णी न जाये, प्रेम अलौकिक को लख पाये।
लोग दूर थे संग चलि आये, बार बार प्रभु कह लौटाये।
दिन भर चलकर जहां प्रभु आये, मिल कर सब ने खेमे लाये।
नदी किनारे ग्राम सुहायें, आश्रम इक मध्य उनके पायें।
बहुत मनोहर था वह स्थान, प्रभु जहां पहुंचे शोभ निधान।

दो० डेरा वहां लगायकर, सब जन देखें स्थान।
हरिहरानन्द लग गया, प्रभु की सेव कमान॥ २७५ क

आज्ञा प्रभु की पायकर, चला अग्नि को लान।
सन्मुख आश्रम देखकर, घुस गया उसी स्थान॥ २७५ ख

२०. जन संतापी क्रोधी साधु को शिक्षा।

आश्रम था वह बहुत ही सुंदर, मन्दिर ताल सभी उस अन्दर।
बाग बगीचा भी मन भाये, मध्य में धूनी इक सुहाये।
वर्षों से वह धूनी अखण्डा, जिसके स्वामी साध प्रचण्डा।
उस साध कुछ सिद्धियां पाईं, शक्तियां जनता को दिखलाईं।
जनता उस की सेवा करती, और निरन्तर उस से डरती।
साधु क्रोधी था वह ऐसा, शाप देवे दुर्वासा जैसा।
हरिहरानन्द ध्यान न दीना, वह था प्रभु ध्यान में लीना।
न गिनता वह किसी की शक्ति, रहती अखण्डित उसकी भक्ति।

दो० जाकर उसने धूनि से, भरली थी कुछ आग।
उधर से साधु आ गया, उसका था दुर्भाग॥ २७६ क

आग बबूला हो गया, हरानन्द को देख।
बोला होते कौन हो, छुई धूनि की रेख॥ २७६ ख

धूनी को जो छू दिखलावे, लेकर आग यहाँ से जावे।
उसे कभी मैं क्षमा न करता, मेरा शाप पाय कर मरता।
शाप देने वह जब ही लागा, लौटे से जल पलटन लागा।
हरिहरानन्द झपटा मारा, लोटा छीन पटक कर डारा।
प्रभु का स्मरण करा उस काल, साध की शक्ति नसी तत्काल।

शाप की शक्ति उस की ऐसे, पर लगे हों साँप हो जैसे।
छीनी वह हरानन्द सारी, साध को चोट लगी अति भारी।
दौड़ के प्रभु पास हरि आया, साध की शक्ति को हर लाया।

दो० हरि ने प्रभु ढिंग आयकर, धर दीनी वह आग।
पीछे से वह साध भी, आया रोता भाग॥ २७७ क

कहे "लुट गया लुट गया", मुख से बहती झाग।
ऐसे लगता लगी हो, तन बदन उस आग॥ २७७ ख

सर्वज्ञ प्रभु ने उसे निहारा, भोले भाव से था उच्चारा।
आओ महात्मन कैसे आना, क्यों दुःखी हो हमें बताना।
क्या कुछ तप में विघ्न पड़ा है, अथवा कारण और बड़ा है।
साधु सुनकर क्रोध में आया, बोला बालक तुम अपनाया।
इस धूनि से आग है लीनी, शक्ति सारी मेरी छीनी।
मैं तो लुट गया हूं भाई, दण्ड पाये यह महादुखदायी।
मुझ से बचकर यह है फिसला, जैसे कभी कोई न निकला।
पा लेता यदि शाप यह मेरा, भस्म वहीं पर होता छेरा।

दो० हरि था मनमें हंसता, सुनकर उसकी बात।
इस सधुए को दीखते, हरे हरे सब पात॥ २७८ क

माने जिसको पकड़ कर, करले अपना ग्रास।
दया बिन पाए सद्गुरु, प्रभु का किमि हो भास॥ २७८ ख

प्रभु निज भाव उसे बतलाये, साधु को न क्रोध सुहाये।
शांतमयी ही जो रह पाता, सच्चा साधू वही कहाता।
धृष्टता बालक जो कर पाई, अनजाने में कीनी भाई।
अब तुम आश्रम में मुड़ जाओ, व्यर्थ न क्रोध में श्वास गंवाओ।

उस के हित की प्रभु कह दीनी, मूरखता वश उस न चीनी।
अड़ा खड़ा वह वहां पर ठहरा, हरानन्द पर जिमि दे पहरा।
इतने में कुछ जनता आई, साधू की करतूत सुनाई।
"साधु क्रोधी है महाराज, बचके रहना इससे आज।

दो० जिस किसी को शाप दे, कर दे सत्यानाश।
गृहस्थी अथवा महात्मा, इससे सभी हताश॥ २७९

शाप किसी को दे जब पाये, उसका वंश यह खाक मिलाये।
बात तो हम करते तुम पास, इस साधु का नहीं विश्वास।
अभी हमीं पर क्रोध करे यह, शापित कर अंग हीन करे यह।
बहुतों को इस किया बरबाद, जो थे गाओं में आबाद।
अब न सन्मुख इस कोई आएं, पशु पक्षी और नर घबरायें।
बहुत पशु इस शाप संहारे, रोगी करके मारे सारे।
सारा ग्राम है इससे पीड़ित, जिस को देखे करता ताड़ित।
बार प्रथम अभी हम देखा; बच कर बालक निकला पेखा।

दो० हम तो सब हैरान हैं, चुप खड़ा क्यों साध।
इस अपराधी बाल को; लगे न कुछ भी व्याध" ॥ २८०

प्रभु जी ने यह सब सुन पाया, मनमें दया भाव तब लाया।
दुःखी ग्राम की जनता देखी, साधू से आतंकित पेखी।
इसकी शक्ति घोर अभिशाप, हटना चाहिये जन संताप।
लोगों से फिर प्रभु फरमावें, स्पष्ट बात सब हमें बतावें।
किसका इसने क्या बिगाड़ा, किस के घर को और उजाड़ा।
त्राण पायगा हम से वह नर, कोई न फिर दुःख आवे उस पर।
लोगों ने शंका जतलायी, अभयदान की भिक्षा चाही।
कौन मरे यह सब कुछ कह कर, कहां रहेंगें साध से बचकर।

दो० हमें यदि विश्वास दें, करेंगे रक्षा आप।
सुनावें इसकी वार्ता, दीना इस जो ताप ॥ २८१

प्रभु जो ने उनको बतलाया, भय उन सब का दूर हटाया।
साधू की जो शक्ति भारी, हर ली है अब हम ने सारी।
अब न किसी का कुछ भी जाये, सत्य बात जो हमें सुनाये।
ईश्वर हमें यहां पर लायें, कष्ट आपके जिमि हट पायें।
लोगों ने जब यह सुन पाया, चिट्ठा सारा खोल सुनाया।
जिन को देय शाप था मारा, जिन के पूतों को संहारा।
जिनें दें शाप अकिंचन कीना, जिस जिस का उस अंग था छीना।
अंधे बहरे लंगड़े कीने, वंचित धन धान्य से कीने।

दो० सब के नाम बताय कर, कीनी व्यथा बखान।
वर्णन प्रभु ने सुनकर, पाया खेद महान ॥ २८२ क

कहें साधु से कोपकर, हे साधु परं अधन्य।
धिक्कार तेरा जीवन, दुःखी जो तुम से अन्य ॥ २८२ ख

साधु वह जो साधन जाने, साधु वह जो सत्य पहचाने।
साधु वह जो सेव कमावे, साधु वह जो दया अपनावे।
साधु वह जो हो ब्रह्मचारी, साधु वह जो पवनाहारी।
साधु वह जो संग्रह त्यागे, साधु वह जो धन को त्यागे।
साधु वह जो शांत स्वभावा, साधु वह जो निर्मल भावा।
साधु वह जो परम संतोषी, साधु वह जो परम निर्दोषी।
साधु वह जो तप को साधे, साधु वह जो शास्त्र आराधे।
साधु वह जो करता भक्ती, साधु वह निज गोपे शक्ति।

दो० किञ्चित शक्ती पाय कर, करता जो अभिमान।

उस को साधू न कहें, वह तो धूर्त समान ॥ २८३

लोगों ने जब बात यह चीनी, साधू की प्रभु शक्ती छीनी।
मन में उपजा तब प्रतिशोध, साधु पकड़ लिया कर क्रोध।
कोई जटा पकड़ कर खींचे, धक्का दे कोई पटके नीचे।
बहुत बुरी उन साध से कीनी, शक्ती जब उसकी हर लीनी।
उसने प्रभु को रोय पुकारा, मिला लोगों से तब छुटकारा।
ग्राम जनों को घर भिजवाया, साधु को निज संग बिठलाया।
घुसे मन्दिर में कुछ जन आकर, पीटें चेलों को वहां पाकर।
समाचार जब प्रभु ने पाया, निज शिष्यों से उन्हें छुड़ाया।

दो० लोगों ने तब जान ली, जो कुछ प्रभु कह पांय।
साधू को सब छोड़ कर, घर अपने को जांय ॥ २८४

लोगों में श्रद्धा अधिकाई, बाढ़ दर्शकों की फिर आई।
प्रभु के ढिंग सब आने लागें, भेंट अनेकों लाने लागे।
सब ने मिल भण्डारा कीना, सद्गुरु को सन्मान जो दीना।
देख साधु को हुई ग्लानी, निज कर्मों से पाई हानी।
पश्चाताप उसे था भारी, दुर्गति हुई जो उसकी सारी।
निश्चय मन में वह कर पाये, अब ना ऐसे कर्म कमाये।
प्रभु से जो उस शिक्षा पाई, कर्म करेगा उस विध भाई।
प्रभु जी को निज भाव बताया, नाथ ने उस को फिर समझाया।

दो० सबको मित्र दृष्टि से, देखो मेरे मीत।
जग में वैरी न कोई, सबसे राखो प्रीत ॥ २८५

दो ही अपने शत्रु जानो, एक काम वा क्रोध पहचानो।
महापापी व महाभुखारी, नाशे नर की जिन्दगी सारी।

वैरी इनको जाने मानव, इनसे घोर न कोई दानव।
कोप इन्हीं का जब बढ़ पाये, दावानल सम चण्ड लखाये।
जिमी दावानल वन को खाये, यह वंशों के वंश जलाये।
वश में इसे न जो कर पाये, साधु वह फिर किमी कहलाये।
साधू बन कर साधे क्रोधा, शाँत भाव से पाये बोधा।
शांत भाव मन निर्मल होवे, स्थिर जल जैसे मल को खोवे।

दो० निर्मल मन से देख ले, जीव प्रभु का रूप।
ईश्वर दर्शन से मिले, धाम कैवल्य अनूप॥ २८६

काम क्रोध दोनों इक रूपा, मानो जैसे छाया धूपा।
काम को वश में जिस है कीना, आशा तृष्णा को तज दीना।
क्रोध न उस पर हावी* होवे, बल अपना वह सारा खोवे।
जब भी क्रोध उपजे मन मांहि, धार मौन न बोले क्षण तांहि।
मन के अन्दर बन्द वह होवे, घुटने से दम अपना खोवे।
मूर्ख जीव क्रोध प्रकटावे, गाली दे कर उसे बढ़ावे।
सन्त महात्मा मौन को मानें, मन अपना वश ऐसे आनें।
सन्त कभी ना झगड़न पावे, उसका बिगड़ चाहे कुछ जावे।

दो० योग को अपनाय कर, साचे बनो तुम सन्त।
अब शापों को त्याग कर, पूजो तुम भगवन्त॥ २८७ क

बात प्रभु की मान कर, नत मस्तक वह होय।
आज्ञा प्रभु जी दीनी, इसे न मारे कोय॥ २८७ ख

साधू मन्दिर में भिजवाया, जनता को प्रभु जी समझाया।
ऐसा जीव न जग में कोई, जिसमें दोष लेश न होई।
सत्संग दोष को दूर हटावे, व्यक्ती निर्मलता को पावे।

---

*प्रभाव दिखलाना

फिर वह आदर का अधिकारी, देखो उस में गुण तुम भारी।
साधु ने है साधना कीनी, बारह वर्ष तपस्या कीनी।
इस को था क्रोध ने जारा, सत्संग ने अब इसे उभारा।
पूज्य इसी को तुम सब मानो, इस के दोष न चित्त में आनो।
अब न शाप यह तुम को देवे, प्रेम से सब की सेवा लेवे।

दो० साधु जानो धर्म के, जैसे हों निशान।
सेवा उन की सब करें, जग का हो कल्याण॥ २८८ क

इस विध शिक्षा देयकर, चले वहां से नाथ।
आज्ञा उन की मान कर, सब जन भये सनाथ॥ २८८ ख

नीर नर्मदा का चले, मिले समुद्र अगाध।
करुणा सागर चल रहे, पावें सद्गुरु साध॥ २८८ ग

एक बात यह और भी, जानें स्वयं दयाल।
राह थी उनकी देख रहे, बैठ भक्त बहु काल॥ २८८ घ

२१. तपस्वी दंपती को योग दीक्षा।

दो० ऐसे ही इक दंपती, बैठे नदी किनार।
बानप्रस्थी वे दोनों, करें ज्ञान विचार॥ २८८ ङ

दोनों देववाणी में बोलें, शुद्ध उच्चारण से मुख खोलें।
भाषा का पाण्डित्य जतावें, तर्क वितर्क ज्ञान दिखलावें।
प्रभु जी को विद्या से प्यार, बैठ कर सुनने लगे विचार।
मुखराम और दण्डी स्वामी, वे भी तो विद्वान थे नामी।
बैठ गये श्री प्रभु के साथ, कान लगा कर सुनें सब गाथ

झड़ी तर्क वितर्क की लागी, रह न पायें विद्यानुरागी।
विद्या को विद्या से काटें, दें कर युक्ति युक्ति को पाटें।
था मुखराम पण्डित विद्वान, वह भी देने लगा परमान।

दो० विद्या व्यसनी जो रहें, ज्ञान रमें दिन रैन।
पण्डित जन किमि रह सकें, सुन शास्त्रन के बैन॥ २८६

पक्ष पुरुष का उस ने लीना, शास्त्रार्थ रमनी से कीना।
पर वह ऐसी विदुषी नारी, पाई मुखराम हार करारी।
दण्डी स्वामी रह ना पाया, उस ने भी निज तर्क जताया।
नारी ने परमान बताये, हार गया वह मुंह की खाये।
युक्ती दण्डी को तब सूझी, गुरु कृपा से थी उस बूझी।
कहने लगा तर्क जो भारे, साक्षात बिन थोथे सारे।
साक्षात हम योग से पावें, ना बिन गुरु के अनुभव आवें।
अनुभव तोरा सुनना चाहवें, तुम विदुषी हम शीश झुकावें।

दो० सुनकर उसकी बात को, पाया नारि संकोच।
सत्य तो इसने है कहा, अनुभव बिन सब पोच। २९०

अनुभव साधन योग करावे, बिन गुरु योग न कोई पावे।
योगी गुरु सुगम ना मिलते, भाग सुमन उन्हीं से खिलते।
शास्त्र का मैं ज्ञान है पाया, योगी गुरु नहीं अपनाया।
इससे हुई है मुझे ग्लानी, विद्वन में अब मान की हानी।
प्रश्न उलट कर उसने कीना, क्या तुमने है अनुभव चीना।
कौन मिले गुरु तुम को प्यारे, जिनसे पाये रहस्य न्यारे।
दण्डी झट इशारा कीना, मस्तक प्रभु चरणन धर दीना।
ये हैं मेरे सत्गुरु प्यारे, कीने मेरे भाग्य उज्यारे।

दो॰ इनका तुच्छ मैं दास हूं, ये मेरे भगवान।
अखिल विश्व के देव से, मांनू इन्हें महान॥ २६१

अखिल शास्त्रन को पढ़ पाया, षट्शास्त्री था नाम धराया।
दण्ड को धार बना फिर स्वामी, मेरे शिष्य थे बहु अनुगामी।
शून्य था मेरा अनुभव भगिनी, पाया ज्ञान लगा जब चरनी।
योग शक्ती के पूरण स्वामी, पायी शांती बन अनुगामी।
जो कुछ शास्त्रन में फरमाया, लग इन चरणों में मैं पाया।
जो अर्जुन को दिव्य चक्षु दीने, वे इनसे इन शिष्यन लीने।
हरानन्द है यह ब्रह्मचारी, आठ दिवस की समाधी धारी।
दिव्य अलौकिक दर्शन पाये, तन बदन की सुधी बिसराये।

दो॰ तुमने पूछा प्रश्न जो, कीना मैं बखान।
शास्त्रों में जो है लिखा, गुरु से पाया ज्ञान॥ २६२

नारी ने सुन दण्डी की वाणी, प्रभु जी में निज श्रद्धा आनी।
करि प्रणाम उस वचन उचारा, हम दम्पती वन-आश्रम धारा।
तप करें और ज्ञान कमावें, तीर्थन में मन अपना लावें।
हम ना चाहवें लौकिक भोग, केवल चाहें मोक्ष कर योग।
पातंजल शास्त्र हम को प्यारा, करे कैवल्य का जो विस्तारा।
विभूति योग का करे बखान, समझें केवल जिसे विद्वान।
साधन और समाधि योग, तपस्वी साधे तज सब भोग।
मारे जब कोई मन का काम, योग साधन कर पाये तमाम।

दो॰ मेरी विनती आप से, करिये कुछ उपदेश।
अनुभव रूप बखानिये, हमें योग निर्देश॥ २६३ क
आप सदृश आचार्य से, शिष्य पायें प्रबोध।
किरपा मुझ पर भी करो, करूं योग का बोध॥ २६३ ख

पत्नी की सुन बात को, पति ने टोका बीच।
भिन्न पति से गुरु करे, कहावे नार वह नीच॥ २६३ ग
स्त्री को अधिकार नहीं, गहे गुरु के चरण।
शास्त्रों का तो मत यही, रहे पति की शरण॥ २६३ घ

बात पति की जब सुन पायी, पत्नी अपनी मती जतायी।
स्त्री पुरुष में भेद न कोई, मुक्ति सब की ज्ञान से होई।
ज्ञान गुरु से ही जन पावे, स्त्री पुरुष में भेद न आवे।
योगी पति जो नारी पावे, उस को ही वह गुरु अपनावे।
दीक्षा उस से पावे ऐसे, शिव से पार्वती ने जैसे।
अनन्य भाव से उसे ध्यावे, साधन कर सिद्धि अपनावे।
उस नारी का नहीं समाना, दर्शन करें होवे कल्याणा।
अनसूया गार्गी वह समाना, सब सिद्धियों की होवे खाना।

दो० पति न योगी जो भये, अवश्य करे तब जाय।
योगी गुरु की सेव से, जन्म मरण खो पाय॥ २६४ क

सुन पति ने तुरन्त तब, प्रश्न कीना मुस्काय।
यदि स्त्री होवे योगिनी, क्या पति कर पाय॥ २६४ ख

नारी ने निःशंक हो, मत दीना प्रकटाय।
यदि स्त्री होवे योगिनी, गुरु बन पति की जाय॥ २६४ ग

साधन अपने पति पर वारे, जीवन उस का स्वयं संवारे।
मोह माया से उसे निकारे, जीवन नौका लाय किनारे।
प्रभु जी ने ये सुने विचार, बोले धन्या है तू नार।
योग साधन में तेरी निष्ठा, पति धर्म की करो प्रतिष्ठा।
ऐसी नारी ही कुल तारे, दांपत जीवन को संवारे।
यम नियमों को पाल दिखाया, स्वाध्याय में मन तुम लाया।

योग धारणा में लग जाओ, दिव्य अनुभव तुम कर पाओ।
अनुभव आतम साधन लक्ष्य, ध्यान योग से आये समक्ष्य।

दो० प्रभु जी के उपदेश से, दंपती पाया बोध।
दीक्षा ग्राही नाथ से, सब विध भये सुबोध ।। २६५ क

प्रभु जी की आशीष से, चित्त भये तद्रूप।
ध्यान समाधि लाभ कर, विलीन प्रभु के रूप ।। २६५ ख

नाथ वहां से चल दिये, कर उन्हें कृतार्थ ।।
योगी खोजन हित स्वयं, प्रभु करें पुरुषार्थ ।। २६५ ग

मारग प्रभु का ताकते, योगी बैठ समाध।
जिस मग से वे गुजरते, उमड़े प्रेम अबाध ।। २६५ घ

२२. सिंह स्वामिनी साध्वी और उस के योगी गुरु से मिलाप

योगी बैठ ध्यान में देखें, चल रहे प्रभु का मार्ग पेखें।
इच्छा सब की यही थी एक, पधारें प्रभु जी धारें टेक।
सफल तपस्या अपनी जानें, जो चरण प्रभु उस मार्ग आनें।
मारग चलते बीहड़ आया, उस का दृश्य था प्रभु को भाया।
उस भीतर आकर्षण पाया, प्रभु जी पग था उधर बढ़ाया।
चल कर आगे देखी नारी, सन्मुख उसके सिंह इक भारी।
वह थी तो इक साध्वी नार, कर रही आश्रम की रखवार।
देख प्रभु को उस जां आया, लायी न देरी शीश झुकाया।

दो० माथा उसने टेक कर, की विनती सुविनीत।
नाथ स्वागत आपका, यह वन किया पुनीत ।। २६६ क

मेरे सद्गुरु पास ही, करते यहां निवास।

विनती मेरी आपसे, धारें पग उन पास २६६ ॥ ख

प्रार्थना को प्रभु जी स्वीकारा, पग उस दिक को फिर उन धारा।
आगे आगे साध्वी नारी, पीछे उन के मण्डली सारी।
पहुंचे जाकर आश्रम माहीं, रहता योगी गुरु जिस थाहीं।
योगियों में था वह सरदारा, उठ कर उस ने प्रभु सत्कारा।
गुप्त बात को विरला जाने, प्रभु को तो योगी पहचाने।
या था काक भुषुण्डी जाना, आना प्रभु का प्रथम बखाना।
योगी ने फिर आसन दीना, प्रभु हुए तब सुख आसीना।
साध्वी कंद मूल ले आयी, आतिथ प्रभु जी का कर पायी।

दो० चर्चा चाली योग की, सभी सुनें ला ध्यान।
योगी बातें पूछता, करता प्रभु का मान ॥ २६७ क

साध्वी बैठी पास थी, सुनती लाकर कान।
उसकी रुचि को देखकर, कीना प्रभु बखान ॥ २६७ ख

योगिवर ! यह शिष्या तेरी, जानूं मैं यह चतुर घनेरी।
क्या कुछ साधन इस कर पाये, सुनना चाहें हमें बताये।
उत्तर योगी ने दे पाया, सत्य आप जो है फरमाया।
है यह परम विरक्ता बाला, बीते साधन में ही काला।
अथवा सेवा में रत रहती, समय न अपना यों गंवाती।
जो कुछ इसने पाया ज्ञान, प्रश्न करो और लो सब जान।
न्यूनता जो भी इसमें पाओ, पूरी करके अब तुम जाओ।
ईश रूप हैं आप पधारे, इक चित्त होकर यह सत्कारे।

दो० ऐसा अवसर कब मिले, आवें फिर जब आप।
भाग खुलें जब जीव के, तब हो प्रभु मिलाप ॥ २६८

सुन कर प्रभु जी यों फरमाये, दक्षिण दिक में हम थे आये।
जानें हम यह स्थान पैवित्र, जहां पर प्रगटे राम चरित्र।
ऋषि मुनियों का स्थल यह पावन, मिटा सका न जिन को रावन।
दर्शन आपके याद दिलावे, अगस्त मुनि का स्मरण करावे।
आपकी शिष्या को मैं जानूं, शबरी का अवतार ही मानूं।
ऋषियों मध्य जो समय बिताती, राम प्रतीक्षा में थी रहती।
नारी जीवन परम महान, भाव भक्ति की यह है खान।
सेवा गुण भी इसमें भारी, अहं भाव से रहे न्यारी।

दो० नारी में गुण बहुत हैं, समझे कोई सुजान।
नारी का जहं मान हो, देव रमें तहं आन॥ २९९

इस देवी ने योग कमाया, बहुत हमारे मन है भाया।
योगी नारी देवी रूपा, सिंह वाहिनी दिव्य स्वरूपा।
मन ही सिंह रूप दरशावे, योगिनी नारी वश में लावे।
सदा रहे उस पर आसीना, दिव्य शक्तियों में लिव लीना।
वही शक्तियां भुजा दिखाईं, कहीं अष्ट कहीं शत भुजाईं।
जिनमें आयुध धरे अनूपा, मारे वृत्तियां क्लिष्ट स्वरूपा।
योगिनी माता कृपा रूपा, जग में प्रकटी शान अनूपा।
पापी जन क्यों दर्शन पावें, योग धर्म न दुष्ट अपनावें।

दो० नारी जन जब योग को, लेंगी तन मन धार।
तैंतिस कोटी देश के, देव बनें नर नार॥ ३०० क

अब हम इससे पूछते, योग संबधी बात।
सब भक्तों के बोधहित, प्रश्न हमारा तात॥ ३०० ख

सुप्त शक्ति जो सब घट माहीं, कैसे योगी उसे जगाहीं।
इस का वर्णन यदि कर पावे, मन हमारे को अति भावे।

आज्ञा योगी ने तब दीनी, दण्डवत शिष्या ने फिर कीनी।
मुख से लागी वह उच्चारण, वाणी जैसे वीणा वादन।
भगवन ! आपने जो फरमाया, मैं जानूं जो गुरु समझाया।
सुप्त शक्ति जो सब घट माहीं, सर्पिनी कहते हैं उस ताहीं।
दिव्य अलौकिक शक्ति जानो, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म मानो।
घन में विद्युत जिमी लसावे, घट में कुण्डली तिमी समावे।

दो० सर्पिनी अथवा कुण्डलिनी, दोनों इसके नाम।
सुप्त आधार पद्म में, सर्प जिमि निज धाम॥ ३०१ क

कुण्डल साढे तीन में, रहती उसी स्थान।
अपने मुख को डालकर, सुषुम्ना में भगवान॥ ३०१ ख

जब तक रहती सुप्त यह, ज्ञान को नर न पाय।
छूट न विषयों से सके, रहत माया भरमाय॥ ३०१ ग

सर्पिनी शक्ति उसी की जागे, योगी गुरु के पग जो लागे।
प्राण सुषुम्ना भीतर धारे, लय संकल्प करे वहीं सारे।
गुरु कृपा से प्राण उठावें, शून्य में कुण्डलिनी चढ़ जावे।
कुण्डल अपने खोल दिखावे, सीधी ऊपर उठ कर जावे।
जैसे जैसे प्राण चढ़ावे, ऊपर वैसें कुण्डली जावे।
षट् चक्रन को भेद दिखावे, प्रवेश सहस्रार में पावे।
सद्गुरु के वहां दर्शन पावे, पूजा कर के लौट दिखावे।
इस विध कुण्डली का उठ जाना, सुप्त शक्ति का जागरण माना।

दो० प्रश्न आपने जो किया, उत्तर मैंने दीन।
मैं तो केवल साधनी, अल्पायु मति हीन॥ ३०२
गुरु कृपा से जो कुछ पाया, निज मुख से मैं वह बतलाया।

प्रश्न और पूछे कोई भाई, यथामति मैं कहूं मन लाई।
प्रभु जी ने सन्तोष जताया, उत्तर उन के था मन भाया।
हरानन्द की इच्छा जानी, प्रश्न करने की उस मन ठानी।
प्रभु जी का संकेत जो पाया, उस ने अपना भाव जताया।
भगिनि हमें यह फिर समझाना, शून्य में कुण्डली का उठ पाना।
कौन मार्ग जहां कुण्डली धावे, कौन ठौर जो शून्य बन पावे।
शून्य में कुण्डली क्यों उठ जावे, ठौर अपना किमि छोड़ दिखावे।

दो० सुन साध्वी उस प्रश्न को, भई ध्यान में लीन।
फिर नेत्रों को खोल कर, बोली वचन प्रवीन॥ ३०३

भाई मेरे मैं समझाऊं, दे दृष्टांत इसे बतलाऊं।
सुषुम्ना नाड़ी को इमि जानो, वायु भरी इक नाली मानो।
सिरा डूबा हो जल में जैसे, कुण्डली सुषुम्ना संग है ऐसे।
जभी वायु को खींच दिखावें, ऊपर जल को चढ़ता पावें।
सुषुम्ना मध्य प्राण उठ पावे, कुण्डली खिंची उर्ध्व को जावे।
मार्ग सुषुम्ना का अपनावे, षट् चक्रन को भेद दिखावे।
सुन कर सभी अचंभा माने, कैसे विशद विवरण बखाने।
ऐसे गुप्त रहस्य जो भारी, समझे स्पष्ट विज्ञ यह नारी।

दो० प्रभु जी ने कुछ और भी, की वार्ता उन संग।
चलने को तत्पर भये, समेट सकल प्रसंग॥ ३०४

जाते प्रभु जी को जब जाना, योगी ने मन में अनुमाना।
अहो भाग्य हैं मेरे भारे, प्रभु ने आश्रम में पग धारे।
ऐसा अवसर न फिर पाऊं, मन के संशय सकल मिटाऊं।
सोच यह उसने वचन उचारा, नाथ मेरा इक संशय भारा।
सदा रहे वह मन के अन्दर, आप निवारें ज्ञान समुन्दर।

योगी सदा ध्यान लगाते, अपना इष्ट प्रेम से ध्याते।
भक्त भी करते प्रभु की पूजा, नित्य कर्म रत काम न दूजा।
ज्ञानी लोग ज्ञान रत रहते, माया से वे मुक्ति चाहते।

दो० कर्म योगी तो कर्म को, देते सदा महत्व।
लोक संग्रह हित कर्म ही, करते छोड़ ममत्व॥ ३०५

अपना मार्ग सभी सराहवें, कदापि दूजा न अपनावें।
योग भक्ति और कर्म ज्ञाना, इनमें उत्तम कौन बखाना।
कौन मार्ग जो नर अपनावे, पाप ताप से जिमि छुट पावे।
करो निवारण संशय नाथ, लगे हमारे मुक्ति हाथ।
संशय प्रभु जी ने सुन पाया, कर गंभीर मुद्रा फरमाया।
मुक्ति जीवन लक्ष्य है ठीक, चलो सदैव उसी की लीक।
मार्ग भिन्न दीखें जो भाई, सभी समझो तुम इक इकाई।
नदी समुद्र में सभी जावें, मोक्ष में मार्ग सब मिल पावें।

दो० सब मार्गन का योग जो, वही कहावे योग।
योग में भेद अभेद है, समझें सज्जन लोग। ३०६

योग वृक्ष तुम ऐसा जानो, शाखा बहु उसकी तुम मानो।
राज हठ और भक्ति ज्ञाना, कर्म योग जिमि कृष्ण बखाना।
ये सब योग के मानो अंगा, साधे सकल न रहे अपंगा।
श्रद्धा सहित जो एक ग्राहे, सकल अंगों को वह अपनाहे।
तुमने प्रश्न जो कीना भाई, दीना यथामती समझाई।
अन्तर के सब संशय सुलझें, प्रभु चरणों में मन जब उलझें।
प्रभु चरणों का दिव्य प्रकाश, सकल भ्रमों का करता नाश।
यह तो अनुभव*-गम तुम जानो, शक न इस में लेश भी आनो।

* अनुभव से प्राप्त होने वाला।

२३. जलभीतर समाधिस्थ योगी

दो० पाकर प्रभु से ज्ञान को, साध भया तब धन्य।
संशय उसके मिट गये, भ्रम न रहा कुछ अन्य ।। ३०७

प्रभु जी को उसने सत्कारा, "रहो यहीं" इमि वचन उचारा।
कहें प्रभु "हम ठहर न पायें, आगे ईश हमें ले जायें"।
"जैसी इच्छा" कह वह पाया, चला साथ व दूर पहुंचाया।
परिभ्रमण में जब रुक पाये, आश्रम योगी के इक आये।
योगी समाधी में दिख पाता, उठ कर वहां से कहीं न जाता।
प्रभु जी उसको ठीक पहचाना, भक्त भी देखें मन अनुमाना।
आगे न फिर चल कर जायें, दृढ़ता पूर्वक डेरे लायें।
गुफा साध की नदी किनारे, ऊपर सबने डेरे डारे।

दो० सुन्दरता उस देश की, देख सभी मन चाव।
प्रभु चरणों में बैठ कर, प्रकट करें निज भाव ।। ३०८ क

कुछ दिन वहाँ जब ठहरे, नदी में आई बाढ़।
गुफा साध की डूबती, देखी जल उस गाढ़ । ३०८ ख

सब के मन भयी चिन्ता भारी, डूब गयी जब गुफा वह सारी।
योगी बच कर निकल न पाया, जल ने उस को वहीं डुबाया।
जल प्रवाह था वेग से बहता, स्थिर न कुछ भी उसमें रहता।
दूर दूर सब नज़र दौड़ावें, योगी का न शव कहीं पावें।
ईश्वर का यह कैसा कोपा, समाधि बैठा योगी लोपा।
प्रभु जी उन की चिन्ता जान, बखानें सब को दे प्रमाण।
"चिन्ता का न कारण मानो, योगी इच्छामृत्यु जानो।
योगी को न बाढ़ बहावे, सद्गुरु उसको स्वयं बचावे।

दो० प्रभु जी के सुन वचन को, भये सभी हैरान।
मन उन का न मान सके, बचे साध के प्रान॥ ३०९

प्रभु जी उनकी शंका जानी, निवृत्त करें यह मन अनुमानी।
हरिहरानन्द पास बुलाया, लावो डुबकी यह समझाया।
जल के भीतर जा कर देखो, समाधि बैठा योगी पेखो।
हरिहरानन्द आज्ञा-कारी, वाणी गुरु की प्राण से प्यारी।
उसने क्षण भी देर न लाई, छलांग नदी में धाम लगाई।
हरिहरानन्द जल में मग्ना, सब जन देखें ध्यान संलग्ना।
हरानन्द भी बाढ़ डुबाना, भक्त जनों ने भय यह माना।
मग्न ध्यान में प्रभु जी देखें, हरानन्द की गति को पेखें।

दो० गुरु की आज्ञा मान कर, शिष्य करे जब साहस।
दिव्य रूप गुरु धार कर, रहें निरन्तर पास। ३१०

मांझ गुफा हरानन्द आया, समाधी बैठा योगी पाया।
दृढ़ था उसका ऐसे आसन, मानो करता जल पर शासन।
श्वास थे उसने इमि चढ़ाये, जल न उसका कुछ कर पाये।
देख हरि यह प्रभु की माया, जल के ऊपर फिर वह आया।
आकर प्रभु को शीश निवाया, जो देखा था सबन सुनाया।
हुई सब को परम हैरानी, सुनें प्रभु की प्रेम से वानी।
प्रभु जी उन को सब समझावें, रहस्य योग के खोल बतावें।
समाधि कैसे जल में लावें, किमि न जल में बह कर जावें।

दो० साधन के प्रताप से, भव से नर तर जाये।
क्यों फिर साधक नीर में, अपने प्राण गंवाये॥ ३११

उतर गया जब नदी का नीर, प्रकट भयी वह गुफा जल तीर।

साधु उठ कर आया उस स्थान, बैठे जहां थे प्रभु निज ध्यान।
आकर उसने शीश झुकाया, "नमो शिवाय" मुख से फरमाया।
प्रभु ने अपनी आंख उघारी, कृपा दृष्टि योगी पर डारी।
साधु ने निज भाग्य सराहया, मैं तपस्या का फल पाया।
कहा मैं कृपा तोरी चीनी, जिस ने जल में रक्षा कीनी।
ध्यान भजन में आप लगावें, घेरे संकट आप बचावें।
सब संशयों को आप मिटावें, ज्ञान की ज्योति भी प्रकटावें।

दो० कृपा आपने कीनी, लिया मुझे अपनाय।
किस विध अस्तुत मैं करूं, दास परम निःसहाय॥ ३१२

कहें नाथ हे योगी प्यारे, ईश्वर के हैं कर्म न्यारे।
पापियों को जो दण्ड है देता, रक्षा भक्तों की कर लेता।
उस के जो हैं आश्रित रहते, तन मन के न दुःख वे वहते।
कांटे उन को फूल सम होवें, संकट पर्वत राई सम जोवें।
शूली शूल सम हो के लागे, प्रभु कृपा में जो नर पागे।
शरण प्रभु की परम हितकारी, शरण प्रभु की सब भय हारी।
शरण प्रभु की जन्म संवारे, शरण प्रभु की कुल को तारे।
शरण प्रभु की योग सिखावे, प्रभु कृपा से सब कुछ पावे।

दो० सुनकर प्रभु की वार्ता,, योगी भया कृतज्ञ।
उसने जाना तत्व को, हैं ये प्रभु सर्वज्ञ॥ ३१३ क

आये हैं ये दास हित, करने मुझे सनाथ।
अथवा क्यों कर आयेंगे, चल कर ऐसे पाश॥ ३१३ ख

चरण स्पर्श उस प्रभु के कीने, हृदय में फिर धर वे लीने।
सीधा गुफा में चल कर आया, प्रभु सूरत में मन को लाया।

उधर नाथ ने जब यह जाना, कार्य भया है जिमि अनुमाना।
भक्तों को फिर पास बुलाया, मुख से उन को यह फरमाया।
साधन भूमि है यह प्यारी, करो साधना बनो सुखारी।
हम सदैव हैं संग तुम्हारे, आसन भक्त के हृदय धारे।
योग साधना में लग जाओ, गुफा में जैसे योगी पाओ।
जब स्मरण करे कोई भाई, हों हम आकर स्वयं सहायी।

दो० आये साधन में विघ्न, स्मरण करो तत्काल।
अंतराय मिट जायेंगे, रवि उदय तम जाल॥ ३१४

सुन कर भक्त विदा हो पाये, वन में आसन सबन जमाये।
हरिहरानन्द संग न त्यागा, कृष्णानन्द भी संग हो लागा।
मुखराम जो प्रभु का प्यारा, हुआ न चरणों से वह न्यारा।
सब मिल प्रभु की सेव कमावें, जन्म अपने को सफल बनावें।
जब प्रभु भू पर तन को धारें, देव भी सेवा को सत्कारें।
शेष था लक्ष्मण बन कर आया, राम सेवक जो परम कहाया।
कृष्ण रूप में प्रभु जब आये, गोपियां वेद ऋचायें लाये।
रामलाल के रूप पधारे, सेवा में थे मुनिजन भारे।

दो० कृष्णा नन्द मुखराम जो, भये योग प्रवीन।
हरानन्द सा सिद्ध भी, सेवा में लव लीन॥ ३१५

जब कुछ आगे प्रभु चल पाये, अति सुंदर इक थल पर आये।
नर्बदा तट पर इक था कुंजा, मनोहर वृक्षों का जो पुंजा।
कलरव खग गन का मन हारी, मनु गावे प्रभु महिमा भारी।
अथवा स्वागत प्रभु का करता, फुदक फुदक अभिनन्दन करता।
देख प्रभु जी उन मन चाव, यहाँ रुकें यह उपजा भाव।
संकेत हरानन्द पाछे पाया, प्रभु आसन तहं प्रथम लगाया।

गुरु सेवा की ऐसी नीति, केवल योग बताये रीती।
मन जब प्रभु अर्पण हो पाये, सेवा बिना न कुछ भी भाये।

२४. दो शरीरों की रचना और एक शरीर का नासिक नगर में त्याग।

दो० गुरु सेवा से उपजें, सद्गुण निर्मल भाव।
सद्गुरु सेवा का रहे, योगी जन को चाव॥ ३१६

कुछ दिवस प्रभु वहाँ बिताये, सेवा में मन हरी लगाये।
कृष्णानन्द भक्ति में रहता, वन के कष्ट खुशी से सहता।
मुखराम जो तार्किक विद्वान, पाता प्रभु से नूतन् ज्ञान।
इक दिन प्रभु के मन में आया, मन्त्र योग में उन्हें लगाया।
अनेकों मन्त्र सिद्ध कराये, वैदिक लौकिक सब बतलाये।
मन्त्र शक्ति का ज्ञान कराया, विनियोग भी उन्हें बताया।
भक्तों को प्रभु शक्ति देवें, जीवन नौका सुख से खेवें।
दया प्रभु की कथी ना जाये, शरण पड़ों की करें सहाये।

दो० प्रभु कृपा का बोध कर, होवे भक्त सुजान।
सकल विकल तब त्याग कर, चरण गहे प्रभु आन॥ ३१७

भक्त मन्त्र साधन में रहते, नाथ भजन में समय बिताते।
दिव्य लीला किसी लख न पाई, जैसे वहां पर प्रभु प्रकटाई।
गूढ़ से गूढ़ चरित्र महान, जाने वही जिसे देवें ज्ञान।
नाथ ने धारा रूप अनूप, प्रकटाया नासिक दूज स्वरूप।
नर्बदा तीर समाधि लगाते, नासिक में उपदेश सुनाते।
हरिहरानन्द सेव कमावे, गूढ़ रहस्य को वह न पावे।

नासिक में बहु भक्त तराये, योग समाधि में लगवाये।
होने लगा सब जगह बखान, आये हैं योगी एक महान।

दो० प्रभु विराजे नगर में, जन उमड़ कर आयें।
दिव्य कृपा का लाभ कर, तन मन से हर्षायें॥ ३१८

जो जिस कामना से चलि आता, प्रभु कृपा से वही कुछ पाता।
निर्धन प्राणी धन को पावे, रोगी रोग मुक्त हो जावे।
संतती हीन संतती पावे, प्रभु चरणों पर बलि बलि जावे।
विद्या कामी विद्या पाता, पाय सफलता मन हर्षाता।
संकट डूबा जो नर आता, आशीर्वाद प्रभु से पाता।
संकट उसके टलते ऐसे, सूर्य उदय घन छिनते जैसे।
कामना बिन दर्शन हित आता, परम शांति को वह नर पाता।
प्रभु में देखे इष्ट का रूप, योग ध्यान वह पाये अनूप।

दो० प्रभु के दोनों रूप जो, प्रकट भये उस देश।
न भेद किसी ने समझा, धन्य धन्य सर्वेश॥ ३१९

हरिहरानन्द सेवा करता, मन में बहुत अचंभा भरता।
यहां नाथ ठहरे बहु काला, इस जगह का भाग्य उजाला।
प्रकट प्रभु से कुछ न कहता, भीतर ही वह विस्मय वहता।
उधर दुःखद एक घटना भई, फैल समस्त नगर जो गई।
समाधि में प्रभु त्यागे प्राणा, ऐसा मिले न कहीं प्रमाणा।
जनता दर्शन हित थी आती, चरण स्पर्श कर वापिस जाती।
भक्त शोक में रहें डुबानें, प्रभु चरणों को जो सन्मानें।
जल समाध उन प्रभु को दीनी, मूर्ति प्रभु की स्थापित कीनी।

दो० उस नगरी में नाथ का, मन्दिर बना अनूप।
दर्शन हित जन आवते, क्या परजा क्या भूप॥ ३२०

२५. पुष्कर राज में पधारना ।

उधर प्रभु जी ने फरमाया, चलने का आदेश सुनाया।
नर्बदा यात्रा पूरी कीनी, योग की शिक्षा बहु जन लीनी।
उत्तर को अब लौट के जावें, महाप्रभु को जहां वे पावें।
प्रभु उत्तर की ओर सिधारे, मार्ग में जन बहुत से तारे।
पुष्कर राज फिर आ पधारे, ब्रह्मा जी थें वहां सत्कारे।
तीर्थों में है पुष्कर प्रधान, महिमा उस की कही महान।
सतयुग से है चलता आया, पुष्कर राज जो नाम धराया।
शिष्यन सहित तहं प्रभु विराजे, उड़गन मध्य जिमि चन्द्र साजे।

दो० प्रभु विराजे धाम उस, दर्शन हित नर जांय।
ब्रह्मचारी सन्यासी, वैरागी भी आंय॥ ३२१ क

साधु वहां पर बहुत थे, भिन्न भिन्न उनका वेष।
वेषों की प्रधानता, ज्ञान का था न लेश॥ ३२१ ख

आपस में वे झगड़ा करते, वेष भेद से गुट थे बनते।
अपना सब बड़प्पन चाहते, नीचा दूजे को दिखलाते।
अकड़ अकड़ कर बातें करते, माया मोह के वश हो चलते।
देख प्रभु को होत ग्लानी, बहुत करें ये धर्म की हानी।
साधू चाहिये साधन धनी, माया से जो रहे अनमनी।
परमारथ पर आपा घाले, परोपकार के मग पर चाले।
हानि लाभ में रहे समाना, मान अपमान में वे न काना।
योग भक्ति व तप कमावे, ऐसा पुरुष ही साधु कहावे।

दो० जो परस्पर झगड़ते, और रहें परेशान।
ऐसे साधु नाम के, करें धर्म की हान॥ ३२२ क

परस्पर कभी न झगड़ते, और रहें जो शांत।
ऐसे साधू जगत में, गहें धर्म की शान॥ ३२२ ख

जग का दुःख जो निज पर लेवे, कन कन के जो शूल संजोवे।
सुंदर वाणी को जो बोले, अमृत बरसे मुख जब खोले।
दृष्टि करुणा को बरसावे, जीव जन्तु सुख जिस से पावे।
स्वारथ जिस के निकट न आवे, ऐसा पुरुष ही साधु कहावे।
ईश्वर पर जो निष्ठा राखे, धन जन बल पर लेश न माखे।
विषय भोग से रहे उदासा, जैसे जल में पंकज वासा।
स्वाध्याय में समय लगावें, अथवा ध्यान समाधि कमावें।
यम नियमों को पाल दिखावे, ऐसा पुरुष ही साधु कहावे।

दो० जो साधू का वेष धर, राखे माया प्यार।
जग में वह भरमात है, जीवन करे खवार॥ ३२३

प्रभु जी साधुन को समझाया, मोह माया का अन्त बताया।
योग धर्म का गुण जतलाया, साधन का स्वरूप दिखाया।
अभिमानी साधु न कुछ मानें, मोह के वश न प्रभु पहचानें।
ब्रह्मा भी न मूरख तारे, ईश्वर सत्गुरु उनसे हारे।
देख प्रभु जी मौन अपनावें, जैसा कर्म वैसा फल पावें।
परस्पर कलह करें दिन राती, बक बकी की नौबत आती।
मुक्कममुक्का से न टलते, दण्डादण्डी भी वे करते।
इक दिन बढ़ गई हद से बात, लठ लठों से करें आघात।

दो० ब्रह्मानन्द इक महात्मा, प्रभु से राखे प्यार।
उस पर भी प्रहार हुआ, प्रभु का मन दुखयार॥ ३२४

जहां प्रभु जी आसन लाया, उस जा एक उद्दण्डी आया।

हाथ प्रभु पर लगा उठाने, पाप कर्म था घोर कमाने।
हरिहरानन्द बैठा छत पर, देख रहा था होकर तत्पर।
तन में उसके आग लगी जब, वहीं तुरन्त छलांग लगी तब।
दण्डी की उस लाठी छीनी, दुर्गत उस से उसकी कीनी।
भागा वह निज साथी लाया, बहुत जनों आ घेरा पाया।
मारो पकड़ो सभी पुकारें, अपशब्द भी साथ उचारें।
हरानन्द उपजा मन क्रोधा, मन अपने में प्रभु को सोधा।

दो० इक पग पीछे हटकर, लाठी इमी घुमाई।
डर से ही चंपत भई, साधुन की समुदाई॥ ३२५ क

ब्रह्मानन्द यह देखकर, विस्मित भया महान।
प्रभु समक्ष करने लगा, हरानन्द गुण गान॥ ३२५ ख

प्रभु जी ने उस बात को, टाला कह कर मीत।
यथा समय कर्तव्य के, करने की यह रीत॥ ३२५ ग

पुष्कर से फिर चल दिये, जग के सिरजन हार।
दिशा पूर्व की राह ली, आये देश बिहार॥ ३२५ घ

प्रभु से पूरव कीरती, पहुंच गई उस देश।
भानु उदय पीछे भये, उषा हो देश विदेश॥ ३२५ ङ

२६. पटना नगर में श्याम नारायण वकील को शरण में लेना।

बिहार देश की नगरी पटना, आदि काल से जिस की रचना।
सम्राट हुये जहां शक्तिधारी, उन की राजधानी थी न्यारी।

है जो तीर्थ बड़ा ही पावन, संगम नदियों का मन भावन।
दशमेश गुरु का जन्म स्थान, पटना साहब हुआ अभिधान।
प्रभु जी चरण कमल तहं धारे, जन गण नयन थे उन पर वारे।
साधन हित बहु लोग थे आते, प्रभु से ध्यान समाधि पाते।
योग साधना प्रभु करवायें, तन के रोग भी सकल मिटायें।
नेति धौति आसन भारी, प्रभु से सीखती जनता सारी।

दो० जनता नित्य थी बैठती, प्रभु चरणों में आय।
योग साधना सीखती, सद्गुरु कृपा पाय॥ ३२६

इक दिन इक वकील चलि आया, दर्शन पाय अति हर्षाया।
श्याम नारायण उस का नाम, बोला कर प्रभु को प्रणाम।
नाथ अबोध हूं मैं इक बालक, गुण न कोई जग के पालक।
कृपा आप की सब जन पावें, दीन जान मुझ को अपनावें।
योग मार्ग में मैं लग जाऊं, मानव तन को सफल बनाऊं।
मोह ममता में आयु बीती, त्यागूं जग अब मन प्रतीती।
सद्गुरु चरण मिलें जब मुझ को, भजूं प्रभु और त्यागूं सब को।
सद्गुरु चरण पाये बिन नाथ, जन्म असंख्य गंवाये अनाथ।

दो० नाथ कृपा अब कीजिये, आया तेरे द्वार।
अनाथ मुझ को जानिये, नमो हो बारं बार॥ ३२७

इस विध कह कर शीश झुकाया, आंसू धारा को बरसाया।
प्यार प्रभु ने उस को कीना, मस्तक वरद हस्त धर दीना।
उस को दिव्य दर्शन हो पाये, तन की सुधी तुरंत भुलाये।
उस की दशा देख कर सारी, सब में फैली चरचा भारी।
वह तो रहा वकील इक भारी, माने जिस को जनता सारी।
श्याम नारायण अब काम त्यागा, प्रभु चरणों का बन अनुरागा।

योग की दीक्षा उस अपनाई, ध्यान समाधि प्रभु से पाई।
कचहरी में उस जाना त्यागा, प्रभु सेवा में अहर्निश लागा।

२७. निर्दोषी ब्राह्मण बालक को मृत्युदण्ड से रक्षा करवानी।

दो० इक दिन की यह वार्ता, आया ब्राह्मण दीन।
प्रभु चरणों का स्पर्श कर, विनती उसने कीन॥ ३२८ क

नाथ मेरा इक सुत है, सदाचारी निर्दोष।
उस पर मेरे नाथ जी, झूठा लगा है दोष॥ ३२८ ख

मुझे सहारा सत्य का, या सन्तों की टेक।
शरणी आया आपकी, पाये मैं कष्ट अनेक॥ ३२८ ग

प्रभु जी सुनी दीन की वाणी, मुख से बोले परम कल्याणी।
स्पष्ट कहो तुम अपनी बात, जान पायें हम तव दुःख तात।
बोलो हम क्या करें सहाय, जिससे सुत तव दुःख ना पाय।
सत्य की सदा विजय हो भाई, संशय इस में है न राई।
संत वही जो सत को ग्राहे, वैरी जाये जगत हो चाहे।
बोला जन वह दीना नाथ, झूठ कहूं न किसी के साथ।
बाल मेरा है वह निर्दोष, लगा हत्या का झूठा दोष।
कल तारीख पड़ी है स्वामी, तुम सब जानो अन्तर्यामी।

दो० कोई सुने न बात को, विनती करूं हज़ार।
नारी नर सब कहत हैं, तेरा सुत हत्यार॥ ३२९ क

माता उसकी आह भरे, हे मेरे भगवान।
कैसा तेरा न्याय है, दे बेदोषी प्राण॥ ३२९ ख

मैं बेचारा क्या करूं, किस विध उसे बचाऊं।
है उपाय इक ही बचा, जो उस को कर पाऊं॥ ३२९ ग

सुन यह प्रभु दया अपनाई, बोले वह भी कह दो भाई।
ऐसी कौन सी है वह बात, कहने लगा हे जग के त्रात।
श्याम नारायण जो मिलें वकील, बालक छूटे लागे बिन ढील।
ये सेवक हैं तोरे नाथ, जीवन डोरी इन के हाथ।
त्याग सारा ये आये साज, आज्ञा पाकर करें यह काज।
जैसे भी अब बनो सहायी, प्रभु जी मैं परम निःसहायी।
दया दयानिधि मन में लाई, फिर वकील को बात जताई।
सत्य जो होवे इस की बात, बनो सहायी तो तुम तात।

दो० पक्ष सत्य का जो गहे, वीर कहावे सोई।
सत्य मूल है धर्म का, इसे न भूले कोई॥ ३३०

श्याम नारायण मन माहिं विचारा, प्रभु जो ने जब किया इशारा।
शिष्य वही गुण गाहक भारा, गुरु इच्छा जो जानन हारा।
ब्राह्मण को तब वचन उचारा, कल मैं लड़ूंगा केस तुम्हारा।
सद्गुरु कृपा जो हो जावे, तेरा पूत त्राण को पावे।
श्याम नारायण की यह वाणी, शक्ति सद्गुरु से जो सानी।
ब्राह्मण मन उस दिया सहारा, बुझते दीपक घृत की धारा।
ज्योति उस के मुख पर आई, बांध अंजल प्रभु चरण टिकाई।
रुद्ध कण्ठ से गिरा उचारें, सद्गुरु तुम हो दीन सहारे।

दो० देख धर्म का नाश तुम, और सत्य का लोप।
भू पर स्वयं ही उतरो, दुष्टों पर कर कोप॥ ३३१ क

युग युग में तुम बात यह, स्वयं निभावो नाथ।

सत्य अहिंसा त्राण को, पावें तेरे हाथ ।। ३३१ ख

करके प्रभु से वेनती, चला गया विप्रेश ।
धरातल ऊपर उसके, लगते कदम न लेश ।। ३३१ ग

दूसर दिवस योगेश जी, ले वकील को साथ ।
जा पहुंचे थे कोर्ट में; करने विप्र सनाथ ।। ३३१ घ

जज जो बैठा मंच पर, रूप देख यह खास ।
आसन छोड़ खड़ा हुआ, दीना आसन पास ।। ३३१ ङ

जज समीप तब प्रभु विराजे, देव सभा जिमि वृहस्पति साजे ।
इतने में इक पुरोहित आया, अपने कर में पाती लाया ।
देने को जब हाथ बढ़ाया, प्रभु जी उस को परे हटाया ।
पाती जज ने उससे लीनी, बात प्रभु से फिर कह दीनी ।
स्वामी कैसी तेरी माया, पुरोहित को जो दूर हटाया ।
समदर्शी तो योगी भारे, प्राणी उन को प्रिय हों सारे ।
वैरी योगी का ना होवे, योगी वैर न को से गोवे ।
मित्र दृष्टि से योगी देखे, राग द्वेष न लावे लेखे ।

दो० संशय मेरा दूर हो, किरपा कीजो नाथ ।
केस का निर्णय तब करूं, बैठ तुम्हारे साथ ।। ३३२

उत्तर प्रभु ने जब न दीना, जज ने बार बार हठ कीना ।
स्पष्ट नाथ तब बात उचारी, दोष पुरोहित का जो भारी ।
महादान था उस ने लीना, कुष्ट रोग में हुआ विलीना ।
साधन से कुछ उसे निवारा, निवृत्त हुआ पर वह न सारा ।
स्पर्श कुष्टी का रोग लगावे, कुष्टी से नर बच के जावे ।
मेरी बात जो सत्य न मानो, पूछ पुरोहित से तब जानो ।

मान पुरोहित ने सब लीना, हुआ अचम्भे में जज लीना।
प्रभु चरणों में श्रद्धा जागी, योग साधना की लिव लागी।

दो० प्रभु ने देखा जज को, हुआ प्रेम में लीन।
कर सचेत कहने लगें, निर्णय दो प्रवीण॥ ३३३

प्रभु की वाणी जज सुन पायी, होश संभाली फाइल मंगायी।
कठहरे में था बालक ठहरा, कांस्टेबल दे उस पर पहरा।
हाथ जोड़ कर ब्राह्मण बैठा, चिन्ता में वह पूरण पैठा।
ब्राह्मणी आंसू धार बहाती, पल भर भी वह धीर न पाती।
जो भी देख था उस को पाता, आह भरे और था बिखलाता।
ब्राह्मण का इकलौता बेटा, मौत के मुंह में था वह लेटा।
चपरासी ने पुकार लगाई, धुका धुकी सब के मन छाई।
श्याम नारायण हुआ तब पेश, लड़ने को बालक का केस।

दो० बालक का जो दोष था, पढ़ा गया उस काल।
हत्या के अपराध का, वर्णित जिसमें हाल॥ ३३४ क

बालक था हत्यारा, रंगे खून में हाथ।
बिल्कुल केस स्पष्ट था, पूरण युक्ति साथ॥ ३३४ ख

कोर्ट के आवार्ड में, क्यों लागे अब देर।
खून का बदला खून है, जग में नहीं अंधेर॥ ३३४ ग

जज निर्णय लिखवाने लागा, उस का रूप रोष से पागा।
पिता देख कर थर थर कांपा, माता को बेसुधि ने व्यापा।
कोर्ट रूम में मूर्छा छायी, रीडर की भी रुकी कलायी।
श्याम वकील सोच में डूबा, मन का मिटा सकल मनसूबा।
हार कर उस ने प्रभु ध्याया, विलक्षण नुकता मन में आया।

"मिलार्ड" ! उस ने तुरन्त पुकारा, "है यह बालक नहीं हत्यारा।
झूठा दोष है इस पर लागा, मारने वाला तो है भागा।
झूठा केस बना है लार्ड, मुक्ति का हो इसे आवार्ड।

दो० बालक घटना स्थान पर, था नहीं उस काल।
ये देखें प्रमाण सब, विदित होवे जो हाल।।" ३३५

विरोधी पक्ष भी भया सतर्क, बहस में राखा लेश न फर्क।
मन पिता का थर थर कांपे, माता पड़ी वेसुधि में व्यापे।
श्याम वकील के तर्क के आगे, विपक्ष की चलती कुछ न लागे।
उस की वाणी में शक्ति भारी, अर्जुन के जिमि शर बलकारी।
रथ अर्जुन का कृष्ण के हाथ, प्रभु रामलाल थे उस के साथ।
विपक्ष कहे बालक हत्यारा, इस का दोष सरासर सारा।
श्याम नारायण देवें दलील, निर्दोषी को है लीना कील।
निरपराधी पर दोष लगाना, क्या न्याय का यही ठिकाना।

दो० जो कहें बाल हत्यारा, इसका नहीं सबूत।
भ्रांति के फिर लाभ को, पावे ब्राह्मण पूत।। ३३६

जज के मन में भी तब आयी, प्रभु प्रेरणा से सद्बुद्धि पायी।
बालक को निर्दोषी जाना, हत्यारे को भागा माना।
निर्णय अपना स्पष्ट सुनाया, बालक को फिर मुक्त कराया।
तुरन्त बन्दी की कड़ी खुलाई, आज्ञा जाने की सुनवाई।
पिता हर्ष प्रफुल्लित आया, बालक को उस गले लगाया।
सुधि माता को लौट के आयी, सुत को मुक्त देख हर्षायी।
धन्यवाद उस प्रभु का कीना, जीवन दान जिस सुत को दीना।
बिन प्रभु जग में कौन सहायी, जीव जन्तु सबी को सुखदायी।

दो० प्रभु चरणों का स्पर्श कर, आज्ञा उनकी लेय।

निज घर की ओर सिधारा, कुटुंब सहित भूदेव ॥ ३३७

२८. हरिहरराय जज को शरण प्रदान ।

प्रभु जी चलने को उठ पाये, कोर्ट रूम से बाहर आये ।
श्याम नारायण संग हो लागा, जज ने भी फिर आसन त्यागा ।
श्याम वकील से बातें करता, पीछे पीछे प्रभु के चलता ।
मन में उस के यही विचार, कैसा होता अत्याचार ।
श्याम नारायण यदि न आता, निर्दोषी बालक मारा जाता ।
ब्राह्मणघाती मैं फिर होता, नरक कूप में खाता गोता ।
प्रभु सहित वकील जभी आया, नरक से इसने मुझे बचाया ।
मैंने घोर कर्म कर पाये, जन अनेक हैं फांसी लाये ।

दो० मुझ हत्यारे जीव की, सद्गति कैसे होय ।
सद्गुरु चरणी मैं पड़ूं, पार उतारे जोय ॥ ३३८ क

ऐसा मन में धार कर, चला प्रभु के संग ।
प्रभु किरपा से जज पर, चढ़ा अनोखा रंग ॥ ३३८ ख
भक्ति के उस रंग में, लख न मार्ग पाया ।
चलते चलते वह फिर, प्रभु आश्रम में आया ॥ ३३८ ग

हरि हर राय था जज का नाम, नाम बखान निज किया प्रणाम ।
बिनती उस तब प्रभु से कीनी, मन की विथा सकल कह दीनी ।
नाथ न मुझ सा पापी कोई, दण्डित कई किये निर्दोई ।
दुर्गति का हूं मैं अधिकारी, कैसे त्राण मिले बनवारी ।
शरण पड़े की राखो लाज, करो कृपा तुम मुझ पर आज ।
मैं हूं पतितों में अति नीच, पतित उद्धारक तुम जग बीच ।

दुराचारी भी नर जो होय, तरता शरण में आकर सोय।
मुझे भी तारो हे घनश्याम, कोटि कोटि मैं करूं प्रणाम।

दो० पढ़ राखा है नाथ जी, मैंने गीता मांहि।
नाश तुम्हारे भक्त का, होता है ना कांहि॥ ३३९ क

मैं भी तेरी शरण में, आ पड़ा अब नाथ।
अपना सेवक जान कर, धारो करुणा हाथ॥ ३३९ ख

विनय वचन यह बोल कर, गिरा वह दण्ड समान।
प्रभु जी ने यह देख कर, दिया योग का दान॥ ३३९ ग

इस विध जज के क्लेश निवारे, भक्त अनेकों और भी तारे।
महिमा प्रभु की जग में छायी, तरने आये लोग लोगायी।
दया दृष्टि जिस पर हो पाती, भव व्याधि उस की मिट जाती।
भटक भटक जो जन थे हारे, जूंही आते प्रभु के द्वारे।
परम शांति को वे थे पाते, आते दुःखी सुखी हो जाते।
प्रभु जिसे अधिकारी पाते, स्वयं ही उस को पास बुलाते।
कृपा दृष्टि उस पर कर देते, भव के रोग सकल हर लेते।
ऐसे सद्गुरु मिलें हैं तुझ को, संशय त्याग मन भज ले इन को।

२९. तपस्वी हरनामदास को योग समाधि प्रदान करना तथा योग का रहस्यमय ज्ञान देना।

दो० इक दिन की यह वारता, प्रभु वकील के साथ।
गाड़ी में थे जा रहे, करते नगर सनाथ॥ ३४० क

देखा एक फकीर को, राज पुरुष थे साथ।

कड़ियाँ उसके हाथ में, घाव भरा था गात्र* ॥ ३४० ख

श्याम वकील को प्रभु फरमावें, इस व्यक्ति की सुध को लावें।
क्यों कर इस को बांध ले जाते, साधु की दुरगत कर पाते।
श्याम वकील ने प्रश्न जा कीना, राज पुरुष ने उत्तर दीना।
पागल है यह साधु कोई, पाथर मारे देखे जोई।
इस ने दुःख बहुत था दीना, कई जनों को घायल कीना।
जो भी मार्ग से लंघ जाता, पत्थर मार था उसे भगाता।
राजाज्ञा से बांध लिया जब, भय जनता का दूर हुआ तब।
प्रश्न इस से कर कोई पावे, चूं चूं कर के मौन अपनावे।

दो० इसको तो अब बांध कर; रखने का आदेश।
जनता का भय दूर हो, रहे न दुःख का लेश ॥ ३४१ क

सुन यह बात वकील ने, मान सभी ली सत्य।
आकर प्रभु के पास तब, वर्णन कीना तथ्य ॥ ३४१ ख

परन्तु तथ्य कुछ और था, जानें प्रभु सुजान।
सत्य सनातन धर्म तो, पावे प्रभु से त्रान ॥ ३४१ ग

प्रभु ने साधु लिया पहचान; हरनाम दास उस का अभिधान।
था वृन्दावन में देखा सो, पंचधूनी ताप रहा था जो।
ज्येष्ठाषाढ़ पंचाग्नि तपता, पोष माघ हिम जल में बसता।
देह उस की रोमांच कारी; उस की घोर तपस्या भारी।
तप तप कर उस ने निज काया; नस नाड़ी का खून सुखाया।
इक टंग सूजी दूजी सूखी, वर्षों तक जो रही उल्लूखी।
सूखी टांग थी मुर्दा जैसी; दूजी मोटी हाथी जैसी।

*अर्थात शरीर।

लंगड़ लंगड़ कर वह था चलता, बंधा राज पुरुषों से खलता।

दो० प्रभु दया को धार कर, आज्ञा कह सुनाई।
श्याम भइया तुम जाय कर, लेवो साधु छुड़ाई॥ ३४२

श्याम वकील साधु ढिंग आया, दे जमानत मुक्त कर लाया।
प्रभु जी साधु को संग लावें, निज आश्रम में उसे ठहरावें।
साध से पूछें उस का हाल, उस ने मौन था राखा धार।
स्नानादि अब उसे कराया, नूतन वस्त्र भी पहराया।
घावों पर थी औषध लाई, सुख भया रहा दुःख न राई।
खान पान उस को करवाया, साध था मन में अति हर्षाया।
फिर भी उस ने मौन न खोला, मन में क्या था प्रकट न बोला।
प्रभु तो अन्तर्यामी नाथ, घट घट वासी सब के साथ।

दो० प्रभु न त्यागें धीर को, साध अनुग्रह योग।
बहुत उसे उपदेशते, बतावें है क्या योग॥ ३४३

तपस्वी से है योगी महान, अधिक ज्ञानी से किया बखान।
कर्मी समता कर ना पावे, योगी उच्च पदवी अपनावे।
ऐसे रस को योगी ग्रावे, वर्णन में जो कभी न आवे।
ईश्वर पुष्प योगी मन भौरा, भक्ति रस संचे हर ठौरा।
कर्म योगी प्रभु अर्पण करता, ममता मन में लेश न धरता।
मन योगी का प्रभु के पास, बुद्धि जगत से रहे उदास।
अनन्य योग से जो प्रभु ध्यावे, मृत्यु सागर से तर जावे।
योग युक्त हो प्राणी जीवे, कर्म कुशलता को इमि लेवे।

दो० योगी निश्चय छोड़ता, विषयों का अनुराग।
पाप पुण्य संसार के, सबका करता त्याग॥ ३४४ क

विषयों के संसर्ग का, होता है जब हान।
अक्षय सुख को भोगता, पाकर ब्रह्म का ज्ञान॥ ३४४ ख

एक वास योगी अपनावे, आशा तृष्णा मन ना लावे।
आसन शुद्ध देश में लावे, मन एकाग्र वहां कर पावे।
मन इन्द्रियों की क्रिया रोके, आत्म अशुद्धि को इमि सोके।
तन सिर ग्रीवा सम कर पावे, नासिकाग्र पर दृष्टि जमावे।
शांत मन से प्रभु को ध्यावे, कुछ भी भय ना भीतर लावे।
ब्रह्मचर्य का व्रत अपनावे, प्रभु के आश्रित काल बितावे।
मन को संयम में वह राखे, करे योग जिमि सद्गुरु भाखे।
मोक्ष का मेवा वह नर चाखे, साधन योग में श्रद्धा राखे।

दो० योग धर्म अपनाय कर, रहता साधन लीन।
मोक्ष के पद को पाता, भक्तन में प्रवीन॥ ३४५

खाये बहुत न योगी होवे, भूखा रहे न योगी होवे।
बहुत सोये न योगी होवे, जाग्रन करे न योगी होवे।
उचित रूप कर्म कर पावे, खाना सोना युक्त अपनावे।
व्यर्थ कष्ट न तन को देवे, मन की शुद्धि पर बल देवे।
वृत्ति चित्त की इमि ठहरावे, दीप शिखा जहं वात न आवे।
आतम दर्शन को कर पावे, तुष्टी मन के भीतर लावे।
ऐसे सुख को तहं नर पावे, परम आनन्द वहीं लखावे।
उस से बढ़ कर लाभ न जाने, निश्चल रहे न मन विचलाने।

दो० विकट कष्ट भी पायकर, विचलित नर न होय।
ऐसे योग अनूप को, गुरुमुख जाने कोय॥ ३४६

योग भ्रष्ट भी नर यदि होय, उत्तम गति को पावे सोय।
पुण्य कृत्तियों के लोक में जाता, बहुत युगों तक वहां बस पाता।

जग में जब फिर देह धरावे, राज ऋषियों के कुल में आवे।
योग साधन को कर के पूरण, अन्तर शुद्धि कर संपूरण।
अनेक जन्म की साध स्वरूपा, मुक्ति पावे परम अनूपा।
योगी का चित्त कहीं न जावे, ऐसा साधन वह कर पावे।
प्रभु चिन्तन में चित्त लगावे, दिव्य पुरुष को योगी पावे।
जीवन उसका प्रभु के अर्पण, सकल कर्म हों प्रभु समर्पण।

दो० योग बुद्धि को पायकर, प्रभु में चित्त लगाय।
परम गति के लाभ में, सद्गुरु हों सहाय॥ ३४७ क

नव द्वारों को बंद कर, सुषुम्ना में चित्त रोक।
दशम द्वार में प्राण को, धार त्यागे शोक॥ ३४७ ख

ओमकार जो नाम अनूपा, सर्वव्यापक ब्रह्म स्वरूपा।
योगी उस में होता लीन, बहुर न धारे देह नवीन।
योगी की गति कथी न जाये, सो जाने जिसे गुरु लखाये।
वेद पाठ का पुण्य जो होवे, यज्ञ तपस्या से या गोवे।
दान शील जिस फल को पावे, योगी सब को तर के जावे।
कहें प्रभु हे साध प्यारे, रहस्य योग के बड़े न्यारे।
इस विद्या का पार न पावे, महिमा इस की कथी न जावे।
थोड़ा भी जो जन अपनावे, भव के भय से त्राण वह पावे।

दो० प्रभु के सुन उपदेश को, साध भया कृतज्ञ।
मौन त्याग वह बोला, नाथ मैं हूं अल्पज्ञ॥ ३४८

जैसा योग बताया तुम ने, वैसा सुना कभी न हम ने।
मुझ को शरणी आया जानो, अपना सेवक मुझे पहचानो।
शिष्य जान मुझे शिक्षा दीजो, जो सेवा सो मुझ से लीजो।
मैं दुःखी तव शरणी आऊं, दान योग का मैं भी पाऊं।

किस विध योग को लूं मैं धार, भव से निज को लूं नीकार।
आयु भर मैं तप जो कीना, फल अब उस का है पा लीना।
साध तपस्या की मैं जानूं, पूरण सद्गुरु लाभ को मानूं।
आप नाथ हो प्रभु स्वरूपा, सद्गुरु मेरे परम अनूपा।

दो० सद्गुरु को अब पायकर, लगूं योग में नाथ।
और धर्म सब त्याग कर, गहूं तुम्हारा हाथ॥ ३४६ क

जन्म जन्म के पाप जो, काटो मेरे नाथ।
इस जीवन की सौंप दूं, डोर तुम्हारे हाथ॥ ३४६ ख

प्रभु ने उस की सुन कर वाणी, बोले प्यारे साध सन्मानी।
सेवा की हमें चाह न भाई, साधन करो जो है सुखदाई।
साधन से नर सुख को पाता, साधन से सब व्याध मिटाता।
साधन से तन करता शुद्ध, साधन से मन होता शुद्ध।
साधन से सब पाप मिटाता, साधन से त्रिताप मिटाता।
साधन से इह लोक सुधारे, साधन से परलोक सुधारे।
साधन से निज कुल को तारे, साधन से सब पितर उबारे।
साधन से जन आतम चीने, साधन से ब्रह्म दर्शन कीने।

दो० पूरण निश्चय धार कर, साधन में हो लीन।
साधू नाम को सार्थक, करो साध प्रवीन॥ ३५० क

प्रभु लगाया साध को, साधन में तत्काल।
अन्तर उसका साफ था, क्या बतावें हाल॥ ३५० ख

उस का हाल कथा ना जावे, घंटों बैठा ध्यान लगावे।
रहे आनन्द में वह विभोर, बीते रात व बीते भोर।
जब कभी वह था उठ पाता, प्रभु चरणी आ शीश झुकाता।

आशीर्वाद नाथ से पाता, मस्तक पर वह पग रज लाता।
प्रभु को अपना ध्यान बतावे, दिव्य लोक के अनुभव गावे।
कहे प्रभु से नाथ प्यारे, देव लोक में सुख हैं भारे।
शोभा उस की कथी न जावे, कोटी सूरज तेज सुहावे।
मधुर गीत ऐसे सुन पाता, गाने वाला नज़र न आता।

दो० दिव्य गीत की तान में, मन मेरा हो लीन।
दैहिक सुध को भूलता, मैं दीनन से दीन॥ ३५१

नाथ लोक जो आप दिखाते, एक से एक हैं सुंदर भाते।
सब में न्यारी न्यारी रचना, इस वाणी से हो किमि कथना।
आप निरन्तर संग हो रहते, देव शीश हैं तुझे झुकाते।
ब्रह्म आप धारी नर काया, लोक लोकान्तर तेरी माया।
कहें प्रभु हे साध प्यारे, ईश्वर के हैं भेद न्यारे।
ऐसा जग में जन न जाया, सृष्टि का जिस अन्त है पाया।
योग समाधि कुछ दिखलावे, पूरा भेद न फिर भी आवे।
अन्त न सृष्टि का है प्यारे, देखन हारे थक थक हारे।

दो० सृष्टि के जो अन्त को, पाना चाहे मीत।
ब्रह्मा भी असमर्थ हो, कर्ता की यह रीत॥ ३५२

दिव्य गुणों का संग्रह भारी, माया है अपार पुकारी।
नेती नेती वेद उचारे, शास्त्र भी हैं सारे हारे।
जो भी प्रभु की शरणी आया, पार उसी ने केवल पाया।
आश्रय जिसने सारे त्यागे, केवल प्रभु की चरणी लागे।
सत का ज्ञान उसी को होवे, भ्रांति सारी वह नर खोवे।
माया को है वह तर जाता, शरण प्रभु की जो जन आता।
साक्षी रूप हो सृष्टि देखे, बैठ समाध लोकान्तर पेखे।

लोक परलोक में वह विराजे, प्रभु का संग न क्षण भी त्यागे।

दो० ईश कृपा से आपने, देखे लोक अनेक।
मत भूलो तुम साध जी, सब जां प्रभु हैं एक ॥ ३५४ क

दृश्य भेद तो बहुत हैं, द्रष्टा केवल एक।
उसी एक को चीन्हो, रचना भूल अनेक ॥ ३५३ ख

३०. हरनाम दास द्वारा अपना पूर्व वृतांत कथन करना।

साधु ज्ञान अनोखा पाया, पर अपर प्रभु भेद जताया।
विद्या अविद्या सब दिखला, भ्रांति उस की सकल मिटा।
प्रभु ने पूछी उस से बात, साध कहो अब निज इतिहास।
कैसे हुआ वह तेरा हाल, जैसे देखा था उस काल।
क्यों कर तुम्हें पकड़ ले जाते, क्षत विक्षत क्यों दृष्टि आते।
ऐसा कौन किया अपराध, जिस का इतना दण्ड अगाध।
साधु बोला हे महाराज, बीती अपनी कहूं सब आज।
आप से मैं ना कुछ दुराऊं, जीवन अपना सकल सुनाऊं।

दो० क्षत्रिय कुल में जन्म है, हरनाम दास है नाम।
अपना एक सहोदर, मिल कर करते काम ॥ ३५४

दोनों भाई मिल कर रहते, राम लखन सा प्रेम थे वहते।
चलते फिरते रहते साथ, जीवन सुख से बीते नाथ।
नित पर रहे न कुछ भी जग में, मिट गया वह सुख भी पल में।
ऐसा अनर्थ विधाता कीना, मुझ से मेरा भाई छीना।
इतना कह कर वह रुक पाया, उस की आँख में आंसु आया।
संभल गया पर वह तत्काल, कहने लगा फिर अगला हाल।

निधन भाई का सह न पाया, घर छोड़ मैं बाहर आया।
मूढ़ होय मैं विचरण लागा, अपनी सुध बुध को सब त्यागा।

दो० हो संतापी घूमता, मिला वैरागी एक।
ठण्डी छाया वृक्ष जिमि, गही मैं उसकी टेक॥ ३५५

मुझ को शरणी उस ने लीना, दे उपदेश शिष्य था कीना।
राम गायत्री मन्त्र दीना, मैं सेवा में हुआ तल्लीना।
भिक्षा का था नियम हमारा, साधु का तो वही आहारा।
प्रातः काल था मैं उठ पाता, नित्य कर्म कर मांगन जाता।
दस बजे तक जितना मिलता, ला कर गुरु चरणों में धरता।
आटा दाना जो कुछ लाता, खाना उस का मैं बनाता।
गुरु भी खाता मैं भी खाता, आता साधू वह भी खाता।
शेष बचे सो कुत्ता खाता, कल के लिये न कुछ धर पाता।

दो० मोह दुनिया से त्यागो, संचय करो न मूल।
राम भरोसे जीवो, मिटे जगत का शूल॥ ३५६ क

सद्गुरु से यह धारणा, पाई मैंने नाथ।
चिन्ता सारी त्याग कर, रहता गुरु के साथ॥ ३५६ ख

बारह वर्ष थे इमि बिताये, अन्त में मेरे गुरु समाये।
मन का शूल पुनः हिल पाया, जग की ममता आन दबाया।
दुःख भाई का कुछ था भूला, निधन गुरु का हुआ वसूला।
बारह वर्ष मैं रहा त्यागी, तो भी हुआ न मन वैरागी।
गुरु भण्डारा मैंने कीना, काशी का तब राह था लीना।
जिस विध मेरा मन हो शांत, बुद्धी की जिमि मिटे भ्रान्त।
वही कर्म था मैं कर पाता, लेश न मन में भय था लाता।

काशी में इक संत सुजान, नित्य करते थे कथा महान।

दो० संत बहुत विद्वान था, वाचक भी प्रवीन।
शास्त्रों के उपदेश की, धारा बहुत नवीन ॥ ३५७

बहुत श्रोता वहां पर आते, अमृत वाणी थे सुन पाते।
नित्य कथा में मैं भी जाता, सत्संग में था काल बिताता।
जो शिक्षा मैं वहां पर पाता, था आचरण में उस को लाता।
सत्संग की मैं महिमा जानी, संत जनों ने जिमी बखानी।
महिमा सत्संग की जो न्यारी, मन के मल को धोवन हारी।
यह तो मैंने खूब पहचाना, शुरु किया जब वहां पर जाना।
अपने दोषों को लख पाता, दर्पण में ज्यों मुंह लखाता।
संत की वाणी लगती प्यारी, उस में उपजी श्रद्धा भारी।

दो० मन मेरा था भंवरा, संत बचन थे फूल।
रस था उनका चूसता, निश दिन यही असूल ॥ ३५८

तप की महिमा संत बखानी, ओज पूर्ण थी उस की वाणी।
बिना तपस्या कुछ ना पावे, सृष्टि का इतिहास बतावे।
तप से सृष्टि ब्रह्मा कीनी, मनु नें संतती तप से लीनी।
तपस्या कर्दम मुनि कर पाया, जिसने दीरघ वंश चलाया।
कश्यप जैसे मुनि थे जाये, अगस्त्य ऋषि दुर्वासा पाये।
प्रह्लाद भक्त तपस्या कीनी, ध्रुव ने ध्रुव थी पदवी लीनी।
पार्वती ने तप के बल से, शिव शंकर को वश में करके।
अपनी साध का फल था पाया, तपस्या का प्रभाव दिखाया।
तपस्या भगीरथ कर पाया, स्वर्ग की गंगा भू पर लाया।

दो० सुनकर इस उपदेश को, मन में भया विवेक।

दृढ़ निश्चय कर लीना, धारूं तप की टेक ॥ ३५९

अन्न का खाना मैंने त्यागा, करने फलाहार ही लागा।
तीरथ यात्रा का व्रत लीना, बारह वर्ष व्रत तीर्थ कीना।
तीर्थ अनेकों मैंने कीने, अमरनाथ रामेश्वर चीने।
द्वारिका और पुरी हो आया, बद्रीनाथ केदार चढ़ पाया।
कैलाश मानसरोवर देखा, गंगा सागर को भी पेखा।
कुरुक्षेत्र हरिद्वार प्रयाग, पूर्व पश्चिम के सब भाग।
उत्तर दक्षिण चारों धाम, देखे मैंने स्वयं तमाम।
मन में इच्छा यही समावे, तीर्थ कोई न छूटन पावे।

दो० बारह वर्ष जब हो गये, उपजा मन वीचार।
तीरथों में क्या पाया, केवल हुआ खवार ॥ ३६० क

मन की इच्छा न मिटी, क्लेश मिटे न लेश।
पांचों चोर मौजूद हैं, बसें मन राग द्वेष ॥ ३६० ख

तप अधूरा मैं अनुमाना, ऐसे मेरा नहीं कल्याणा।
घोर तपस्या मैं कर पाऊं, और कहीं ना चल कर जाऊं।
विन्ध्याचल में मैं तब आया, कठिन तपस्या वहां कर पाया।
निराहार बहु दिवस बिताता, घाम शीत को था सह पाता।
घास पात ही था आहारा, भजन प्रभु का काम यह सारा।
चार वर्ष मैं यूं बीताये, इतने में इक साधू आये।
मैंने उठ कर किया प्रणाम, जाना जैसे आये हों राम।
प्रश्न तब उसने मुझ से कीना, "क्या करते तुम" पूछ यह लीना।

दो० उत्तर उसको मैं दिया, हे साधु महाराज।
प्रभु दर्शन हो जिस तरह, करता वे ही काज ॥ ३६१

मेरी बात साध सुन पाया, उस ने कहका खूब लगाया।
उसने मेरी खिली उड़ाई, प्रभु दर्शन तुम चाहते भाई।
खाला जी का घर तुम जाना, प्रभु दर्शन को पाना माना।
दया है मुझ को तुझ पर आई, इस से चल कर आया भाई।
एक मन्त्र मैं तुम्हे बताऊं, तप का करना भी समझाऊं।
साध ने मन्त्र मुझे बताया, एक टांग पर खड़ा कराया।
बारह वर्ष थे ऐसे बीते, एक टांग पर साधन कीते।
बहुत हुआ तब मैं बेहाल, देखो मेरी टांग का हाल।

दो० शरीर बिगाड़ा अपना, दर्श पाया न लेश।
अन्तर चिन्ता व्यापी, किस विध मिटे क्लेश॥ ३६२

मन में मेरे तब यह आया, प्रभु दर्शन जो मैं न पाया।
तपस्या मेरी है अधूरी, अब मैं करूंगा इस को पूरी।
शीतकाल जब आया देखा, ठण्डा हिमवत जल को पेखा।
सारी रात्री उसमें रहता, ठिठुर ठिठुर कर काल बिताता।
घोर ग्रीष्म जब फिर आई, चारों पासे आग जलाई।
सिर पर सूरज तपता पावूं; धक धक अग्नि साथ जलावूं।
बारह ग्रीष्म अग्नी तापी, निराश पुनः इस मन में व्यापी।
बुढ़ापा मुझ पर चल कर आया, प्रभु दर्शन नहीं अब तक पाया।

दो० आशा सकल त्यागकर, मौन लिया अब धार।
मौनी बन कर मैं फिरूं; मौत मेरी ले सार॥ ३६३

बन मौनी फल मैं जो पाया, तुमरे सन्मुख था प्रभु आया।
जनता मारा बिन अपराध, मौन की त्यागी मैं न साध।
राजपुरुषों ने मुझ को पकड़ा, जाना यमदूतों ने जकड़ा।
प्रभु को मैंने ध्याया जब हि, आप ने आन छुड़ाया तब हि।

आप हो साक्षात भगवान, दौड़े गज को देने त्रान।
जैसे थी द्रौपदी उबारी, वैसे आये मेरी बारी।
प्रभु ने रोका बीच में साध, पूछा किया था क्या अपराध।
क्यों लोगों ने तुम को मारा, क्यों था कैद में तुम को डारा।

दो० हरनामदास तब बोला, हे मेरे भगवान।
इक था टूटा मन्दिर, बैठा उसमें आन॥ ३६४ क

न जाने को मारता, ईंटें उसमें आय।
मुझे लोगों ने घेरा, उस दिन उस में पाय॥ ३६४ ख

सबने शोर मचाया, पकड़ लिया है चोर।
बदला इससे लेंगे, देंगे दण्ड कठोर॥ ३६४ ग

लोग मुझे तब मारन लागे, चपटों से भी ताड़न लागे।
जूतों से उन मुझ को पीटा, पकड़ केशों से मुझे घसीटा।
लट्ठ लुहान उन मुझ को कीना, जैसा तुम ने स्वयं था चीना।
राज पुरुषों ने मुझ को पकड़ा, हाथ कड़ी से था उन जकड़ा।
जेल में मुझ को वे ले जाते, नाथ न यदि उस काल बचाते।
ठीक समय पर आप बचाया, तपस्या का फल मैंने पाया।
दिव्य दान अब तुम ने दीना, क्लेश सकल मेरा हर लीना।
नर जब तप का फल पा जाता, कष्ट है पाछा सकल भुलाता।

दो० अब मैं तुम से मांगता, योग का केवल दान।
पूरण मुझे कराइये, जो प्रथम किया प्रदान॥ ३६५

सारा जब उस चरित सुनाया, प्रभु जी के मन वह अति भाया।
दृढ़ संकल्पी उस को जाना, साधन का अधिकारी माना।
अष्टांग योग में उसे लगाया, उस का आसन सिद्ध कराया।

प्राणायाम उसे सिखलाया, प्रत्याहार का रूप बताया।
धारणा ध्यान समाधि बतायी, जीवन में जो हैं सुखदायी।
दीर्घ काल समाधि लगाता, दस घंटों का श्वास चढ़ाता।
तब प्रभु बुलाया उस को पास, साध कहो अब मन की आस।
हरनामदास ले सुख का श्वास, बोला नाथ अब पूजो आस।
दो० प्रभु फिर दीनि आज्ञा, सुन कर उसका हाल।
बद्रीनाथ पहाड़ में, जा बीतावो काल॥ ३६६

३१. रामरत्ती को योग दान।

पटना में बहु भक्त उबारे, पूर्व दिशा फिर पग प्रभु धारे।
बंग देश की सीमा आई, घाट यमुनिया तहं सुखदाई।
गंगा स्नान प्रभु कर पाया, श्रम मार्ग का दूर हटाया।
नित्य कर्म फिर करने लागे, जग के पूज्य पूजन अनुरागे।
उसी घाट इक सज्जन आया, पुत्र अपने संग वह लाया।
बैठ गये कुछ जाकर आगे, बात विलक्षण करने लागे।
घुस घुसी थी उन की ऐसी, बातें चोरों की हों जैसी।
शंकित नाथ भी तब हो पाये, कैसे सज्जन हैं ये आये।
दो० अन्तर्यामी नाथ जी, सुन पाये तब बात।
पिता पूत से कहत था, छोड़ो घर से नात॥ ३६७

अन्य देश को हम चल जायें, गांव वाले जहं सुध न पायें।
जीवन सुख से काटें दोऊ, काटे नाक न हमरा कोऊ।
कहे पूत हे तात प्यारे, मिटें न इस विध कष्ट हमारे।
क्यों न हम अब छलांग लगावें, गंगा मात की गोद समावें।
कलंकित हमरा कुल जो होवे, गंगा मैया इस को धोवे।

जी कर हमने अब क्या करना, बदनामी से अच्छा मरना।
पूत की बात पिता सुन पाया, उस की आंख में आँसू आया।
हौका भर कर वह फिर बोला, मन उस का था डगमग डोला।

दो० पिता कहे यह पूत से, करो न मुझे हताश।
एक पुत्र तुम वंश में, चन्द्र शून्य आकाश॥ ३६८

तुम न जीवन अपना खोवो, मुझ को ही यह करने देवो।
मैं गंगा में छलांग लगाऊं, कलंक वंश का जिमि धो पाऊं।
चिरञ्जीव तुम होवो तात, भूल न करनी ऐसी बात।
पुत्र कहे मैं किमि जी पाऊं, जग में कैसे मुख दीखाऊं।
बहन मेरी ने किया जो काम, जग में हुये हैं हम बदनाम।
फिर भी पिता वही कह पावे, प्रिय पुत्र न प्राण गंवावे।
ग्राम छोड़ कर जाना ठीक, कुल की बचेगी जिससे लीक।
पुत्र कहे यह कुल चलाना, बहुत बड़ा है पाप कमाना।

दो० वंशज कुल के देखकर, लोक कहेंगे बात।
इस वंश की नारियां, हैं कुलटा विख्यात॥ ३६९ क

निन्दा की फिर रीति यह, सदा चलेगी तात।
जीवन डोरी काट कर, मिटावें क्यों न बात॥ ३६९ ख

प्रभु जी ने यह सब सुन पाया, पिता पुत्र जो वाद चलाया।
अन्तर्यामी सब कुछ जानें, जीव जगत में फिरें भुलाने।
दया प्रभु के मन में आयी, जीवों को जो है सुखदायी।
पितापुत्र को पास बुलाया, प्रश्न प्रभु ने तब कर पाया।
कौन वंश हो मेरे भाई, क्या चरचा है यहां चलाई।
उलझन में हम तुम को पावें, कहो समस्या कुछ सुलझावें।

पिता पुत्र की ओर को देखे, पुत्र भी मुख पिता का पेखे।
किसी की बुद्धी में न आवे, उत्तर प्रभु को क्या दे पावे।

दो० पुत्र प्रभु को टालता, कुछ नहीं है बात।
पिता पुत्र से तब कहे, क्यों छिपावो तात॥ ३७०

संतों से क्या बात छिपानी, उचित उन को है बतलानी।
संतों की है महिमा महान, संतों से जग पावे त्रान।
संत जनों की रक्षा करते, संत जनों के दुःख हैं हरते।
संत जनों को दें उपदेश, हितकर सन्तों के आदेश।
मैं संत को सभी बताऊं, अपने दुःख की औषध पाऊं।
बात पिता की पुत्र मानी, आपत्ति उस ने कुछ न आनी।
पिता ने प्रभु को सब बतलाया, निज कन्या का हाल सुनाया।
कहा पिता ने प्रभु जी प्यारे, खोटे मानो भाग हमारे।

दो० एक है मेरी कन्या, रामरती है नाम।
खोटे संग में वह पड़ी, कीना कुल बदनाम॥ ३७१ क

गांव में मेरा रहना, दूभर है अब नाथ।
संत मिले जो आप हैं, राखो दे कर हाथ॥ ३७१ ख

जिस दिशा हम निकल के जाते; लोग हैं अंगुल उधर उठाते।
बेबस होकर घर में रहते, रात दिवस न चैन को पाते।
बहुत हम कन्या को समझाते, उस को कह कह कर थक जाते।
कान पर वह तो बात न धरती, अहर्निश अपनी मर्जी करती।
मन में अब है हम ने धारा, घर त्यागें न आयें दोबारा।
इस ग्राम से नाता तोड़ें, अथवा जग को ही हम छोड़ें।
अज्ञात दिशा में हम जा पावें, गंगा में या छलांग लगावें।

पुत्र मेरा यह हे भगवान, त्यागन चाहता अपने प्राण।

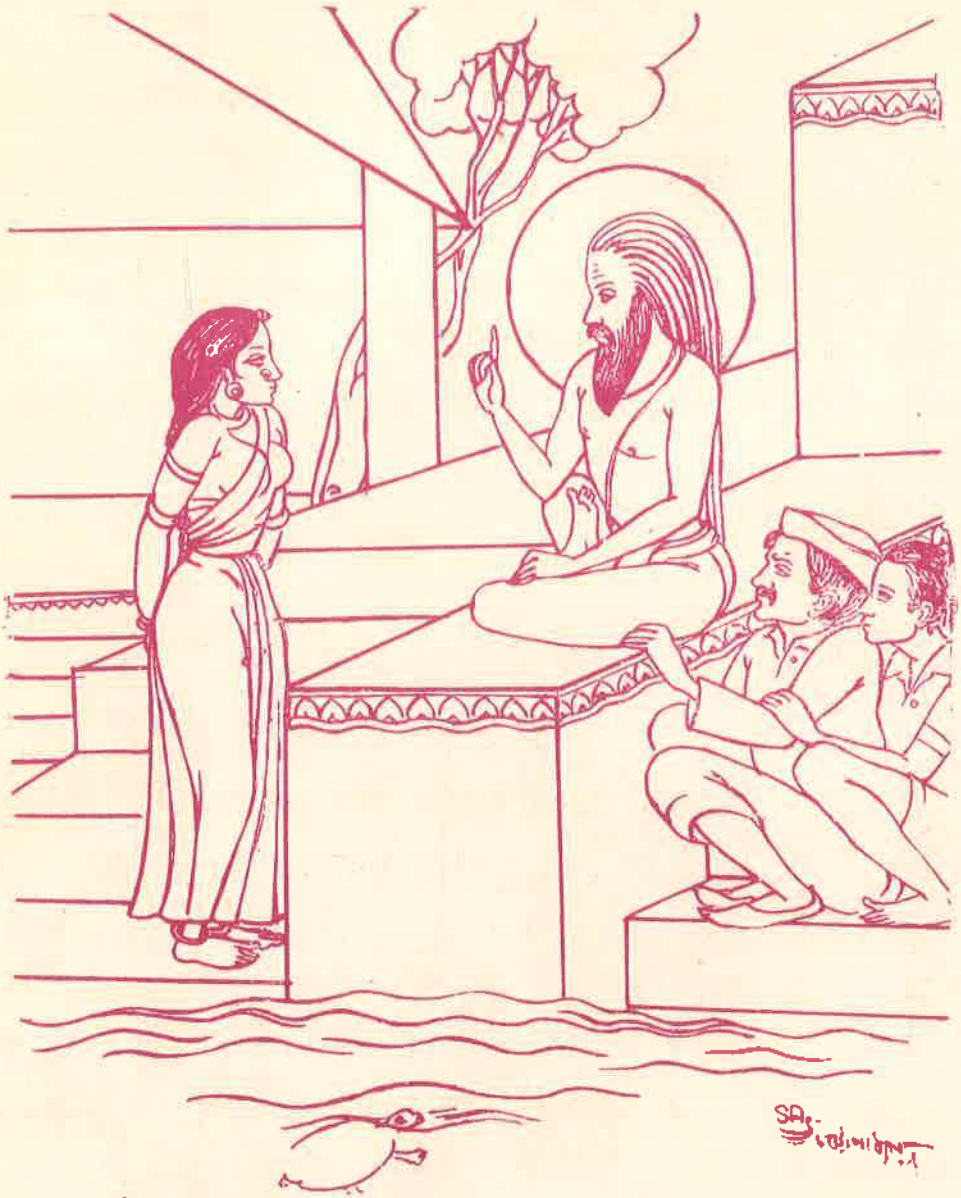
दो० दुविधा में मैं नाथ हूं, दोनों ओर अन्धेर।
सांप छछूंदर की गती, अजब पड़ा है फेर॥ ३७२

इन आंखों से कैसे देखूं; मरता अपना पुत्र पेखूं॥
मुझ पर ऐसी कृपा कीजो, इस बालक को शरणी लीजो।
फिर त्यागूं मैं अपने प्राण, संतति मोह से भी हो त्राण।
सुन कर प्रभु ने उसका हाल, दिया आश्वासन उसे तत्काल।
समस्या लगती जो यह भारी, धैर्य धरो सुलझेगी सारी।
ईश्वर निष्टा जो जन धारे, सुलझें उस के काम ही सारे।
गाँव छोड़ना है नहीं ठीक, कायरता का यह प्रतीक।
आतम हत्या भी है पाप, इससे पाय जीव संताप।

दो० निश्चय प्रभु पै राखिये, यत्न करो तुम तात।
जिस विध कन्या आयकर, सुने हमारी बात॥ ३७३

कन्या जब कुसंग को त्यागे, और सुसंगत में वह लागे।
उसका रूप बदलता पावो, संशय इसमें लेश न लावो।
कुसंगति नर से पाप करावे, कुसंग कुमार्ग में ले जावे।
कुसंगति मन को मैला करती, बुद्धी को भी यह है हरती।
कुसंग से हो गुणों का नाश, कुसंग से पापों का प्रकाश।
त्याग कुसंग सुसंग अपनावे, कन्या देवी रूप धरावे।
जग में बुरा न जानो कोई, पाप करे सो पापी होई।
संग पाप का जब वह त्यागे, धर्मी होकर धर्म में लागे।

दो० मानुष की तो जात यह, उत्तम है जग माहिं।
धर्म मार्ग में जब लगे, उसके पाप नसाहिं॥ ३७४



श्री प्रभु जी ने रामरती से कहा कि यदि सत्य कहोगी तो हम तुम्हें सत्य बोलने का फल देंगे।

सत्य सत्य तुम सब बतलाना।
मिथ्या वचन न मुख पर लाना॥

(दोहा ३७५ के सामने)

जल से काया को नर धोवे, सत्य धर्म से मन शुद्ध होवे।
सत का भाव जिसके मन रहता, भव धारा में वह न बहता।
प्रभु की सीख पिता सुन पाई, रामरती भी तहं चलि आई।
उसने विनय तब कह सुनाई, नाथ यह रामरती मम जाई।
उस को कहीं उन जाते पाया, प्रभु जी ने उसे पास बुलाया।
निःसंकोच वह चल कर आई, सन्मुख नाथ खड़ी हो पाई।
अपने सन्मुख प्रभु ने देखा, अन्तर्यामी किया उल्लेखा।
गुप्त बात को मन में राखा, नाथ प्रकट तब उस को भाखा।

दो० देवि ! हम कुछ पूछते, क्या बताओगी सत्य।
जो कुछ दिन भर करत हो, बखान करो तुम तथ्य ।। ३७५

सत्य सत्य तुम सब बतलाना, मिथ्या वचन न मुख पर लाना।
तुम ना कोई बात छिपाना, सत्य का फल जो चाहो पाना।
रामरती तब बोली वाणी, रोष से वाणी थी जो सानी।
मैं तो झूठ कभी न बोलूं, सत्य वचन ही वाक पै तोलूं।
प्राण छोड़ूं पर सत्य न छोड़ूं, सत्य से क्यों कर मुख मैं मोड़ूं।
मैं तो भय न कोई भी मानूं, असत्य वचन जो मुख पर आनूं।
पूछा मेरा जो सब काम, सत्य बताऊं तुम्हें तमाम।
प्रातः उठूं मीत मम आवें, अपने संग वे मदिरा लावें।

दो० उनके संग मैं घूमती, कटे मज़े में काल।
दिन दीखे न बीतता, यही सकल है हाल ।। ३७६

अन्तर्यामी प्रभु जगदीशा, सकल घटों के जो हैं ईशा।
सत्य वचन जब वे सुन पाये, स्पष्ट वक्तृता उन मन भाये।
खिन्नवदन पर वचन उचारे, सुन पाये हम कर्म तुम्हारे।
मदिरापान बुरा है देवी, क्यों कर हो तुम उस की सेवी।

पुरुषों का जो संग कर पाती, लज्जा क्या ना तुम को आती।
उत्तर हम को वह ही देवो, मानो मन में जो तुम होवो।
सत्य बात है हम को प्यारी, असत्य वचन से घृणा हमारी।
रामरती ने उत्तर दीना, लेश विलंब न उसने कीना।

दो० मिलता है आनन्द मुझे, बीते ऐसे काल।
है तो सुख के हेतु ही, सारा जग जंजाल॥ ३७७ क

जिसमें सुख को पात है, करता नर वह काज।
मौज में जीवन बीते, सुख में हूं मैं आज॥ ३७७ ख

सत्य वचन जब प्रभु सुन पाया, मन में उस का धैर्य सराहया।
निष्टा की भी दृढ़ता देखी, प्रतिष्टा सत्य वचन में पेखी।
तरंग कृपा फिर प्रभु मन आई, जीव की जो है भाग्य विधाई।
कर कृपा तब प्रभु जी बोले, देवी सत्य वचन तुम तोले।
लक्ष्य आनन्द का है तो ठीक, शाश्वत मिले जो उस की लीक।
नाशवान को जो अपनावे, शाश्वत आनन्द किमि वह पावे।
नश्वर से जो मिले आनन्द, बढ़ें जीव के उस से द्वन्द।
विषयों से जब ध्यान हटावे, आत्मानन्द तभी नर पावे।

दो० जो आनन्द तू भोगती, उससे गुणा हज़ार।
दान करें जो हम तुझें, करोगी क्या स्वीकार॥ ३७८

रामरती फिर वचन उचारा, संशय उस के मन जो भारा।
इससे बड़ा आनन्द न जानूं, बात तुम्हारी सत किमि मानूं।
आत्मानन्द जो तुम समझाया, वह तो मेरी समझ न आया।
जो आनन्द तुम चाहो देना, अवश्य उसे मैं चाहूं लेना।
तुम पर करू मैं किमि विश्वास, शपथ खाओ बंधे मम आस।

सुन कर उस की ऐसी बात, प्रभु मुस्काये जग के त्रात।
सरल हृदय उसका उन जाना, हाथ जनेऊ पर ले आना।
कर में यज्ञोपवीत उन लीना, शपथ वचन तब प्रभु कह दीना।

दो० बैठो यदि तुम मूंद कर, देवी अपने नयन।
*मेंह बर्से आनन्द का, सत्य हमारे बयन॥ ३७९ क

अटल वचन थे नाथ के, सुनें देव ला कान।
"शरण पड़े की पत" कहें, "राखें प्रभु खुद आन"॥ ३७९ ख

भक्त वत्सलता देव सराहवें, प्रभु की जय जयकार बोलावें।
पुष्पन की वे झड़ी लगावें, ऋषि मुनियों के मन को भावें।
रामरती ने मानी बात, बैठी नेत्र मून्द साक्षात।
देखा प्रभु ने उस का हाल, शक्ति पात किया तत्काल।
जग जंजाल सब उसने भूला, देव लोक में ले अब झूला।
जो आनन्द तहं उसने पाया, वैसा स्वप्न में न था आया।
जिस आनन्द को थी वह चाहती, सुखी भयी वह पा रामरती।
सुधी देह की उस खो पायी, ऐसी गूढ़ समाधि लायी।

दो० उसे वहां बिठलाय कर, गये कहीं कुछ काम।
तीन दिवस के बाद फिर, लौटे तहां प्रभु राम॥ ३८०

प्रभु ने देखा आ उस काल, रामरती का जो था हाल।
छोड़ा समाधी में था जैसे, तब तक थी वह बैठी तैसे।
प्रभु जी आ कर उसे बुलाया, उत्तर उस से कुछ न पाया।
प्रभु की इच्छा होवे जैसे, जगत चराचर नाचे तैसे।
प्रभु ने पिता को पास बुलाया, पूछें क्या कुछ इसे खिलाया।

*हो वर्षा आनन्द की।

कहे पिता हे जग के नाथ, कुछ न खाये यह हमरे हाथ।
इस को ना कुछ सुध है साँई, क्या करें हम इसके ताईं।
एक समस्या तुम सुलझाई, दूसर में अब दियो उलझाई।

दो० रामरती को क्या हुआ, हमें बतावें नाथ।
कब सुधी में आयेगी; बोलेगी हम साथ॥ ३८१ क
व्याकुल सारा गांव है, बीते दिन हैं तीन।
रामरती बे होश है, या प्रभु में लीन॥ ३८१ ख

नाथ ने मुख से वचन उचारे, भाइयो त्यागो संशय सारे।
रामरती है प्रभु में लीना, ऋषि मुनि जिमि ध्यानासीना।
ध्यान से मन की शुद्धि होवे, बुद्धि ध्यान से निर्मल होवे।
ध्यान से पापों का हो नाश, ध्यान से तीनों पाप विनाश।
ध्यान कर्मों के बंधन काटे, आवागमन ध्यान ते नाटे।
कुकर्मों से ध्यान बचावे, कुसंगत को भी वही दुरावे।
ध्यान से शांति को नर पावे, परमानन्द अनुभव में आवे।
योगी नर ही ध्यान लगावें, सद्गुरु से जिमि युक्ति पावें।

दो० रामरती प्रभु ध्यान से, करके मन को शुद्ध।
परमगति को पायेगी, जैसे मुनि प्रबुद्ध॥ ३८२

इस की सेवा जो कर पावे, पूरा मनो काम हो जावे।
इस को देवी तुम सब मानो, संशय लेश न मन में आनो।
पूर्व की सब बात भुलाओ, तन मन से तुम सेव कमाओ।
प्रभु जी ने तब दूध मंगाया, पात्र रामरत्ती मुख लाया।
समाधि में ही दूध पिलाया, जनता को कुछ भेद बताया।
कहें प्रभु हे भक्तो प्यारे, रहना सेवा में तुम सारे।
जितनी सेवा जो कर पावे, उतना ही वह पुण्य कमावें।

ऐसे ही तुम दूध पिलाना, वस्त्र नूतन नित्य पहनाना।

दो० स्मरण प्रभु का कर तुम, कर पाओ जो सेव।
यह मानेगी बात सब, जानो इसका भेव॥ ३८३ क

समाधि में यह है पड़ी, मानो न बेसुध।
सब का हिरदय जानती, इसकी देवी बुध॥ ३८३ ख

करना कुछ यदि चाहती, प्रभु का पा आवेश।
आंखें मूंदे ही करे, बाधा होय न लेश॥ ३८३ ग

प्रभु की बात सबन सुन पायी, सैंकड़ों जनता की समुदायी।
जय गुरु देव सबन बोलाया, चरणों में फिर शीश झुकाया।
सब के मन था बहुत हुल्लास, प्रभु चरणों में दृढ़ विश्वास।
प्रभु विदा जब होने लागे, धीरज जनता के तब भागे।
स्त्रियां छन छन रोने लागीं, पुरुषों ने भी धीरज त्यागी।
जनता को प्रभु कुछ समझाया, रामरत्ती का पिता बुलाया।
अन्तर्यामी घट की जानें, पिता पुत्री का मोह पहचानें।
उस को शिक्षा दीनी खास, जिस से शिथिल न हो विश्वास।

दो० रामरती के तात को, बात कही प्रभु खास।
सुख पावो विश्वास से, संशय से हो नास॥ ३८४

भक्तो के तुम मग को जानो, खाण्डे की यह धार पहचानो।
दृढ़ विश्वासी लागे पार, संशय करे बहे मंझधार।
सेवा से तुम मुख ना मोड़ो, प्रभु चरणों में चित्त को जोड़ो।
सेवा में रत दिन और रात, जीवन ऐसे बीते तात।
हम को प्रभु लौटा जब लायें, भक्ति में फिर वृद्धि पायें।
सत्य आशीष प्रभु दे पायी, त्याग चले वे जन समुदायी।

राम रती को वहां बैठाये, गुरु की खोज में चरण बढ़ाये।
इस प्रसंग को यहीं त्याग, आगे चलो मन प्रभु पग लाग।

दो० इस दिव्य इतिहास को, जो गावे नर नार।
सकल पाप उसके कटें, मन में प्रभु को धार॥ ३८५

३२. रामा को भक्ति दान।

घाट यमुनिया प्रभु जी त्यागा, बंग देश को किया सुभागा।
घाट घाट में दर्शन दीने, भक्त अनेकों शरणी लीने।
नदिया में फिर नाथ पधारे, संग में भक्त थके जो सारे।
सूरज उनके सर पर चमके, खूब पसीना तन से टपके।
गर्मी से थे व्याकुल भारे, आश्रय को वे खोजें सारे।
भक्तों को प्रभु देख श्रांत, गर्मी से भी अति विक्लांत।
पा इक मन्दिर नगर के पास, देख वहां पर सकल सुपास।
प्रभु जी आज्ञा कीनि प्रदान, मध्यान्ह बितावें इसी स्थान।

दो० प्रभु आज्ञा को पायकर, सबने डाले डेर।
छाया छाया देखकर, लीना मन्दिर घेर॥ ३८६ क

सब के पाछे नाथ ने, ले हरानन्द साथ।
लेट गये इक ओट में, सर नीचे धर हाथ॥ ३८६ ख

जिस प्रभु ने जगत रचाया, जग ने जिससे वैभव पाया।
जिस दर के हैं मंगते सारे, सुख पाते हैं जिसके द्वारे।
आसन शय्या वाहन सारे, देवे जग को न्यारे न्यारे।
वही प्रभु थे पैदल चलते, कांटे उनके पांव में खलते।
और लेटे थे नंगी भू पर, पूरी छाया भी न जहां पर।

क्यों कर प्रभु जी सब दुःख सहते, समरथ होकर कष्ट थे वहते।
मर्यादानाथ यही दर्शावें, तप बिन गुरु को ना हम पावें।
सब कुछ नर जब तप से पावे, तब किमि तप बिन गुरु अपनावे।

दो० गुरु को प्रापत वह करे, त्यागे जो सुख आस।
गुरु भक्ति से होत है, अहंकार का नास॥ ३८७ क

प्रभु थे लेटे भूमि पर, गाढ़ निद्रा में लीन।
आधा तन था छाय में, आधा छाया हीन॥ ३८७ ख

हरिहरानन्द पास था, उसका भी यह हाल।
मुंह पर धूप पड़त थी, चमकत उसका भाल॥ ३८७ ग

एक पुरुष सह पत्नी आया, साधु मण्डल देख हर्षाया।
हरानन्द का मुख उस देखा, सूरजकान्त मणीवत पेखा।
तेज देख श्रद्धा उपजायी, रोकूं आतप मन में आयी।
छाता तब उस मुख पर कीना, स्वयं धूप में खड़ा हो लीना।
पति को देख पत्नी मन आया, उसने प्रभु पर छाता लाया।
वह भी स्वयं धूप में ठहरी, खड़ी सोच में डूबी गहरी।
प्रभु सेवा में दोनों लीना, अपने श्रम का ध्यान न कीना।
घंटा भर यह सेव कमायी, प्रभु जागे फिर जग सुखदायी।

दो० उस महिला को देख कर, सेवा करत महान।
अन्तर्यामी ने किया, दया दृष्टि का दान॥ ३८८ क

जग मजदूरी देत है, क्यों राखें भगवान।
क्षण एक में लेत हैं, दूजे करत प्रदान॥ ३८८ ख

फिर प्रभु शिष्टाचार दिखाया, जग मर्यादा वश फरमाया।
आओ भक्तो कैसे आये, क्यों धूप में खड़े हो पाये।

बैठ बताओ मन का हाल, प्रभु को सिमरो तुम सब काल।
अपना परिचय हमें कराओ, बात विशेष जो हो बतलाओ।
प्रणाम प्रभु को दम्पती कीना, मुख से वचन पति कह दीना।
देख यहां पर साधु समुदाय, दर्शन हित हैं हम चल आय।
देख तेज नाथों का भारी, श्रद्धा उपजी मन में न्यारी।
चित्त में आया यहां खड़ लेवें, आप जगें तो आशिष देवें।

दो० हम संसारी जीव जो, पाप करें दिन रैन।
संतों के आशीष से, पावें मन में चैन। ३८६

आशीर्वाद संत दे पावें, जीवों के त्रयताप मिटावें।
कृपा हम पर भी कर पाओ, चरण हमारे घर पै लाओ।
साधू सेवा हम कर पावें, जीवन अपना सफल बनावें।
साध सेवा में काल जो बीते, उत्तम काल वही प्रतीते।
मैं और मेरे जन जो सारे, सेवक बन के रहें तुम्हारे।
साध सेवा का फल महान, साध सेवा से हो कल्याण।
गृहस्थी साधु सेवी होवे, जन्म जन्म के पाप को धोवे।
कहें प्रभु हे सज्जन प्यारे, सेवा साध की नर को तारे।

दो० पर जो सीखे योग को, साधु संग को पाय।
वही गृहस्थी जीव तो, सेवा कर तर जाय॥ ३९० क

निष्फल सेवा लेत है, बाना साधू धार।
नरक चौरासी वह पड़े, सेवक होय खवार॥ ३९० ख

साधु संग से योग को पावे, वह नर ही भव तर के जावे।
योग विहीन साध का पाना, ऊसर में है बीज बुआना।
जल निर्मल हो तो नर ग्रावे, साधू योग न बिन अपनावे।

गुरु सेवा में तन मन वारे, साधन रत रह जीवन तारे।
लक्ष मोक्ष का सदा ध्यावे, मार्ग योग न त्यागन पावे।
हम योगी ना घर में जावें, बाहर वस्ती डेरा लावें।
जिस नर को अधिकारी पावें, साधन योग उसे सिखलावें।
सुन सज्जन न उत्तर दीना, पत्नी खिन्न वदना कह दीना।

दो० तुम योगी तो घूमते, निश्चित ना तव वास।
योग किमि सिखलाओगे, बिन धारे आवास॥ ३९१

गृहस्थी सीख योग तब पावें, योगी स्थिर जब वास बनावें।
पत्नी की थी बात तो ठीक, मिले न योगी मिटे यह लीक।
योग धर्म अनादि चलि आया, सदा गृहस्थियों ने अपनाया।
जनक गृहस्थी हुये महान, विश्वामित्र वशिष्ठ सुजान।
कृष्णचन्द्र हुये योगेश्वर, योगोद्धारक जो परमेश्वर।
योग हेतु प्रभु लिया अवतार, करें न युक्ति का प्रतिकार।
हरानन्द को देख मुस्काने, प्रभु जी के जो मन को जाने।
उसने उत्तर तब दे दीना, जैसा प्रभु के मन में चीना।

दो० हम योगी तो घूमते, निश्चित न है वास।
एक वास भी कर सकें, साधक मिले जो खास॥ ३९२

बाहर नगर जो वास बनाओ, हम ठहरें पर देर न लाओ।
सुन पत्नी यह अति हर्षाई, मत यह पति के मन भी भाई।
उन के लिये कठिन न काम, सब काम बनें जब खर्चें दाम।
वह सज्जन तो था धनवान, चटर्जी आशुतोष अभिधान।
रामा उस की सुंदर वार, धर्म कर्म में अती उदार।
न्यायाधीश था वह महान, रामा उस के घर की शान।
प्रभु चरणों उन शीश झुकाये, अपने घर की ओर सिधाये।

घर पहुंच कर किया आयोजन, जिमि हो शीघ्र सिद्ध प्रयोजन।

दो० शिल्पी योग्य बुलाय कर, दीनी बात बताय।
आश्रम का निर्माण हो, तीन दिवस में जाय॥ ३९३

शिल्पियों ने न देर लगाई, लेबर बहु संख्या में लाई।
सुंदर आश्रम वहां बन पाया, शीघ्र ही जो मन को भाया।
कर विनति उन प्रभु ठहराये, घर विदुर ज्यों कृष्ण थे आये।
वम्पति योग मार्ग अपनाया, योग अष्टांग प्रभु समझाया।
आशुतोष इक शंका कीनी, यम नियम की महिमा चीनी।
समाधि योग में उनका स्थान, कहा क्यों माने बहुत महान।
कृपा कर उसे नाथ बताया, इसके आगे जो लिखवाया।
यम के पांच भेद हैं भाई, पाँच नियम भी हैं सुखदायी।

दो० अहिंसा सत्य अस्तेय जो, ब्रह्मचर्य ये भेद।
अपरिग्रह है पांचवां, पाल मिटे सब खेद॥ ३९४ क

शौच सन्तोष और तप, स्वाध्याय भी मान।
नियम पांचवाँ समझ लो, ईश्वर का प्रणिधान॥ ३९४ ख

यम नियम की महिमा भारी, सभी धर्मों ने है प्रचारी।
देशकाल का ना यहां भेद, पावे न कोई इन से खेद।
जो नर इनका पालन करता, जग में वह उच्च पदवी धरता।
विश्व वन्द्य वह नर हो जाता, यम नियमों को पाल दिखाता।
यम नियम कर्मी को प्यारे, यम नियम धर्मी को प्यारे।
यम नियम योगी को प्यारे, यम नियम मुनियों को प्यारे।
यम नियम से स्वर्ग को जावे, यम नियम से मोक्ष भी पावे।
यम नियमों से शक्ति धारे, ऋद्धि सिद्धि भी सत्कारे।

दो० यम नियमों से हीन जो, मान पाय न सोय।
पुरुष न धर्मी हो सके, बिन गुण जीवन खोय॥ ३९५

आशुतोष सुन प्रभु की बात, नाथ से बोला हे जग त्रात।
पांच पाँच यम नियम बताये, साथ आपने गुण समझाये।
उन का पालन जिमि कर पायें, वह भी नाथ हमें बतलायें।
अहिंसा को हम कैसे पालें, सत्य आदि में जीवन घालें।
शंका नाथ ने जब सुन पायी, सहित प्रेम बात समझायी।
मन वचन कर्म से नहिं सतावे, पालन अहिंसा का कर पावे।
मन वचन कर्म जब एक हमारा, सत्य को जानो तब हम धारा।
मन वचन कर्म से जो परद्रव्य, अस्तेय में त्यागन है कर्तव्य।

दो० ब्रह्माकार जो वृति हो, विषयों से विरक्त।
शुद्ध दृष्टि से देखता, ब्रह्मचर्य में सक्त॥ ३९६

येन केन लाभेन सन्तोषी, अपरिग्रही वही निर्दोषी।
शौच को केवल वह नर धारे, मन वचन कर्म में शुद्धि सारे।
प्रभु इच्छा को जो अपनावे, जीव सन्तोषी वह हो जावे।
इन्द्रियों पर जिस का अधिकार, तप तो उस का ही स्वीकार।
शास्त्र पढ़े और शिक्षा पावे, स्वाध्यायी वह पुरुष कहावे।
ईश्वर पर जो आस्था राखे, ईश्वर के गुण नित्य ही भाखे।
मन में ईश्वर जब जप पावे, ईश्वर का प्रणिधान कहावें।
आशुतोष सुन तोष जताया, प्रभु चरणों में शीश निवाया।

दो० विनय सहित कहने लगा, आशुतोष सुजान।
नाथ सनाथ हमें किया, वे उपदेश महान। ३९७

यम नियमों से सिद्धि धारे, यह वचन थे नाथ उच्चारे।

जिस गुण से जो सिद्धि पावें, किरपा कर वह हमें बतावें।
सुन कर प्रभु जी उस की बात, कहने लगे सुनो मम तात।
जिस गुण से जो सिद्धि आवे, शास्त्र वह सब खोल बतावे।
अहिंसा वैर की करता हान, सत्य से वचन की सत्ता जान।
अस्तेय धर्म को जो अपनावे, धन का स्वामी वह हो जावे।
ब्रह्मचर्य में दृढ़ता लावे, सब से बढ़ कर शक्ति पावे।
अपरिग्रह में सिद्धि लावे, जन्म जन्म का ज्ञान वह पावे।

दो० शौच कर्म को सिद्ध कर, निर्मल जन हो जाय।
मन वचन और कर्म में, आत्म तत विकसाय॥ ३९८

गुरु प्रसाद संतोष मन आवे, सुख अनुत्तम तभी जन पावे।
तप की जिस ने कीनि कमाई, सब इन्द्री गण वश उस लाई।
फल स्वाध्याय अतीव महान, इष्ट अपने का मिलता ज्ञान।
ईश्वर का प्रणिधान कमावे, समाधि में वह सिद्धि पावें।
आशुतोष अतीव सुजान, प्रभु से उस ने पाया ज्ञान।
जब न्यायालय जा वह पाया, रामा चित्त प्रभु सेवा लाया।
सेवा में वह रत हो लागी, प्रभु आज्ञा की थी अनुरागी।
प्रभु की आज्ञा पाछे पाती, उस से पूर्व कर्म कमाती।

दो० प्रभु आज्ञा से पूर्व ही, पावे उसका ज्ञान।
इस बात से सकल जन, होते थे हैरान॥ ३९९ क

वास्तव में पर तथ्य यह, मन की शक्ति अबाध।
इकाग्रता जब वह करे, मिटते तब सब बाध॥ ३९९ ख

अनन्य मन वह प्रभु को ध्याती, प्रभु की मूरत उस मन रहती।
प्रभु का इंगित सदा निहारे, धारे जीवन प्रभु सहारे।
इच्छा प्रभु के मन जब आवे, क्षण मात्र में उसे लखावे।

पालन में वह देर न लावे, क्यों कुछ मुख से प्रभु कह पावें।
ध्यानासीना भी जब होवे, देहाध्यास सकल जब खोवे।
प्रभु इच्छा को तब भी जाने, सेवा कर्म को वह पहचाने।
मूंदी आंखें ही उठ पावे, सेवा का सब कर्म कमावे।
योग युक्त हो रामा बाई, अद्भुत सेवा रीत चलाई।

दो० सेवा की इस रीति में, केवल रामा नाहिं।
हरिहरानन्द योगी, उसी होड़ में आहिं॥ ४००

प्रभु इच्छा को रामा जाने, हरि भी उस को ही पहचाने।
दोनों सेवा कर्म कमावें, प्रभु के मन को दोनों भावें।
इक सेवा जब दोनों करते, बहन भाई तब वे थे लड़ते।
मेरी सेवा प्रभु सत्कारे, दोनों में प्रत्येक विचारे।
जल्दी जल्दी जब कर पाते, देख प्रभु थे तब मुस्काते।
रामा सेव प्रथम कर पाती, हरानन्द मन ईर्षा आती।
प्रभु जी लेश न दोष सहारें, भक्त जनों के पाप निवारें।
हरानन्द को उन फरमाया, दूजा सेवा कर्म बताया।

दो० हरानन्द को नाथ ने, भेजा अन्य स्थान।
उसकी गाथा हम कहें, प्रभु की लीला मान॥ ४०१

३३. हरि हरानन्द का मारवाड प्रदेश में गमन।

हरानन्द प्रभु आज्ञा पावे, मास स्वतन्त्र दो रह जावे।
तीरथ यात्रा वह कर पावे, अथवा कहीं समाधी लावे।
आज्ञा पाल भक्त दिखलावें, क्षण भी मन में सोच न लावें।
चरण प्रणाम प्रभु को कीनी, नदिया से बीदायी लीनी।
सद्गुरु को मन में वह धार, श्वास श्वास प्रभु नाम उच्चार।

पश्चिम दिग कीना प्रस्थान, देखे उस ने अनेक स्थान।
करता जाता प्रभु गुण गान, योग की महिमा करे बखान।
बहुत जीवों को दे उपदेश, पहुंचा मारवाड़ प्रदेश।

दो० मारवाड़ प्रदेश में, देखे नगर अनेक।
सेठों का वह देश है, धनी एक से एक॥ ४०२

कुछ धनिक उस को मिल पाये, निर्धन कई सेवा में आये।
निर्धन प्रभु का शुकर गुज़ारें, सब जग का हो भला पुकारें।
कर्मों के वे फल को जानें, पाप कर्म के डर को मानें।
संत जनों का करें सत्कार, सुन उपदेश मानें उपकार।
सेवा में धनवान जो आवें, कामना धन की संग में लावें।
ऐसे मन्त्र पूछें आकर, बहुत कमावें थोड़ा लाकर।
ईश्वर की ना बात चलावें, माया की ही कथा सुनावें।
मन में श्रद्धा न्यून ही राखें, कथनी में वे बहुत ही भाखें।

दो० उनका इसमें दोष नहीं, माया का प्रभाव।
जिसके हृदय बैठती, बदले उसके भाव॥ ४०३ क

ऐसे विरले जगत में, सद्गुरु जिनकी टेक।
माया डेरे डालती, सुनें न उसकी एक॥ ४०३ ख

नगर एक में हरि चलि आया, बाहर वस्ती डेरा लाया।
धनी जनों की वह थी नगरी, सुंदर उसकी सकल सामग्री।
धर्मी नर वहाँ विरले रहते, माया का सब प्रेम थे वहते।
धर्म कर्म में जो लग पावें, उन की सब थे खिली उड़ावें।
साधु जो कोई चल के आवे, आदर वहां पर लेश न पावे।
हरानन्द को जब उन देखा, सब ने मन में किया उल्लेखा।

साधु जो यह आकर ठहरा; दें हम इस पर ऐसा पहरा।
इस की बात न कोई सुन पावे, भोजन तक ना इसे खिलावे।

दो० भूखा रह कर ही स्वयं; आगे को यह जाहीं।
ढोंग धर्म का न चले, इस नगर के माहीं॥ ४०४ क

तीन नगर के सेठ थे, धनी कुबेर समान।
उनके वश में सकल जन, मानें उन्हें प्रधान॥ ४०४ ख

तीनों थे वे नास्तिक, कट्टर एक से एक।
विरोध धर्म का वे करें, ले कुतर्क की टेक॥ ४०४ ग

उसी नगर इक ब्राह्मण रहता, नास्तिकों को जो लेश न भाता।
घर में अपने प्रभु वह ध्यावे, बाहर प्रकट न कुछ कर पावे।
जिस को होवे उस का ज्ञान, उस को करे वही परेशान।
उस की हालत मानो ऐसी, लंका मध्य विभीषण जैसी।
नगर में ऐसा नर न पावे, जिस को मन की व्यथा सुनावे।
नगर में ऐसा स्थान न पावे, धर्म कर्म जहं कर दिखलावे।
देवालय मन्दिर वहां न कोई, सत्संग का तो नाम न होई।
हरानन्द जब वहां पर आया, ब्राह्मण मन में अति हर्षाया।
देख साधु को नगर के पास, पूजी उस के मन की आस।

दो० हरानन्द की नित्य वह, आकर करता सेव।
सेठों को फिर मिल गया, उसका सारा भेव॥ ४०५

ब्राह्मण को वे लगे सताने, उस की पत्नी को धमकाने।
साधू का तुम पीछा छोड़ो, उस की सेवा से मुंह मोड़ो।
साधु स्वयं जो है कंगाल, सुधारे किस विध तेरा हाल।
मांग मांग जो खुद है खाता, उस से कोई न कुछ भी पाता।

ब्राह्मण दम्पती प्रभु को ध्यावें, क्यों कर उस से भय को पावें।
योग धर्म था उन अपनाया, हरानन्द ने जिमि बतलाया।
गुरु की सेवा न कोई त्यागे, चाहे बाज़ी जान की लागे।
हरानन्द में प्रभु की शक्ति, जिस से बढ़ती उन की भक्ति।

दो० हरानन्द प्रभु ध्यान में, रहता अहर्निश लीन।
ब्राह्मण दम्पती भक्ति वश, सेवा में लवलीन। ४०६

इक दिन सेठ वहां चलि आया, हरानन्द जहाँ आसन लाया।
ब्राह्मण बैठा था वहां पास, योग की बात चली थी खास।
देख सेठ को आया रोष, लगा बखानन धर्म के दोष।
साधुओं के उस दोष बखाने, तथा धर्म के इसी बहाने।
ब्राह्मण को उस खूब लताड़ा, हरानन्द को बहुत ही ताड़ा।
आगे से ना उत्तर पाया, लौट के वह फिर घर को आया।
योग भक्ति का गुण तो देखो, क्षमा शीलता हरि की पेखो।
प्रभु का कारज था उस करना, क्रोध से न कुछ लेना धरना।

दो० काम क्रोध वा लोभ के, होते वही अधीन।
जिनके मन में न बसे, मूरत राम नवीन॥ ४०७

सेठ जब घर की ओर पधारा, हरानन्द मन प्रभु को धारा।
प्रभु आज्ञा जो उस ने पाई, ब्राह्मण को कह बात सुनाई।
प्रभु जी हम को यह फरमावें, मन्दिर का निर्माण करावें।
यही सेठ सब काज करावे, सर्व प्रथम प्रभु शरणी आवे।
मन में रोष न धारो लेश, मोह वश व्यापें जग को क्लेश।
मोह का हरण जब हि हम करते, मूढ़ों का अज्ञान हैं हरते।
बुद्धि उन की निर्मल होवे, पापी के सब दोष वह धोवे।

ज्ञानी दया पापी पर करते, ज्ञान के जल से मल वे हरते।

दो० ज्ञानी जन संसार को, सिखावें मार्ग योग।
राग द्वेष की आग से, बच पावें जिमि लोग॥ ४०८

संध्या काल जभी चलि आया, ब्राह्मण अपने सदन सिधाया।
हरानन्द नित्य कर्म को करके, बैठा प्रभु के ध्यान को धर के।
उधर सेठ निज करनी सिमरे, इक पल डूबे इक पल उबरे।
हिंसा के जो कर्म कमावे, पापी किमि मन में सुख पावे।
क्या वह अपने मन में देखे, अथवा सन्मुख नेत्रों पेखे।
उस का हाल न किसे बतावे, अपने मन ही घुट वह पावे।
हरानन्द से भय जब पावे, अहं भाव से उसे दुरावे।
अथवा मन से क्षमा मनावे, प्रभु बख्शो मुख से कह पावे।

दो० ऐसी हालत में पड़ा, बीते मुश्किल काल।
भला माने वह नींद को, यदि आवे तत्काल॥ ४०९

सारे दुःख को नींद भुलावे, सेठ व्याकुल उसे बुलावे।
आयी नींद न उस ने जानी, बे सुध पड़ा सेठ सन्मानी।
आयी नींद न कोई जाने, सपने को भी सत्य ही माने।
देखा सेठ ने स्वप्न भयंकर, साधु पीटे बैठ के ऊपर।
ऊपर नीचे उस को पटके, खाट उल्टे वा नीचे सटके।
हाहाकार थी सेठ मचायी, सुन कर आये लोग लुगायी।
भय का कारण न कुछ दीखे, फिर भी सेठ चिलाये चीखे।
उधेड़ बुन में रात बितायी, भोर भई तब जग सुखदायी।

दो० हुआ प्रातः काल जब, जागा सब परिवार।
सब के मन में सोच यह, कैसे हो निस्तार॥ ४१०

वहां पर सब ने आ कर देखा, सेठ खाट के नीचे पेखा।
सब ने मिल कर उसे जगाया, जागा वह पर था घबराया।
सब ने उस का पूछा हाल, कहने लगा वह हो बेहाल।
साधू आया जो उस पार, उस की देखी शक्ति अपार।
उस का रूप भयंकर देखा, ऐसा स्वप्न कभी न पेखा।
उस को सिद्ध जानो तुम पूरा, मानो न कोई साध अधूरा।
चलो करें हम उस की सेवा, श्रद्धा से जिमि पूजें देवा।
ब्राह्मण ने जो सेव कमायी, मनो कामना उस से पायी।

दो० सन्त जगत में बहुत हैं, सच्चा विरला कोई।
सच्चा सन्त जब आ मिले, सेव करें भल होई॥ ४११ क

सब को इस विधि कह कर, सेठ उठा तत्काल।
हरानन्द को जाय कर, बोला अपना हाल॥ ४११ ख

हरानन्द निज शक्ति गोपी, बात कही जो मन थी रोपी।
तुम हो सेठ अती धनवान, शक्ती द्रव्य से पायी महान।
पूर्व के शुभ कर्म कमाये, इस से द्रव्य अनेकों पाये।
आगे को शुभ कर्म कमावो, ऐसा ही सुख फिर भी पावो।
शुभ कर्म न जीव कमावे, अधोगति को तब ही पावे।
धर्म कर्म में तव द्रव्य लागे, जिस से शुभ तुम्हारा जागे।
ईश्वर का तुम नाम अब लेना, परमार्थ में निज द्रव्य देना।
परमार्थ में तन धन लावें, परम सुभागे वही कहावें।

दो० ममता मोह को त्याग कर, ईश्वर के मग लाग।
बहुर न जीवन यह मिले, लगे सकल इस माग॥ ४१२

साधु की यह बात जो सारी, सुन कर मन में सेठ विचारी।

भ्रम बुद्धि का हुआ जो ठीक, भली लगी तब धर्म की लीक।
कहा हरि को कर प्रणाम, जो आज्ञा मैं करूं वह काम।
हरि ने धर कर प्रभु का ध्यान, कहा मन्दिर का हो निर्माण।
बिन देवालय नगरी सारी, प्राण बिना जिमि देह हो भारी।
सेठ ने आज्ञा वह स्वीकारी, मन्दिर की तब कीनि तय्यारी।
कलाकार अनेक बोलाये, सेवक गण सामग्री लाये।
देख देख सब हुये हैरान, खड़े हुये जनता के कान।

दो० सब जनता हैरान थी, यह कुछ देख समक्ष।
कट्टर विरोधी धर्म का, आस्तिक बना प्रत्यक्ष॥ ४१३ क

उसको बदला देख कर, बदल गये नर नार।
शरण हरि की आये, किया योग स्वीकार॥ ४१३ ख

बहु जनता जब योग में लागी, सेठों की तब होश थी भागी।
उनके मनहिं विरोध समाया, धर्म कर्म ना उन को भाया।
देख मन्दिर की रचना सारी, ईर्षा जागी उन मन भारी।
पहले जनता को उन रोका, वह न मानी सेठ को टोका।
वहाँ भी जब न चल कुछ पायी, हरि को पाछे आन सुनायी।
हरि को सेठों ने धमकाया, छोड़ो नगरी उसे सुनाया।
उपद्रव उन का किमि लिख पायें, इस विषय में मौन अपनायें।
हरि ने सब अपमान सहारा, प्रभु की इच्छा को सत्कारा।

दो० प्रभु की इच्छा पर रहें, उनमें यही विशेष।
मान और अपमान को, भक्त गिनें न लेश॥ ४१४ क

मूरख नर अभिमान वश, ध्यान धरें न लेश।
कर्म गती को न लखें, पावें अन्त क्लेश॥ ४१४ ख

हरिहरानन्द को धमकाये, पाछे घर को सेठ वे आये।
जैसा करे वैसा नर पावे, कर्म के फल पर फिर पछतावे।
रात्री को जब वे सो पाये, अपने कर्म ही सन्मुख आये।
साधु उन को स्वप्न में आया, जिस ने उन को अति धमकाया।
रात सकल भय मग्न बितायी, प्रातः हुई कुछ शांति पायी।
दूजी रात भी इमि बितावें, साधु अवज्ञा का फल पावें।
अन्त में शक्ती को पहचाना, शरण आये निज हाल बखाना।
हम दोषी तुम को ना जाना, धर्म ढोंगी कोई हम ने माना।

दो० सिद्ध पुरुष जो आप हैं, कीना नगर सनाथ।
सेवा हमको बोलिये, पूछें बांधे हाथ॥ ४१५ क

पाछा दोष भुलाय कर, लेवो नाथ अपनाय।
जिस विध सेवा हम करें, देवो आप बताय॥ ४१५ ख

हरिहरानन्द प्रभु को ध्यावे, बिगड़ा कारज जो बनावे।
उस के मन अचम्भा भारी, स्थिती किमी यह बदली सारी।
कौन करे यह सारा काज, नगरी देखे जिसको आज।
फिर मन उपजा उस के बोध, प्रभु करावें कारज शोध।
जिन दासों पर प्रभु का हाथ, प्रभु सदा रहें उन के साथ।
मन में प्रभु को कर प्रणाम, सेठ को बोला फिर हरि राम।
प्रभु की शक्ती जो तुम जानी, आस्तिक जीवन की सहदानी।
इससे बड़ा न कारज माने, आत्मिक जीवन नर पहचाने।

दो० आत्मा को जो चीहनता, भाग्य भरा नर नार।
उससे बढ़ कर क्या करे, जीवन में उपकार॥ ४१६ क

आत्म ज्ञान को योग से, पावे भक्त सुजान।
योग बिना न कुछ मिले, वेदन का प्रमान॥ ४१६ ख

छोड़ भोग तुम योग अपनाओ, अपना जीवन सफल बनाओ।
जन की सेवा में तुम लागो, झूठी ममता को अब त्यागो।
किरपा करें उसी पर देव, जनता की जो करता सेव।
जनता में जनारधन पावो, कर सेवा तुम उसे रिझावो।
छाया ना तुम जिस पर पाओ, दे कर वास उसे अपनाओ।
सरदी गरमी जिसे दुखावे, तेरे से वह सब सुख पावे।
भूखा देखो जब कोई बन्दा, भोजन का तुम करो प्रबन्धा।
जीव जन्तु सब रहें सुखारी, ऐसी राखो इच्छा भारी।

दो० तन मन धन जो जीव के, जब लागें सब सेव।
उसका जग में मान बढ़े, स्वयं सराहवें देव॥ ४१७

सेठों ने यह शिक्षा पायी, हरि के प्रति भक्ति अधिकायी।
कर जोड़े वे इमि पुकारे, आप गुरु हम शिष्य तुम्हारे।
अब तुम सदा यहीं रह पाओ, नगरी छोड़ न यहां से जाओ।
बोला हरि हम गुरु के दास, जाना चाहवें निज गुरु पास।
उन की आज्ञा से हैं आये, वियोग गुरु ना हम को भाये।
जिस मारग वें हमें लगायें, वह हम मारग तुम्हें बतायें।
नित्य निरन्तर प्रभु को ध्यावो, जीवन में शुभ कर्म कमावो।
गुरु को जानों सदा ही पास, सुधरें कारज पूजे आस।

दो० गुरु मेरे भगवान हैं, धारा योगी रूप।
सकल देवों के ईश जो, राखें निज को गूप॥ ४१८

उन के पास अब चल के जाऊं; दर्शन उन के शीघ्र पाऊं।
गुरु चरणों में जो आनन्द, हीन है उस से परमानन्द।
सुन सेठों ने पुनः पुकारा, नाथ हमें दें गुरु सहारा।

किस सहारे हम रह पायें, छोड़ हमें जब आप ही जायें।
अथवा ऐसा कर्म बतायें, जिस में जीवन सकल लगायें।
हरिहरानन्द तब बतलाया, प्रभु ने हम को यह फरमाया।
इस नगरी में धर्म बढ़ाओ, मन्दिर का निर्माण कराओ।
एक भण्डारा यहां चलाओ, धर्म शाला भी साथ बनाओ।

दो० कारज यह तुम सब करो, प्रभु का राखो ध्यान।
श्रद्धा जिसके चित्त बढ़े, उसका हो कल्यान॥ ४१९

श्रद्धा से तुम कर्म करावो, प्रभु की सेवा में चित्त लावो।
ईश्वर का सब में आवास, जिस का जग में हो आभास।
उस का ही तुम सब कुछ जानो, त्याग भाव से अपना मानो।
देख विभूती मत ललचावो, "ईश्वर की यह" मन में लावो।
ईश्वर का हो ईश्वर अर्पण, इससे बड़ा न और समर्पण।
सेठों ने प्रभु भाव को जाना, कर्म योग का रहस्य पहचाना।
त्याग भाव से सेव कमावें, फल की कामना मन न लावें।
जग में ऐसा जीवन यापें, पंक में पंकज जिमि व्यापें।

दो० निश्चय ऐसा धार कर, हरि का सुन उपदेश।
पालन सेठों ने किया, जैसा था आदेश॥ ४२० क

हरि के मन सन्तोष था, देख धर्म प्रचार।
विदा वहां से तब हुआ, मन में प्रभु को धार॥ ४२० ख

३४. रामा द्वारा स्वर्ग से दिव्य पुष्प लाना।

पूर्व की उस राह अब लीनी, लेश बिलम्ब न मात्र कीनी।
अवधि बीतन पर थी आयी, अखरे उस को नाथ जुदायी।

उधर सुनो नदियां का हाल, योग की धार बहे सब काल।
रामा रहे ध्यान में लीना, अथवा सेवा में तल्लीना।
जग जंजाल था उस विसराया, पूर्ण प्रभु में चित्त था लाया।
घटना एक अलौकिक गायें, योग सिद्धि की महिम बतायें।
रामा समाधि में थी लीना, भक्तों मध्य प्रभु आसीना।
ज्योति एक टूटती आई, भक्तों को जो दीन दिखाई।

दो० भय वश सबने पूछा, कथो हमें यह गाथ।
तारा कैसे टूटता, दिन में जग के नाथ। ४२१ क

अन्तर्यामी आप हैं, घट घट जाननहार॥
है यह कोई उपद्रव, या घटना बिन सार॥ ४२१ ख

देखा प्रभु ने आंख उठाकर, बोले फिर मुख से मुस्काकर।
भक्तो यह न तारा टूटा, है यह पुष्प स्वर्ग से छूटा।
रामा स्वर्ग का चक्र लगाया, वहां से उसने पुष्प चढ़ाया।
उतरे अभी यहां पर आकर, देखो फिर तुम ध्यान लगाकर।
वस्तु स्वर्ग की यहां न आवे, योग सिद्धि से इमि हो पावे।
रामा को प्रभु सिद्ध बनाया, तभी तो ऐसा कर्म दिखाया।
जभी प्रभु ने यह फरमाया, चरणों में वह पुष्प आ आया।
वह अनोखा एक था फूल, ज्योति ही थी जिस की धूल।

दो० जग मग ज्योति जग रही, जन देखें ला ध्यान॥
श्रद्धा भक्ति से कहें, प्रभु लीला बलवान। ४२२

रामा को फिर आ सब देखें, सुन्न समाधि में ही पेखें।
समाधि से फिर ज्यों उठ पायी, प्रभु चरणों में सीधी आई।
दण्डवत आ कर उस ने कीना, प्रभु चरणों में आसन लीना।

शांभव मुद्रा में लख पावे, न आंख झपे न दृष्टि चलावे।
प्रभु की मूर्ति इमि तक पावे, गंगा सागर में ज्यों जावे।
कौन अवस्था उस की जाने, क्या देखे वा क्या पहचाने।
अवस्था उस की प्रभु ही जाने, जिस दीनि हो वही पहचाने।
इतने में हरि हर भी आया, बिछुड़ प्रभु से दुःख जिस पाया।

३५. हरिहरानद का मारवाड़ से लौटना।

दो० बिछुड़ प्रभु से जो गया, दिवस साठ पर्यन्त।
बीते युग उसको लगें, होवे न जिनका अन्त॥ ४२३ क

प्रभु चरणों में आ गिरा, समाधि में हो लीन।
मग्न प्रभु के प्रेम में, जैसे जल में मीन॥ ४२३ ख

प्रभु जी उसको प्रेम से, कहें उठो अब तात।
कैसे काल बिताया, हमें बताओ बात॥ ४२३ ग

सुन कर प्रभु की सुंदर वाणी, अमृत रस से थी जो सानी।
कर स्पर्श फिर प्रभु के पाये, हरिहरानन्द नयन उघाये।
हाथ जोड़ वह सन्मुख राजे, आसन पर थे प्रभु वीराजे।
प्रभु ने पूछा उस का हाल, बोल सका न वह तत्काल।
कण्ठ भराया रुन्धे थे नयन, मुख पै आये न उस के बयन।
किया यत्न मन की कह दीनी, नाथ परीक्षा कठिन यह लीनी।
लाखों दण्ड मैं चाहे पाऊं, चरणों को न छोड़ के जाऊं।
चरण मुझे ये प्राणाधार, जग जीवन के जो हैं सार।

दो० इन चरणों के आसरे, प्रभो बितावूं काल।
भव की बाधा जब पड़े, स्मरण करूं तत्काल॥ ४२४ क

स्मरण करूं तत्काल मैं, लेते आप उबार।
नाथ हो अन्तर्यामी, जानो मम तुम सार॥ ४२४ ख

हरिहरानन्द वर्णन कीना, यात्रा का सब हाल कह दीना।
जहां जहाँ उस ने काल बिताया, प्रभु चरणों को जिस विध ध्याया।
मारवाड़ में जो थी बीती, जिस विध नाथ ने रक्षा कीती।
नास्तिक जन जिमि नाथ उबारे, ब्राह्मण दम्पति जैसे तारे।
सब कुछ उस ने दीनि सुनाई, प्रभु की कृपा प्रभु बतलायी।
भक्त जनों ने अचरज माना, प्रभु का अद्भुत बल पहचाना।
प्रभु चरणों में शीश झुकाया, "जयकारा गुरु देव" बुलाया।
उठ कर फिर प्रभु भीतर आये, हरानन्द निज संग वे लाये।

३६. नदिया से श्री प्रभु जी का प्रस्थान और रामा की व्याकुलता।

दो० हरानन्द को नाथ ने, आज्ञा कीनि प्रदान।
सूचित संगत को करो, प्रात करें प्रस्थान। ४२५

हरानन्द ने शीश झुकाया, आ कर संगत को बतलाया।
साधु सदा रहत हैं तय्यार, उन का न कोई घर न बार।
साधन से ही उन की प्रीत, मानें गुरु को केवल मीत।
इंगित गुरु का जिस दिक पावें, अपना चित्त भी उधर घुमावें।
रामा ने जब सुन यह पाया, प्रभु ने जाने का फरमाया।
उस के मन हुई चिन्ता भारी, सोच में रात बिताई सारी।
प्रातः काल प्रभु ढिग आकर, अपने मन का हाल बताकर।
दम्पति बोले कर प्रणाम, किस त्रुटि का यह परिणाम।

दो० आप छोड़ कर जा रहे, करके हमें अनाथ।
दासन का अपराध जो, आप बतावें नाथ॥ ४२६

हम बालक तुम हो हितकारी, हम दोषी तुम दोष निवारी।
हम शरणी तुम शरण में लेते, धार पड़ी नौका को खेते।
तुम जाने की करो तयारी, हम से पूछो दशा हमारी।
क्यों जल से हो मीन बिछोड़ो, जाने का अब निश्चय छोड़ो।
जो अपराध हुआ हो हम से, नाथ विसारो उस को मन से।
क्षमा शील हो आप स्वामी, बखशो दोष हे अन्तर्यामी।
जिस विध आप ठहर यहां पायें, हम को स्वामी वही बतलायें।
जिस सेवा की आज्ञा पावें, वही सेवा हम कर दिखलावें।

दो० दया दृष्टि को धार कर, विनय करो स्वीकार।
दास अभागे प्राण को, धारें जिस प्रकार॥ ४२७ क

ऐसी विनय सुनाय कर, मौन लिया उन धार।
रामा के मुख पर बही, अश्रुन की बहु धार॥ ४२७ ख

उन को प्रभु जी तब फरमाया, अपना निश्चय प्रकट सुनाया।
आशुतोष वा रामा बाई, साधन में जो रत हो भाई।
और जो प्रभु को सदा ध्यावे, क्षण न इक उस को विसरावे।
प्रभु प्रीत हो जिस मन माहीं, देखे प्रभु को सब ही थाहीं।
कन कन प्रभु का दर्शन पावे, भेद भाव ना मन में लावें।
जड़ चेतन इक ज्योति देखे, दिव्य भावना से सब पेखे।
जग की आस सकल जो त्यागे, मोह ममता में न अनुरागे।
लाभ हानि को सम कर जाने, दुःख सुख प्रभु की इच्छा माने।

दो० ईश्वर इच्छा मान कर, करे शोक का नाश।

दुःख और वियोग में, कभी न होय हताश ॥ ४२८

योग भक्ति में चित्त को लावो, गृहस्थी के सब कर्म कमावो।
मेरी शिक्षा को तुम मानो, दुःख का लेश न मन में आनो।
हम साधु तुम गृहस्थी भाई, संग हमारा किमि हो स्थायी।
हम अब घोर बनों को जावें, लौटें तब जब प्रभु लौटावें।
तुम यहां सुख पूर्वक रह पावो, और निरन्तर प्रभु को ध्यावो।
दे उपदेश प्रभु उठ पाये, चलने को थे चरण बढ़ाये।
बंद आंख रामा खड़ पायी, रोके द्वार खड़ी दिखलायी।
उस को नाथ बहुत समझाया, टस से मस ना उस को पाया।

दो० द्वार खड़ी वह रोककर, समाधि में हो लीन।
स्मरण प्रभु महासागर, मन था उसका मीन ॥ ४२९

प्रभु का इंगित जो थी जाने, आज्ञा पालन जीवन माने।
वह रामा न बात पहचाने, प्रभु की आज्ञा आज न माने।
उस का देखा हठ यह भारा, प्रभु ने आसन फिर स्वीकारा।
ऐसे ही तहं दिवस बिताया, रात्रि भर वहीं डेरा लाया।
प्रातः शौच को जब पधारे, लौट के पग न तहं प्रभु धारे।
रामा नींद में थी सिधाई, उस ने सुध न प्रभु की पाई।
प्रातः जागी प्रभु को ध्याया, उन को चलते वन में पाया।
अपनी निद्रा को धिक्कारा, जिस ने उस को मोह में डारा।

दो० रामा उठी तुरंत तब, आई पति के पास।
ठाडी सिर लटकाय वह, होकर परम उदास ॥ ४३०

आशुतोष ने पूछा हाल, हुई तुम ऐसी क्यों बे हाल।
रोते रोते उस कह दीना, हम को प्रभु ने है ठग लीना।

प्रभु ने हम को दीना त्याग, हमारे ऐसे मन्द हैं भाग।
छोड़ हमें वे वनहिं पधारे, ऐसे खोटे भाग हमारे।
उठो चलो हम उन को लावें, जैसे भी हो ले कर आवें।
आशुतोष को हुआ सन्देह, उठ कर देखा प्रभु का गेह।
सचमुच उस को शुन था पाया, देख कर मन में भय समाया।
रामा कहे अब जल्दी चालो, तेजी से चल प्रभु को पा लो।

दो० दूर प्रभु हैं जा रहे, मण्डली उनके साथ।
हमसे मुख को मोड़ कर, कीना हमें अनाथ॥ ४३१

प्रभु के पाछे वे चल पाये, रामा मग दिखलाती जाये।
जिधर जिधर वह मण्डली जावे, रामा सुधि थी सारी पावे।
बात दूर की इमि लख पावे, जैसे संजय कथा सुनावे।
बंद आँखें ही मारग टोले, बात पते की मुख से बोले।
दिव्य नेत्र से प्रभु को निहारे, अद्भुत कर्म करे वह सारे।
अद्भुत शक्ति जिन से पायी, हुवे प्रभु वे आज विदायी।
रामा हिरदय में पछतावे, उस से वियोग सहा न जावे।
लौट प्रभु जी अब जो आवें, मानो भरत राम को पावें।

दो० चलते चलते दिन ढला, नाथ न दीखे पास।
अवश्य मिलेंगे वे प्रभु, मन में दृढ़ विश्वास॥ ४३२ क

अवश्य प्रभु मिल पायें, ऐसा मन में धार।
रात बिताई ग्राम में, उठ चले भिन्नसार॥ ४३२ ख

सारा दिन जब चलते बीता, प्रभु का दर्शन कहीं न कीता।
सायं काल इक मन्दिर आया, रामा ने पग उधर बढ़ाया।
जन कुछ बैठे मन्दिर अन्दर, धर्म चर्चा वे करते सुंदर।

उन से बात यही मिल पाई, प्रभु लीनी मध्याह्न विदाई।
प्रभु की सुध रामा ने पाई, मन में प्रकट भयी हर्षाई।
आज नहीं तो कल मिल पावें, प्रभु के मग पर चलते जावें।
प्रभु ने कीना मग यह पावन, इस की रज है पाप नशावन।
इस मग पर जब निशा बितावें, प्रभु की पग रज माथे लावें।

दो० जन्म जन्म के पाप को, करती रज वह नास।
कर्म हमारे भी कटें, मन में यही विश्वास॥ ४३३

प्रभु ने जो है हमें त्यागा, मानूं मैं निज भाग अभागा।
पुण्य कर्म से प्रभु को पाया, खोटे कर्मों ने बिसराया।
दया प्रभु जो पुनः कर पावें, दर्शन दे कर वे अपनावें।
रात बितावें हम इस ठौर, खोजें प्रभु को होते भोर।
हे प्रभु मोहे लो अपनावो, मेरे सारे दोष भुलावो।
अब बखशो तुम जग के तारण, मैं दोषी तुम दोष निवारण।
इस विध मन में प्रभु मनाया, चरणों में फिर शीश झुकाया।
सिर तो झुका झुका रह पाया, रामा चित्त प्रभु चरणि सिधाया।

दो० निशाकाल अब हो गया, छाया था अंधकार।
उधर प्रभु थे देखते, रामा मन का सार॥ ४३४ क

घर बार सब भूल कर, निकली ढूंढन नाथ।
मन उसका प्रभु पास था, तन चलता था पाथ॥ ४३४ ख

तन से थी वह पथ पर चलती, मन में प्रभु का ध्यान वह करती।
तन था पथ के श्रम को वहता, मन में भक्ति का रस बहता।
समाधि में वह पड़ी थी ऐसे, प्राण होवें न तन में जैसे।
प्रभु ने उस का प्रेम जो देखा, दया धार कर किया उल्लेखा।

अब न ढूंढन और यह पावें, कल को दर्शन कर के जावे।
मन में निश्चय धारा जब ही, सुख रामा मन उपजा तब ही।
प्रातः काल प्रभु उठ पाये, भक्त एकत्र हो चल आये।
सब को प्रभु ने दिया आदेश, आज ठहरें हम इसी प्रदेश।

दो० तब भक्तों ने मान कर, प्रभु का यह आदेश।
उस दिन सारी मण्डली, रुक पायी उस देश ॥ ४३५

प्रात हुई रामा उठ पायी, रात्रि थी उस ध्यान बितायी।
ऐसा आज था उस का भाव, प्रभु मिलने का जैसा चाव।
सिमिर प्रभु वह चलने लागी, ध्यान की जोती उस मन जागी।
जिस दिक् प्रभु को ध्यान में पाती, उसी दिशा में कदम बढ़ाती।
मध्य दिवस वे वहाँ जा पाये, जहां प्रभु थे आसन लाये।
रामा चरण प्रभु अनुरागी, सब से पहले प्रभु पग लागी।
पाछे सब ने दर्शन पाये, प्रभु चरणों में शीश झुकाये।
आशीर्वाद सबन ने पाया, मुख से प्रभु ने तब फरमाया।

दो० भक्तो जानूं भाव को, जैसा सब मन माहिं।
मेरे पीछे आ गये, कीना उचित नाहिं ॥ ४३६

पीछे पीछे सब का आना, हम ने उचित ना यह जाना।
गृहस्थी घर में ही रह पायें, जग मर्यादा सकल निभायें।
योग धर्म को घर में पालें, साधन में निज जीवन ढालें।
जैसी शिक्षा गुरु से पावें, क्रिया में वे सब कुछ लावें।
भावुकता को तुम अब त्यागो, योग भावना में अनुरागो।
योग साधन में चित्त तुम लावो, योग ध्यान से प्रभु को ध्यावो।
बात हमारी अब तुम मानो, हित इसी में अपना जानो।
जाओ लौट तुम अपने स्थान, और करें हम फिर प्रयान।

दो० ऐसी शिक्षा देय कर, प्रभु भये जब मौन।
भक्त प्रभु से यो कहें, "हे जग के सुख भौन ॥ ४३७

घोर वनों में तुमरा जाना, और हमारा यहीं रह पाना।
मन हमारा किमि यह माने, गुरु से बिछुड़न का दुःख जाने।
आप यहां पर रह अब पाओ, अथवा संग हमें ले जाओ।
प्राण भक्त के गुरु आधारा, और न जग में उसे सहारा।
ऐसी कृपा अब कर पाओ, संग राखो न त्याग के जाओ।
भक्ति की हम जानें रीत, गुरु से करते साची परीत।
तन को धन को ना कुछ जानें, गुरु चरणों को सब कुछ मानें।
निज चरणों का देय सहारा, तुम राखो अब मान हमारा।

दो० निमानो के तुम मान हो, पत तुम्हारे हाथ।
दर दर ना भटकाइये, करके हमें अनाथ ॥ ४३८

सब जन जब थे यों कह पाये, और शीश थे चरणि झुकाये।
मन में प्रभु ने तब अनुमाना, सब भक्तों का हो कल्याणा।
सब को प्रभु ने शिक्षा दीनी, ध्यान योग की दीक्षा दीनी।
इष्ट देव का ध्यान ध्यावो, योग समाधि इस विध लावो।
रामा को तब प्रभु उठाया, आशुतोष को वचन सुनाया।
अब यह ध्यान न गूढ़ लगावे, गृहस्थी के सब कर्म कमावे।
रामा प्रभु की इच्छा जानी, क्रिया योग की रीत पहचानी।
तप स्वाध्याय ईश की भक्ति, गृहस्थी कर यह पाये मुक्ति।
रामा ने दृढ़ निश्चय धारा, गुरु की आज्ञा को सत्कारा।

दो० गुरु की आज्ञा मान कर, चलने को तैयार।
मन इच्छा इक उपजी, करें प्रभु स्वीकार ॥ ४३९ क
करें प्रभु स्वीकार जो, देवें हमको दान।

अपने रूप अनूप का, चित्र करें प्रदान। ४३९ ख

रामा आशुतोष जतलाया, प्रभु को उसने वचन सुनाया।
भगवन रामा के मन आई, लें चित्र तब दें विदाई।
हम सब की यह इच्छा नाथ, रूप आप का राखें साथ।
मन जब जग से ताप को पावे, रूप आप का धीर बंधावे।
संकट व्यापे जभी भगवान, आप का सिमरन करता त्रान।
अपना चित्र हमें दे पावो, और हमें न कभी भुलावो।
हम तो दासन के हैं दास, तव चित्र राखें हृदय पास।
हिरदय में तव वास बनावें, मन बुद्धि से तुम को ध्यावें।

दो० आज्ञा हमको दीजिये, चित्र खींचें नाथ।
आशीर्वाद फिर पायकर, लौट जायें इक साथ॥ ४४०

विनती प्रभु जी ने सुन पायी, भक्तों से उन लीनि विदायी।
एक क्षण पर रुक उन पाया, आशुतोष से चित्र खिचाया।
चले चित्र को लेय संभाले, जैसे प्रभु हो संग ही चाले।
सब के मन था चाव विशेष, प्रभु रहें जिमि उसी प्रदेश।
चित्र को वे प्रभु सम जानें, श्रद्धा सहित उसे सन्मानें।
चित्र को भगवान जो माने, इष्ट भावना उस में आने।
जड़ चेतन का भेद विसारे, ईश्वर मान चित्र सत्कारें।
उस के लिये चित्र भगवान, मीरा तुलसी दास प्रमान।
धन्ना भक्त प्रमाण दिखाया, जिसका भोग प्रभु ने खाया।

दो० सर्व व्यापक नाथ हैं; बाधा उन्हें न लेश।
निज शक्ति प्रकटायें, जिस घट चाहें विशेष॥ ४४१

मूर्ख नर न शक्ति पहचानें, प्रभु की महिमा सीमित जानें।

बंधन प्रभु पर वे लगावें, अपनी मूरखता प्रकटावें।
भाव भक्ति से प्रभु जो ध्यावें, इक मन हो जो ध्यान लगावें।
सब कुछ प्रभु से वे नर पावें, प्रभु प्रकटें वा कर्म करावें।
रे मन चित्र ना चित्र जानो, प्रभु चित्र में प्रभु पहचानों।
वही चित्र तुम निज में धारो, भाव भक्ति से फिर सत्कारो।
बने देह देवालय तेरा, सब देवों ने जिस को घेरा।
देवों के संग रह फिर पावो, कल्प वृक्ष सम तुम हो जावो।

दो० इस भूमि पर स्वर्ग को, ला पावें वे लोग।
मनमें प्रभु को धार कर, करते जो हैं योग॥ ४४२

३७. छूत का भूत।

मण्डली संग तब प्रभु सिधाये, बंग की सीमा लांघ के आये।
देश असम देखा उन भारी, घने वनों की भी छवि न्यारी।
सद्गुरु को वे खोजें वन में, वस्ती त्याग रहें जो घन में।
वन की छवि देख प्रभु भारी, बोले मुख से भक्त हितकारी।
भक्तो देखो प्रभु की माया, जड़ चेतन जिस जग उपजाया।
कैसी सुंदर है हरियारी, जिस पर उगी वनस्पति भारी।
सुंदर सुंदर कीट पतंगे, उछलें घास में जिमि तरंगे।
पक्षी कलरव करते भारी, सूत्र पाठ करें ब्रह्मचारी।

दो० सिंह भालु और हस्तिगण, विचरें बिन संकोच।
कुःशासन को पाय कर, कर्म बढें जिमि पोच॥ ४४३ क

कर्म बढ़ें जब पोच जग, उतरें श्री भगवान।
तैसे उस प्रदेश में, नाथ करें पद यान॥ ४४३ ख

असम देश में आ भगवन्ता, ढूंढन लागे साधु सन्ता।
साधु एक प्रभु ढिंग आया, उस मण्डल में वह मिल पाया।
मण्डल के संग रहने लागा, निज स्वभाव पर उस न त्यागा।
देख प्रभु मन माहिं विचारा, संग दोष वश है यह न्यारा।
इस का दोष न माने कोई, जैसा संग वैसा नर होई।
जब यहां कुछ काल बितावे, योग धर्म को यह अपनावे।
वह न किसी का छूआ खाता, लगे हाथ तो फैंक दिखाता।
दे चौंका वह अन्न पकाता, पाँव पड़े पक्वान फेंकाता।
होवे मण्डली को प्रतीत, यह सब मूर्खता की रीत।

दो० चौंके में जन पग धरें, उपजे उसको क्रोध।
पके पकाये अन्न को, फैंके वह बिन बोध॥ ४४४ क

फैंके वह बिन बोध के, पका पकाया अन्न।
यह भी कैसा धर्म है, छूआ छूत संपन्न॥ ४४४ ख

ऐसी चर्चा सब में चाले, साधु कैसा धर्म यह पाले।
भूत छूत का उस के सर पर, चढ़ कर नाचें सारा दिन भर।
सब को था वह धुत धुत करता, किसी के मिल कर संग न चलता।
नशयों का भी वह अनुरागा, अद्भुत रोग यह उस को लागा।
प्रभु जी पर न उस को त्यागें, अंग संग ही उस के लागें।
उस की इच्छा पूरण करते, जो मांगे वह लाकर धरते।
शिक्षा उस को स्वयं वे देते, धैर्य से उस की भी सुन लेते।
प्रभु की बात प्रभु ही जानें, मन्द मती नर किमि पहचानें।

दो० ऐसा न्यारा साध जो, सबसे करता छूत।
प्रभु जी ने अपना लिया, निकाला उसका भूत॥ ४४५ क

प्रभु जी के उपदेश से, लगा ध्यान में साध।

योग युक्त होय देखी; ज्योति एक अगाध ।। ४४५ ख

ज्योति एक अगाध जो, जीव जन्तु के मांहि ।
उसके दर्शन पाय कर, कैसें छूत टिकाहिं ।। ४४५ ग

प्रभु जी ने उपदेशा; हें साधु प्रवीण ।
अछूत कोई न जगत में, धारो ज्ञान नवीन ।। ४४५ घ

धारो ज्ञान नवीन यह, अकेले खाना दोष ।
यज्ञ रूप मिल भोगिये, गीता का उपदेश ।। ४४५ ङ

प्रभु किरपा पा साधु बदला, मन रहा न छूत से गदला ।
सब के संग अब भोजन करता, चौका अपना अलग न भरता ।
जो कुछ लंगर में बन पाता, प्रसन्न वदन वह सब कुछ खाता ।
नशयों से अब हुई ग्लानी, करे नशा न योगी ध्यानी ।
मादक द्रव न योगी सेवे, विध्न ध्यान में उससे होवे ।
नशयों में ना वह अनुरागे, ध्यान की मस्ती में ही पागे ।
चरस धतूरा भांग वा दारू, मादकता सब करे खबारू ।
ध्यान खुमारी बड़ी न्यारी, उतरे दिन ना रात्री सारी ।

दो० मादकता के माद से, उपजे बहुत व्याध ।
अपने हित को जान कर, उसे न सेवे साध ।। ४४६ क

उसे न सेवे साध जब, गुरु किरपा को पाय ।
अपने तन की क्या कहें, संग लगे तर जाय ।। ४४६ ख

शक्ति दीनी साध को, होकर प्रभु दयाल ।
सेव नशे का त्यागा, उसका का बदला हाल ।। ४४६ ग

साध की हालत कौन बतावे, मस्ती वर्णन में न आवे ।

इक दिन देखी सब ने बात, साध था बैठा खाता भात।
तन की सुध बुध सकल विसारे, जय प्रभु जय प्रभु हि पुकारे।
सांड वहां इक चल तब आया, सन्मुख साध ठहर जो पाया।
जिस हाथ से साध था खावे, वही सांड के मुख में पावे।
एक ग्रास स्वयं वह खाता, दूजा सांड के मुख में पाता।
इमी भात सारा ही खाया, देख सबन अचरज हो पाया।
बात अनोखी साध कर पाई, भेद बुद्धि उस सब बिसराई।

दो० भेद बुद्धि को खोय कर, पशु को भात खिलाय।
प्रणाम सांड को कीना, अपना शीश झुकाय॥ ४४७

सांड को इक ने पत्थर मारा, साध चौंका माना दुःख भारा।
मुख से उस ने शब्द उचारे, प्रभु को किस ने पत्थर मारे।
उस की वाणी सुन कर न्यारी, भक्त बोले जा प्रभु को सारी।
प्रभु ने साध को पास बुलाया, सांड को प्रभु उस किमि कह पाया।
उसने प्रभु को शीश झुकाया, चित अपने का हाल सुनाया।
प्रभु का दर्शन सांड में पाया, प्रभु को ही उस भोग लगाया।
तभी किसी ने ईंट चलाई, मेरे मन में पीड़ हो पाई।
सहन न पीड़ा मैं कर पाया, दुःख में आ कर तब चिल्लाया।

दो० मेरी सारी गाथ यह, तुम सब जानो हाल।
अन्तर्यामी सद्गुरु, तुम प्रभु मैं बाल॥ ४४८ क

सुनकर उसकी बात को, भक्त कहें हे नाथ।
बदला कैसे साध यह, रह कर हमरे साथ॥ ४४८ ख

भक्तों ने यह प्रश्न जो कीना, प्रभु ने उत्तर उसका दीना।
भक्तो विदित है तुम को बात, चित्त की वृत्तियों का साक्षात।

वृत्ति जैसी चित्त में पेखें, दृश्य जगत भी वैसे देखें।
पंच भेद से वृत्तियां जानों, क्लिष्टाक्लिष्ट उन्हें पहचानो।
अक्लिष्ट वृत्ति से दुःख का हान, क्लिष्ट है चित्त में दुख की खान।
वृत्तियों का जब बदले रूप, क्लिष्ट बनें अक्लिष्ट स्वरूप।
पापी नर धर्मी हो जावें, सकल दुखों से मुक्ति पावें।
पूछें भक्त हे जग के त्रात, स्पष्ट करो यह फिर निज बात।

दो० पांच भेद प्रथम कहे, वृत्तियों के भगवान।
क्लिष्टाक्लिष्ट भेद से, दो फिर किये बखान॥ ४४९

मन्द बुद्धि हम को तुम जानो, सरल रूप में योग बखानो।
संशय जिस से सकल नसावें, ऐसा ज्ञान ही तुम से पावें।

३८. क्लिष्ट अक्लिष्ट वृत्तियों का वर्णन।

प्रभु जी ने फिर किया बखान, वृत्तियाँ मन की तरंगें जान।
तरंगों की न गिनती होई, वृत्तियां गिन सके न कोई।
भेदों से तुम उन को जानो, इस विध संख्या में ले आनो।
गुण भेद से दो ही मानीं, क्लिष्ट और अक्लिष्ट बखानीं।
राग द्वेष से युक्ता वृत्ति, क्लिष्ट वृत्ति की यह प्रवृत्ति।
बन्धन में यह नर को डाले, दुःख नरक में उस को घाले।
क्लिष्ट वृत्ति को जब नर त्यागे, राग द्वेष में न अनुरागे।

दो० मन की वृत्ति शुद्ध हो, अक्लिष्ट कहावे सोइ।
राग द्वेष से रहित जो, अहंभाव को खोइ॥ ४५० क

वृत्तियों के भेद

दो० वृत्ति के स्वरूप से, पांच हैं उसके भेद।

प्रमाण विपर्य विकल्प, कहें निद्रा स्मृति वेद ॥ ४५० ख
पांचों के हम अर्थ बतावें, जैसे शास्त्र हैं समझावें।

१. प्रमाण वृत्ति (प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम भेद सहित)

प्रत्यक्ष दीखे जो वस्तु भाई, वही प्रमाण स्पष्ट कहाई।
बिन देखे कोई कैसे माने, कारण से अनुमान में आने।
धूवें से जिमि आग का भान, इस को कहते हैं अनुमान।
सद्गुरु जो कुछ बात बतावें, उस को भी हम मान ही पावें।
गुरु की बात को आगम जानो, कभी न संशय उस में आनो।
प्रत्यक्ष अनुमान आगम ज्ञान, तीनों जानो यह प्रमाण।
तीनों से जो ज्ञान नर पावे, उस में संशय लेश न लावे।

दो० तीनों का जो ज्ञान यह, तीन जगत विख्यात।
त्रयी विद्या है मानती, इसी ज्ञान की बात ॥ ४५१ क

इसी ज्ञान की बात को, माने सब संसार।
संशय लेश न मन धरे, नर होवे वा नार ॥ ४५१ ख

२. विपर्य वृत्ति

दो० इसी ज्ञान से उल्ट जो, विपर्य कहावे सोय।
बुद्धि का भ्रम उपजे, रज्जु सर्प जिमि होय ॥ ४५१ ग

सद्गुरु करे जब ज्ञान प्रकाश, भ्रम बुद्धि का होवे नाश।
दे प्रमाण विपर्य नशावें, मन के भीतर ज्योति जगावें।
श्रद्धा उपजे मन के माहिं, चित्त की वृति सभी दृढांहिं।
साध की वृति दृढ़ हो पाई, भेद बुद्धि उस सकल नसाई।

उसे प्रत्यक्ष हुआ यह ज्ञान, व्यापक आत्म सकल जहान।
एक तत्व है सब घट माहीं, घृणा योग्य न कुछ भी आहीं।
योग से पाकर यह प्रमाण, छोड़ छूत निज किया कल्याण।
सत्य ज्ञान उस योग से पाया, मिथ्या भ्रम को सकल मिटाया।

दो० बदला इमि है साध यह, पाकर तत्व ज्ञान।
योग के साधन कीने, मिल पाया प्रमाण॥ ४५२

प्रभु ने बात सबन समझाई, जैसे साध ने सन्मति पाई।
भक्तों ने भी ज्ञान को पाया, वृत्ति विषयक भ्रम गंवाया।
एक विनय मुखराम सुनाई, "अन्तर्यामी जग सुखदाई।
प्रमाण विपर्य तो आप बताये, विकल्प आदि हैं नहीं समझाये।
हम पर कृपा करके नाथ, वर्णन उनका भी हो साथ।"
प्रभु जी ने तब वचन सुनाया, विकल्प आदि का रहस्य बताया।
गूढ़ ज्ञान को प्रभु बतावें, थोड़े में ही उसे लिखावें।
लेखनी में कहां शक्ति भारी, बात प्रभु की लेपे सारी।

दो० गुरु मुख गूढ़ ज्ञान का, न उपजा लेखन हार।
ग्रन्थ भरे हैं ज्ञान से, गुरु बिन मिले न सार॥ ४५३

३. विकल्प वृत्ति

विकल्प वृत्ति को प्रभु समझाया, शक्ति मन की को जतलाया।
मन सृष्टि का करे विस्तार, और फिर उस का करत संहार।
बिना वस्तु मन जगत बनावे, वृत्ति वही विकल्प कहावे।
जैसा सुना वैसा कर पावे, रचने में वह देर न लावे।
मन की शक्ति अति अगाध, योग युक्त हो बने नर साध।
शिव संकल्प योगी कर पावे, भव की बाधा को तर जावे।

ध्यान धारणा इस विध होवे, योगी बन नर भव को खोवे।
विकल्प शक्ति मन की को धार, योगी करे आत्म उद्धार।

दो० विकल्प वृत्ति को युक्त कर, योगी नर हो पाय।
वृत्तियों का निरोध ही, उत्तम योग कहाय॥ ४५४

४. निद्रा वृत्ति

निद्रा में जब नर सो पावे, चित्त निरंकुश शोर मचावे।
अथवा निज को ही खो जावे, निद्रा वृत्ति वही कहावे।
ऐसा धीर न जन्मा जग में, नींद में कर पावे मन वश में।
निरन्तर प्रभु को जो ध्यावे, निद्रा में भी ध्यान लगावे।
प्रभु भक्ति जब नींद में होवे, शृंखलित चित्त की वृत्ति होवे।
निद्रा योग साधन बन पावे, योगी अहर्निश योग कमावे।

५. स्मृति वृत्ति

अब तुम सुनो स्मृति का हाल, जो राखे पूर्व बात संभाल।
स्मृति सब वृत्तियों की मूल, इसके सधे रुधें सब शूल।
स्मृति शुद्ध जभी हो पावे, योगी के सब क्लेश मिटावे।
पुण्यों का फिर उदय हो जग में, सुख समृद्धि नर पावे पल में।

दो० स्मृति की परिशुद्धि से, योगी नर हो जाय।
भ्रांत वृत्ति को त्याग कर, आत्म तत्व लखाय॥ ४५५

प्रभु जी से यह सुन कर ज्ञान, मुखराम ने फिर किया बखान।
नाथ हमें करवावें बोध, किमि कर पावें स्मृति का शोध।
विकृत स्मृति जिस की हो जावे, कौन गति को नर वह पावे।
वृत्तियों का पा तुम से ज्ञान, अवश्य करें हम निज कल्याण।

वृत्तियों को हम शुद्ध कर पावें, और निरोध में उन को लावें।
आप के दास गहें यह रीत, सदा साधन में राखें प्रीत।
शक्ति आप की सदा सहायी, भक्तों को जो है सुखदायी।
चरण आप के जब मन ध्यावें, विघ्न बाधा सब दूर हटावें।

दो० रोग शोक विक्षेप सब, तब तक लागें नाथ।
ध्यावें जभी न आप को, और बिकें मोह हाथ॥ ४५६

प्रश्न प्रभु जी ने सुन पाया, मुख से नाथ ने तब फरमाया।
प्रश्न आप ने जो है कीना, स्मृति के विकार को चीना।
हम बतलावें तुम को भाई, विषयों का है संग दुखदाई।
चित्त में विषयों को जब ध्यावें, संग दोष से किमि बच पावें।
संग से उपजे मन में काम, काम ही जानो क्रोध का धाम।
क्रोध से जन्म मोह का होवे, मोह में पड़ स्मृति नर खोवे।
स्मृति नशे बुद्धि बह जावे, जीव त्राण को न फिर पावे।
बचे उसी की बुद्धि भाई, त्यागे विषय संग दुखदाई।

दो० संग विषयों का त्याग कर, शुद्ध स्मृति कर पाये।
बुद्धि को फिर स्थिर कर, ध्यान प्रभु में लाये॥ ४५७ क

प्रभु जी का उपदेश सुन, सब के मन संतोष।
छूत छात व मादकता, विगत साध के दोष॥ ४५७ ख

असम देश में नाथ ने, लीला कीनी अनेक।
वर्णन उसका हम करें, सद्गुरु की ले टेक॥ ४५७ ग

सद्गुरु की थे खोज में नाथ, मण्डली शिष्यन की उन साथ।
विहिड़ वनों में नाथ पधारें, ग्राम नगर के जन वे तारें।
भाग भरा वह कैसा देश, पैदल चलते जहां अखिलेश।

भूमि भी निज भाग्य सराहती, अखिलेश्वर के पग सहलाती।
योगी नर जो ईश को ध्यावें, ध्यान में प्रभु के दर्शन पावें।
समाधि से वे उठ के आवें, साक्षात प्रभु को देख के जावें।
दृष्टि का वे लाभ उठावें, आंख मूंद कर क्यों रह जावें।
युगयुगान्तरों के पश्चात, भू पर प्रकटे प्रभु साक्षात।
भू पर प्रकट हुये अब नाथ, योगी नर हैं भये सनाथ।

दो० निकट नाथ को देख कर, योगिजन चलि आयें।
मारग चलते नाथ की, रज कन ले वे जायें॥ ४५८

३९. 'गोहाटी की अवधूता' द्वारा श्री प्रभु जी का स्वागत।

गोहाटी नगरी है विख्याता, आ ठहरे वहां जग सुखदाता।
भक्त अनेकों वहां पर आवें, प्रभु जी के वे दर्शन पावें।
प्रभु जी पूछें उन से बात, है क्या योगी कोई विख्यात।
जनता प्रभु जी को बतलावे, इक अवधूता वहां रह पावे।
साधना उस की अति महान, जाने जिस को सकल जहान।
जिस भाव से उस ढिंग जावें, मन की कामना पूर्ण पावें।
योग सिद्धि है उस की पूर्ण, पूजे उसे प्रदेश सम्पूर्ण।
दुर्गा माता सम सब जानें, उस की शक्ति सभी पहचानें।

दो० शक्ति उसकी जान कर, जनता करती मान।
अवधूता को जन जानें, योगी परम महान॥ ४५९

प्रभु जी ने जब सुन यह पाया, मिलने का विचार बनाया।
कुछ भक्तों को संग में लेकर, प्रभु चले मन कृपा धर कर।
उधर अवधूता ध्यान में मग्ना, थी निज गुरु के सिमरे चरना।

गुरु आदेश उसे सुन पाया, जगत विधाता चल कर आया।
चरणों में जा शीश झुकावो, तुम उन्हें निज आश्रम लावो।
दिव्य गुरु की सुनकर वाणी, अवधूता उठी अति हर्षाणी।
आगे मिली प्रभु को आकर, स्पर्श किये पग शीश झुकाकर।
मन भक्तों का अति हर्षाया, सन्मुख देवी को जब पाया।

दो० सन्मुख उसको देख कर, लोग भये हैरान।
जग वन्द्या वह भगवती, करती प्रभु सन्मान॥ ४६० क

उसने आशिष पाय कर, कर बद्ध विनती कीन।
नाथ प्रतीक्षा आप की, करती चिर कालीन॥ ४६० ख

गुरु की आज्ञा मान कर, चल कर आई नाथ।
आश्रम में पग धारिये, करिये मुझे सनाथ॥ ४६० ग

उसी को मिलने प्रभु थे आये, स्वागत में जिस कदम बढ़ाये।
आश्रम में प्रभु पग तब धारें, उस के वचनों को सत्कारें।
पहुंची आश्रम मण्डली सारी, आतिथ उस ने कीना भारी।
बैठी वह चरणों में आकर, और कहा उस माथ झुकाकर।
स्वामी मैं निज हाल सुनाऊं, आप से फिर कुछ भिक्षा चाहूं।
गुरु मेरे इक योग प्रवीन, योग का मुझ को दान था दीन।
त्याग देह जब स्वर्ग सिधारे, मुझ को थे उन वचन उचारे।
तेरे साधन रहे अधूरे, पधार प्रभु करेंगे पूरे।

दो० गुरु की बात श्रवण कर, मैंने विनती कीन।
प्रभु को किमि पहचानूं, अबला बुद्धि हीन॥ ४६१

गुरु जी तब पहचान बताई, सारी बात मुझे समझाई।
प्रकट चुके हैं ईश्वर जग में, नर को योगी करते पल में।

अगाध शक्ति धार पधारे, क्षण में पापी तारण हारे।
ब्राह्मण कुल में वे हैं जाये, पश्चिम में पंजाब सुहाये।
वही देश है उन का प्यारा, मध्य व्यास वा रावी धारा।
अमृतसर है नगर जो नामी, वहीं प्रकटे हैं जग के स्वामी।
गौर वर्ण वे परम मनस्वी, जटा धारी महान तेजस्वी।
कुल उन का है परम पुनीत, जिस में सिद्ध उपजे सुविनीत।

दो० गण्डा राम उन के पिता, ज्योतिष में प्रवीण।
भागवन्ती है माता, ललना परम कुलीन॥ ४६२ क

ललना परम कुलीन जो, पूजी उसकी साध।
कई जन्म की साधना, पाया राम आराध॥ ४६२ ख

रामलाल है प्रभु का नाम, जन्म सिद्ध और पूरण काम।
पंचम गर्भ में वे हैं जाये, लग्न वृषभ है उन्हें सुहाये।
एक चिन्ह अब तुम्हें बताऊं, गुप्त बात को मैं समझाऊं।
माथे पर है क्षत निशान, देख उसे बस जाओ पहचान।
प्रतीक्षा में तुम उन की रहना, काल बतावें ना जब आना।
परम स्वतन्त्र हैं जगदीश, काल के बन्धन में न ईश।
योग में मग्न तुम्हें जब पावें, कृपा धारी चल कर आवें।
योग विद्या के वे रखवारी, कृष्ण चन्द्र जिमि गीताधारी।
सारी बात यह गुरु बतायी, जग से फिर उन लीनि विदायी।

दो० गुरु की बात सुनाय कर, देवी टेका माथ।
प्रभु ने खोला मुख फिर, वरद उठाय हाथ॥ ४६३ क

वरद उठाय हाथ निज, बोले योग योगेश।
हे बाले तू धन्य है, इसमें भ्रम न लेश॥ ४६३ ख

योगी गुरु को पाय कर, सच मुच भयी सनाथ।
भव जल की पतवार तो, सद्गुरु के हो हाथ॥ ४६३ ग

तेरे गुरु थे अन्तर्यामी, सिद्ध पुरुष और पूरण कामी।
गुरु ने तुम को योग सिखाया, मोक्ष मार्ग का धर्म बताया।
गुरु ने परम रहस्य था जाना, बिन प्रभु दर्शन मोक्ष न पाना।
गुप्त बात प्रभु मुख जब लाये, सुन कर देव परम हर्षाये।
आगे प्रभु तब बात चलाई, बात रहस की वहीं छिपाई।
निज मुख से क्यों रहस बतावें, वह तो काक भुषुण्डी गावें।
लाखों वर्ष पूर्व जो गाई, फिर भी राखी प्रभु छिपाई।
रहस्य प्रभु का योगी देखें, ध्यान समाधि में जो पेखें।

दो० दिव्य चक्षुओं से सभी, देखें प्रभु का रूप।
कलि में तारण हार जो, प्रभु अनादि अनूप॥ ४६४

देख अवधूता ने भी रूप, दिव्य ज्योतिर्मय जलधि स्वरूप।
अपने को फिर उसने पाया, बिन्दु ज्योति जलधि समाया।
साधना उस की हुई अब पूरी, राख पाई जो गुरु अधूरी।
दशम द्वार में चढ़े प्राणा, निराकार सद्गुरु के स्थाना।
दीरघ काल वहां रुक पाये, प्रभु जी ने तब नीचे लाये।
उत्थानावस्था उस की कीनी, अनुमति जाने की तब लीनी।
अनुमति देवे क्या वह बाला, निज स्वरूप जिस को प्रभु घाला।
प्रभु जी वहां से लौट अब पाये, गोहाटी भक्तन संग तब आये।

दो० भक्तन संग प्रभु आये, नगर गोहाटी मांझ।
बाज़ार फांसी धाम निज, पहुंचे आकर सांझ॥ ४६५

४०. एक मानी अवधूता को योग शिक्षा ।

घटना एक और बतलायें, सीख प्रभु की हम अपनायें ।
राग द्वेष वा ईर्षा भाई, शत्रु मानव के दुखदायी ।
इन से भक्त जो बच के चाले, प्रभु कृपा को वही संभाले ।
इक अवधूता नगरी रहती, सत्संग प्रभु जी के वह आती ।
किसी योगी से ली थी दीक्षा, ध्यान से सुनती प्रभु की शिक्षा ।
योग में वृत्ति उस की चाली, अवस्था अच्छी थी उस पा ली ।
साधे थे उस निज प्राणा, करती जिन का वह उत्थाना ।
नित्य समाधि में वह जावे, दिव्य लोक के दर्शन पावे ।

दो० निकल देह से वीचरे, लोक लोकांतर माहिं ।
सिद्ध पुरुष भी पेखती, समाधि में जो आहिं ॥ ४६६

समाधि बैठ सिद्धों को पेखे, अपने मन में तभी उल्लेखे ।
मैंने उत्तम कर्म कमाये, कोई भी समता न कर पाये ।
पाया सिद्धों में मैं स्थान, मुझ में उपजी शक्ति महान ।
भू पर दृष्टि न कोई आवे, तुलना मुझ से जो कर पावे ।
इतने में इक सिद्ध को पेखा, जिस को भू पर ही उस देखा ।
सूक्ष्म उसका बहुत तेजस्वी, समाधि स्थित था वह मनस्वी ।
इस को वश में जो कर पाऊं, अपने आश्रम में ले आऊं ।
मेरी सेवा में रह पावे, कृपा पात्र मेरा बन जावे ।

दो० इस विध उसने सोच कर, शक्ति खूब लगाई ।
उसको कैसे खींचती, वह स्वयं खिंच पाई ॥ ४६७ क

कौन सिद्ध था जानते, वह तो प्रभु का बाल ।
हरिहरानन्द योगी, ध्यावे प्रभु दयाल ॥ ४६७ ख

हरिहरानन्द धूता पकड़ी, प्रभु शक्ति से गई वह जकड़ी।
पुतला उस का बाँध वह लाया, प्रभु विराजे तहाँ वह आया।
देख प्रभु मुस्काने लागे, किस क्रीड़ा में हरि तुम पागे।
इस पुतले को क्यों हो लाये, अन्तर्यामी यों कह पाये।
हरिहरानन्द दण्डवत कीना, और प्रभु को उत्तर दीना।
तव चरणों को मैं था ध्याता, इस पुतले से बाधा पाता।
इस को अब तुम नाथ संभालो, जहाँ इच्छा हो इस को डालो।
मैं तो प्रभु चरणों का बालक, विघ्न निवारो जन के पालक।

दो० हरानन्द का दोष नहीं, लीना प्रभु जी जान।
बाँस में इसको डालो, कीना नाथ बखान॥ ४६८ क

सुनकर प्रभु की आज्ञा, पड़ा बांस में जाय।
भूता का वह पुतला, अपनी बात सुनाय॥ ४६८ ख

भूता का वह पुतला डोले, मध्य बांस ही सब कुछ बोले।
"क्षमा करो हे नाथ" पुकारे, "मैं भूली" निज को धिक्कारे।
"मैं न जाना तब यह बालक, समझा ऐसा बैसा साधक।
मुझ को बांधा इस ने क्षण में, नाशी शक्ति मेरी पल में।
मैं सिद्धा मानूं थी निज को, आतम तुल्य जानूं मैं किस को।
बोध मुझे है अब हो पाया, थी भुलानी तेरी माया।
मैं मानूं अब अपनी भूल, गर्व मेरा बन पाया शूल।
ऐसा कर्म न फिर कर पाऊं, क्षमा करो मैं शीष नवाऊं।"

दो० इस विध क्षमा पुकार कर, ध्वनि हुई वह शांत।
सिद्धा बन कर भूतनी, अड़ी बाँस में भ्रांत॥ ४६९ क

अड़ी बांस में भ्रांत वह, सके न उससे छूट।

सिद्ध पुरुष की कैद भी, होवे खूब अटूट ॥ ४६६ ख

धूता को तब प्रभु सुनाया, मुक्ति का उन भेद बताया।
को न किसी को बाँधन हारा, कर्म ही अपना करे प्रहारा।
काम क्रोध वा लोभ अहंकार, मोह शत्रु हैं सब प्रकार।
काम जीव को करे खवार, क्रोध प्राणी को डाले जार।
लोभ से नर पावे अपमान, अहंकारी का सिर नीचा जान।
मोह अज्ञान में नर को डारे, द्वार मोक्ष के बंद हों सारे।
योग से नर मोक्ष तब पावे, प्रज्ञा को जब स्थिर कर लावे।
स्थिरता ना बुद्धी में पूरी, साधना समझो सभी अधूरी।

दो० साधन योग कमाय कर, निज तुम जाना सिद्ध।
बुद्धि तो भ्रम में पड़ी, अहं से रहा मन बिद्ध। ४७० क

अहं से रहे मन विद्ध जब, व्यापें सकल क्लेश ॥
संत जनों के संग से, नाशें दोष अशेष ॥ ४७० ख

सीखा तुम ने श्वास चढ़ाना, वश में जीवों को कर पाना।
लोक लोकान्तर तुम ने देखे, प्रकृति के बहु दृश्य भी पेखे।
बुद्धि को पर स्थिर न कीना, फिर भी सिद्धा निज को चीना।
स्थिर बुद्धी पा सिद्ध कहावे, भ्राँत मति न सिद्धी पावे।
स्थिर बुद्धी के चिन्ह तुम जानो, मोक्ष लक्ष्य जीवन का मानो।
मन जब सकल कामना त्यागे, आत्म दर्शन में अनुरागे।
अन्तर वृत्ति स्थिर कर पावे, स्थिर बुद्धि तब नर कहलावे।
दुःखों में उद्वेग न माने, इच्छा सुख की चित्त न आने।
भय वा क्रोध के वश न आवे, स्थिर बुद्धी तब मुनि कहलावे।

दो० जिसका हो अनुराग नहीं, लाभ वा हानि पाय।

न जो चित्त में फूलता, न ही मन कुम्हलाय ॥ ४७१

इन्द्रियों को जो इमि समेटे, जैसे कछुआ अंग लपेटे।
इच्छा विषयों की ना लावे, स्थिर बुद्धी तब नर कहलावे।
इन्द्री मन को हर ले जाती; केवल बुद्धि उसे बचाती।
बुद्धी शक्ति को जब पावे, स्थित प्रज्ञ तब नर कहलावे।
राग द्वेष को मन जब छोड़े, विषयों से वह मुख को मोड़े।
इन्द्रियों का स्वामी बन पावे, स्थिर बुद्धी तब नर कहलावे।
विषयों का गदलापन त्यागे, प्रभु चिन्तन में अहर्निश लागे।
निर्मलता को मन जब ग्राहवे, स्थिर बुद्धी तब नर कहलावे।

दो० जिमि समुद्र अगाध में, अहर्निश गिरता नीर।
अन्तर लेश न दीखे, सदा रहे गंभीर ॥ ४७२ क

तैसा योगी जो बने, सुख में न हर्षाय।
स्थिरता दुःख में भी गहे, स्थिर प्रज्ञ कहलाय ॥ ४७२ ख

योगी स्थित प्रज्ञ जो देवी, ब्रह्म सुख का वह होवे सेवी।
ऐसे योग को तुम आराधो, त्याग बांस अब तन को साधो।
प्रभु जी ने आदेश सुनाया, पुतला बांस त्याग के धाया।
भक्त प्रभु के चरण ध्यावें, इस मिस सभी सीख को पावें।
प्रभु जी मौन ग्रहण कर पायें, निज स्वरूप में ध्यान लगायें।
इतने में अवधूता आयी, समाधि से थी वह उठ पायी।
चरण पड़ी निज दोष बखशाया, लज्जा से था मुख कुम्हलाया।
प्रभु ने फिर आश्वासन दीना, उस प्रस्थान निजाश्रम कीना।

दो० प्रभु की लीला यह सकल, जो गावे नर नार।
मन को वश में वह करे, गहे ज्ञान का सार ॥ ४७३

प्रभु योग की राह पर डालें, शरणागत के दोष निकालें।
धूता थी सत्संग में आती, क्यों कर दुर्गति फिर वह पाती।
प्रभु ने उस का दोष दुराया, सन्मारग पर उसे लगाया।
प्रभु वहाँ पर सत्संग करते, महाप्रभु की खोज भी करते।
आगत भक्तों से पुछ पाते, पता योगिन का वे चाहते।
वासी इक उस देश का आया, जिस ने प्रभु को पता बताया।
भगवन मैं इक योगी जानूं, उस को पूरण सिद्ध ही मानूं।
उस का गणक है स्वामी नाम, तीन कोस पर उस का धाम।

दो० ब्रह्मपुत्र को पार कर, जावो उसके पास।
योगिन को तुम खोजते, तहं पूजे तव आस॥ ४७४

४१. गणक से मिलाप।

सुन कर उस पुरुष की वाणी, उठे प्रभु जी जग कल्याणी।
तारण हार तरण को जावें, महा प्रभु को खोज वे पावें।
इक पुरुष को संग उन लीना, पार ब्रह्मपुत्र को कीना।
घोर वन को लांघ वे पाये, सायंकाल ग्राम में आये।
नर नारी सब चल कर आवें, स्वागत प्रभु जी का कर पावें।
उन को प्रभु जी बात बतावें, पर वे बिल्कुल समझ न पावें।
वे भी जो कुछ बात बताते, प्रभु जी समझ न उस को पाते।
वाणी के जो ईश स्वामी, करें नर लीला अन्तर्यामी।

दो० वर्ष अस्सी की नारी, चल फिर आयी पास।
जिस विध बात वह समझे, करने लगी प्रयास॥ ४७५

तीर्थ उस ने बहुत थे कीने, देश देशान्तर भी थे चीने।
अपनी बात वह कुछ कह पाती, सो भी नाथ की समझ न आती।

रात्री काल निकट अब आया, उन लोगों ने भोग मंगाया।
चावल दाल तेल सब भोग, प्रभु के निकट लाये वे लोग।
एक वस्तु और भी लायी, लंबी गज भर मछली पायी।
चाकू छुरिका भी संग लाये, जिस से मछली काटी जाये।
प्रभु जी देख अचंभा कीना, इंगित से फिर यह कह दीना।
अपनी वस्तुओं को ले जावें, हम न इन का भोग लगावें।

दो० गउओं के फिर दूध को, लागे दुहने लोग।
चार गउओं को दुह कर, प्रभु को दीना भोग ।। ४७६

सारा दूध वहां उन लाया, आधा सेर था जो मिल पाया।
प्रभु जी ने मन मांहि विचारा, इस का हम न करें आहारा।
इतना सा तो दूध इन पास, जिस से चलता सकल सुपास।
हम को क्षुधा तो है कुछ नाहीं, एकाहारी ही हम आहीं।
क्यों कर दूध हम इन से पावें, अपने कारज में ये लावें।
प्रभु ने दूध को परे हटाया, सब ने मन में तब दुःख पाया।
वे थे आतिथ के अनुरागे, प्रभु के सन्मुख रोने लागे।
प्रभु को वृद्धा ने समझाया, कारण रोने का जतलाया।

दो० प्रभु जी ने तब देखे, लटके केले डार।
संकेत कर समझाया, ये हमको स्वीकार ।। ४७७

वृद्धा ने तब केले तोड़े, पत्ते में वे ला कर जोड़े।
केलों का प्रभु भोग लगावें, सभी लोग तब नाचें गावें।
रात्री को उन उत्सव कीना, आदर प्रभु को यह था दीना।
प्रातः काल प्रभु मन लावें, अब ना और यहां रुक पावें।
प्रभु चलने को हुए तय्यार, रोका लोगों ने आ द्वार।
प्रभु रुकने को जब न माने, भेंटें लेकर सब जन आनें।

पैसे उन प्रभु चरणों चढ़ाये, पांच सात रुपये हो पाये।
वितरित सभी बच्चों में कर के, प्रभु गोहाटी आये चल के।

दो० उनके आतिथ्य का प्रभु, मन पर हुआ प्रभाव।
संग दुभाषिया फिर चले, जिस विध समझें भाव ॥ ४७८

संग दुभाषी प्रभु ले आये, लोगों की जो बात बताये।
प्रभु की बात उन्हें समझाता, उस दिन की भी सभी बताता।
दो दिन उसे वहां ठहराया, तब प्रभु ने स्वयं लौटाया।
भाव समझ अब आने लागे, लोग प्रभु के भये अनुरागे।
संग गणक का प्रभु जी कीना, दिवस आठ तक उस को चीना।
अन्तर्यामी प्रभु नीहारा, मन्त्र तन्त्र का वह प्यारा।
योग विद्या वह लेश न जाने, साधना मन्त्र की ही माने।
प्रभु जी पूछ गणक से पाये, किसी योगी का पता बताये।

दो० मैं योगी की खोज में, पूर्ण सिद्ध जो होय।
धारूं उस को मैं गुरू, योग सिखावे जोय ॥ ४७९ क

नर लीला प्रभु करत हैं, पूर्ण सिद्ध योगेश।
शिक्षा जग को यह मिले, मिटे न गुरु बिन क्लेश ॥ ४७९ ख

गुरु भी ऐसा चाहिए, योग सिखावें जोय।
ऐसा गुरु क्यों कीजिये, योगी जो ना होय ॥ ४७९ ग

भाव प्रभु का गणक ने समझा, फिर भी मनहिं रहा वह उलझा।
प्रभु की शक्ति गणक न जाने, इस मिस मन में वह सकुचाने।
योगी को तो मैं हूं जानूं, सको न पहुंच उस पास मैं मानूं।
घोर वनों में वह है रहता, भयंकर मार्ग वहां को जाता।
हाथी चीते नर संहारी, जंगली भैंसे भी प्रहारी।



तान्त्रिक गणक ने श्री प्रभु जी को मय ग्राम की भयप्रद यात्रा से रोकने का भरसक निष्फल प्रयास किया।

प्रभु की शक्ति गणक न जाने ।
इस मिस मन में वह सकुचाने ।।

(दोहा ४८० के सामने)

नदियां असंख्य मध्य में पावो, ऐसे मार्ग से किमि जावो।
सौ कोसों का मार्ग जानो, जा कर मुड़ो न यह पहचानो।
तू भूल कर वहां न जाना, अपना जीवन व्यर्थ गंवाना।

दो० बात एक यह और है, समझो मेरे मीत।
मन्त्रों की भरमार भी, तुम्हें न राह प्रतीत॥ ४८० क

प्रभु को गणक समझाया, छोड़ योगी की चाह।
मन्त्र विद्या चाहिए, दूं मैं तुम्हें अथाह॥ ४८० ख

प्रभु सब मन्त्र तन्त्र जानें, वे तो योग को उत्तम मानें।
प्रभु पर मन्त्र जो कर पावे, निज सिद्धि ही खो दिखलावे।
जीव जन्तु सब प्रभु की रचना, कठिन न प्रभु को उन से बचना।
दीर्घ अटवी चल कर जानो, यह मर्यादा है दिखलानी।
पूरण सद्गुरु को तब पावें, सर धड़ की जब बाज़ी लावें।
प्रभु ने गणक को तब बतलाया, मैंने निश्चय है कर पाया।
मैं योगी को मिलने जाऊं, जिस का भेद मैं तुम से पाऊं।
जो कुछ मार्ग की कठिनाई, सब झेलूं मैं मेरे भाई।

दो० जीवन की इक साध यह, साधन योग कमाऊं।
है त्यागी घर गृहस्थी, पूरण सद्गुरु पाऊं॥ ४८१

दृढ़ निश्चय जब प्रभु का देखा, निज भाव तब गणक उल्लेखा।
मन मेरे में अब यह आवे, गुरु दर्शन तुम को हो पावे।
मैं मारग तुम को बतलाऊं, जैसे योगी मिले सुनाऊं।
राजा है इक रणसिंह नामी, "मंय" नगरी का वह है स्वामी।
उस के राज्य में योगी रहता, राज गुरु उस का कहलाता।
पर वह ऐसा है वैरागी, राज आदर का ना अनुरागी।

वन में कुटिया भीतर बासा, रह एकान्त चढ़ावे श्वासा।
यदि हो उस को तुम ने पाना, समीप रणसिंह पहले जाना।

दो० रणसिंह पास भी जाना, है बड़ा दुश्वार।
ऐसे ऐसे जन मिलें, तुम को करें खवार॥ ४८२

प्रदेशी जब उस देश में जावे, गुप्तचरों से भेद वह पावे।
गुप्त चर उस को मन से सेवें, शत्रु को न जाने देवें।
शत्रु को वे भूल में डालें, अथवा जल के मध्य ही घालें।
मन्त्र शक्ति से उसे संहारें, अथवा शस्त्र से वे मारें।
ऐसा भी जो न कर पावें, रण सिंह को जा हाल बतावें।
राज नीति का वह विद्वान, आगन्तुक का करे सन्मान।
आदर से वह वश कर पाये, पर की शक्ति हर दिखलाये।
मन्त्र शक्ति का वह प्रवीन, विपक्ष को कर पावे बलहीन।

दो० रणसिंह को तुम जानो, नीति चतुर नरेश।
मित्रों का तो मित्र है, शत्रु पायें क्लेश॥ ४८३

यदि पहुंच उस पास तुम जावो, अवश्य योगी के दर्शन पावो।
पहुंचना उस के हां दुश्वार, परदेशी जावे डाला मार।
अब कुछ तुम को और सुनाऊं, मारग का भी भेद बताऊं।
जिन ग्रामों से मारग जाये, गणक ने सब के नाम बताये।
खतरों से भी किया सतर्क, प्रभु उत्साह में लेश न फर्क।
ध्यान से प्रभु जी ने सुन पाया, मार्ग का जो रहस्य बताया।
प्रभु के मन में जागे भाव, योगी को मिलने का चाव।
प्रकट आभार गणक का कीना, गोहाटी का प्रभु मारग लीना।

दो० दस दिन के पश्चात जब, मुड़ कर आये नाथ।

सुख भक्तों ने माना, हो गए सभी सनाथ ॥ ४८४

गोहाटी में प्रभु न रुक पाये, 'मंय' जानब उन कदम बढ़ाये।
संग में केवल दो जन लीने, विन्ध्याचल जो शिक्षित कीने।

४२. घोर वन यात्रा का आरंभ और मंय ग्राम की ओर प्रस्थान।

विद्या में दोनों होश्यार, मन्त्र तन्त्र में किये तय्यार।
दोनों के हम जानें नाम, कृष्णानन्द और मुखराम।
प्रभु के रहें वे ऐसे साथ, दायां बायां हो जिमि हाथ।
मिल कर प्रभु की सेव कमावें, कष्ट प्रभु जिमि लेश न पावें।
प्रभु के पीछे पीछे चलते, प्रभु वचनों पै ध्यान वे धरते।
शास्त्र के प्रभु रहस्य बतावें, उन्हें जीवन में जिस विध लावें।

दो० घोर वनों में चल रहे, जग के सिरजन हार।
जग वैभव को त्याग कर, योगी बाना धार ॥ ४८५

योगी बाना प्रभु जी धारा, तपमय जीवन को स्वीकारा।
सिद्धि लक्ष्य की तप से होवे, धीरज को यदि नर न खोवे।
और लेता जब कष्ट सहार, जिमि पर्वत सागर का प्रहार।
कष्ट प्रभु ने जो सह पाये, वर्णन में वें सब न आये।
रोमाँचकारी है इतिहास, इक घटना से हो आभास।

४३. नागाओं द्वारा श्री प्रभु जी का अपहरण।

ऐसी घटना नाथ लिखावें, निज लीला इस में प्रकटावें।
तीनों जन मग पर चल पाये, घेरे में नागों के आये।

उठा ले जायें उन को नागे, भेंट देवी की करने लागे।
नर बली को बहुत वे मानें, भाग्य खुला वे अपना जानें।

दो० देवी को प्रसन्न करें, आशिष वह दे पाय।
मानुषाहारी नागे, मानें मिला उपाय॥ ४८६

तामस नर न प्रभु पहचानें, प्रभु को मानुष ही वे मानें।
प्रभु की त्रय गुणी है रचना, शास्त्रों में है उस की कथना।
प्रभु ने सात्विक जीव बनाये, राजस तामस भी उपजाये।
सात्विक जीव प्रभु को जानें, घट घट वासी उसे पहचानें।
आत्मवत वे देखें सब को, दे पावें वे दुख फिर किस को।
पर पीड़ा को ऐसे मानें, जैसे संकट निज पर आनें।
वे जन योग शक्ति में लागें, नर तन पाय प्रभु आराधें।
तन त्याग वे स्वर्ग को जायें, उन में कोई नर मुक्ति पायें।

दो० देह धारण का ध्येय जो, सात्विक नर ले जान।
राजस समझे अल्प ही, तामस रहत भुमान॥ ४८७

राजस राग द्वेष में उलझे, ग्रंथी उस की कभी न सुलझे।
जिस वस्तु से सुख वे पावें, राग उसी में वे अपनावें।
दुख का कारण जिस को मानें, द्वेष भाव उस में ले आनें।
समदृष्टि को कभी न लावें, आवागमन में वे नर जावें।
सात्विक नर उत्तम पहचानो, राजस को तो मध्यम मानो।
तामस अधम कोटि में आवे, आत्मा हन्ता वही कहावे।
इन्द्रियों को न वश कर पावे, लोलुपता को ही अपनावे।
तन पोषक वह नर कहलावे, जिस किसी को मार के खावे।

दो० ऐसे तामस नरन ने, प्रभु को लीना घेर।
निज गाओं ले आये, देवें बली सवेर॥ ४८८

प्रभु की रचना प्रभु ही मारे, देवी शक्ति किमी सहारे।
देवी ने मन प्रभु को ध्याया, इक बुढ़िया से खेल रचाया।
सूजन उस के स्तन में पागी, वह पीड़ा से कराहने लागी।
पर पीड़ा न प्रभु सहारे, जीव जन्तु अंग उन के सारे।
प्रभु ने औषध तुरन्त निकाली, बुढ़िया के स्तन पर जो घाली।
सूजा स्तन सिकुड़ने लागा, बुढ़िया का दुख सारा भागा।
उपकार उस ने प्रभु का माना, हर्ष के उस का नहीं ठिकाना।
अपने लोगों को कह पाई, इन को न कोई मारे भाई।

दो० इन को मत कोइ मारे, रुक पाओ धर धीर।
इन को जानो देव तुम, हरते जो पर पीर॥ ४८९

बहु विध बुढ़िया ने समझाया, जो न मानें उन्हें धमकाया।
दुख अपना उस खोल सुनाया, अनुग्रह प्रभु का भी बतलाया।
बोला उस ने सब के आगे, बनें जिमि वे प्रभु अनुरागे।
इन पर जो कोई हाथ उठावे, कोप देवी का उस पर आवे।
पहले मुझे करो कुरबान, पाछे इन का दो बलिदान।
बैठ प्रभु के पास वह पायी, ऐसी दृढ़ता उस मन छायी।
क्या मजाल कोई चलि आवे, और प्रभु को हाथ लगावे।
सिंहनी सम वह सबन डरावी, साहस करे जो दूर भगाती।

दो० उसकी श्रद्धा देख कर, प्रभु भये प्रसन्न।
लीला धारी नाथ ने, अबला कीनी धन्य॥ ४९०

प्रभु जी धन्य अबला कर पायी, नागे बने उस के अनुयायी।
प्रभु को घेरा पाकर ठहरे, मिल सभी दें उन पर पहरे।
मारन हित जो वहां थे लाये, वही रक्षक प्रभु के बन पाये।
प्रभु की लीला परम न्यारी, जग में सम न सब नर नारी।

कुछ ने प्रभु को मित्र जाना, अन्य जनों ने शत्रु माना।
शत्रु करना चाहें बलिदान, मित्र राखें प्रभु के प्राण।
नागे जन थे परम क्रोधी, बने उन के दो दल विरोधी।
ऐसा कौतुक प्रभु दिखलाया, देवासुर संग्राम रचाया।

दो० दो दलो में बंट गया, नागों का परिवार।
शस्त्रों से जो लैस था, करने को प्रहार॥ ४६१ क

तमोगुणी सब जीव जो, उन का यह आचार।
प्रिय कलह को मानते, करते नहीं विचार॥ ४६१ ख

नागों मध्य कलह ठन पायी, धनुष बाणों से हुई लड़ाई।
भालों ढालों से भी युद्ध, नागे झूझ पड़े हो क्रुद्ध।
मारें काटें तीर चलावें, धर पकड़ो का शोर मचावें।
हा हा हू हू बहु कर पावें, जैसे सिंह भालू कुरलावें।
भाले ढालों से टकरावें, अथवा तन के भीतर जावें।
गिरने लागे हो नर आहत, धारा रुधिर बहावे तन क्षत।
क्षत जनों से धरती पाटी, योधाओं की भी संख्या घाटी।
दोनों दल अब छीजन लागे, पर वे फिर भी जय अनुरागे।
बुढ़िया जो थी बैठी पास, युद्ध देख वह भयी उदास।

दो० प्रभु की ओर निहार कर, देखे जख्मी वीर।
विनती कीनी नाथ से, हरते जो भव भीर॥ ४६२

जानी प्रभु जी उस की पीड़, अन्तर्यामी हरन भव भीड़।
निज आसन उन दीना त्याग, औषध संग्रह करने लाग।
वन की औषध प्रभु सब जानें, रचनहार न क्यों पहचानें।
शीघ्र औषध प्रभु ल्यायी, क्षत वीरों पर दीनि लगायी।

औषध ने प्रभाव दिखाया, अमरों ने जिमि रस बरसाया।
मूर्छित योधा फिर से जागे, घायलों के सब दुख थे भागे।
उठ वीरों ने आयुध लीने, लड़ने लंगे तान के सीने।
युद्ध ने ऐसा पलटा खाया, पल में डंका विजय बजाया।

दो० शत्रु दल को जीत कर, मन में भर हुल्लास।
योधा मिलकर सारे, आये प्रभु के पास॥ ४६३ क

बुढ़िया के संकेत से, छुवें प्रभु के पाद।
कृतज्ञ भाव जतलाया, लीना आशीर्वाद॥ ४६३ ख

कृतज्ञ भाव बुढ़िया जतलाया, निज आभूषण चरणि चढ़ाया।
भूषण को प्रभु दीना मोड़, कहा हमें अब आवो छोड़।
कन्धों पर उन प्रभु चढ़ाये, कृष्णानन्द मुखराम उठाये।
जिस मार्ग से थे वे लाये, तीनों जने वहीं पहुंचाये।
प्रभु जी अपने मग पर चाले, "मंय" गाँव की दिशा संभाले।
कृष्णानन्द मुखराम उदास, प्रभु बंधावें उन को आस।
जीवन के संग संकट लागे, वीर वही जो मग न त्यागे।
मार्ग धर्म का जो नर धारे, होय हताश न दम वह मारे।

दो० निन्दा चाहें जग करे, दरिद्रता गहे चीर।
मृत्यु का हो मुख खुला, धर्म न त्यागे धीर॥ ४६४

पथ धर्म का धीर न त्यागे, वैरी जग चाहे हो लागे।
पाय प्रभु का यह संकेत, दोनों जन तब भये सचेत।
सिमरी प्रभु की शक्ति अपार, शरणागत के जो रखवार।
जिस ने मृत्यु मुख से काढा, संकट इस से क्या हो गाढा।
प्रभु ने राखा अपने साथ, रक्षा हमरी उन के हाथ।

हम न त्यागें प्रभु का संग, जानें निज को इन का अंग।
निश्चय राखें प्रभु के ऊपर, राखें सुख वा दुख में जहं पर।
मुख राम तब विनय सुनाई, प्रभु की महिमा प्रभुहि बताई।
आप की शक्ति सें बच पाये, संकट में हो तुम्हीं सहाये।

दो० राखा हम को आपने, फंसे थे यम द्वार।
कर तव सौंपी अपनी, जीवन की पतवार॥ ४६५

सौंपी जीवन की पतवार, पार करो न बहें मंझधार।
जीवन हमरा तोरे अर्पण, श्वास श्वास अब करें समर्पण।
क्षण एक न राखो न्यारे, तुम्हीं हमारे प्राणाधारे।
प्रभु ने उस को गले लगाया, उस के भय को दूर भगाया।
लीलाधारी प्रभु सुजान, कार्य हैं उन के गूढ़ महान।
मृत्यु का भी दृश्य दिखावें, रक्षा भक्तों की कर पावें।
शरण पड़े की करते त्राण, करे शत्रुता होवे हान।
ऐसे बन्धु नहीं जग माहीं, जैसे प्रभु जो भक्त के ताहीं।

दो० कृष्णानन्द मुखराम को, हो पाया तब ज्ञान।
प्रभु जो उनके साथ हैं, उन की शक्ति महान॥ ४६६ ख

आगे आगे प्रभु चलें, पाछे पाछे दोय।
वन की शोभा देखते, मन में भय ना कोय॥ ४६६ क

४४. गदले जोहड़ से जल न लेना व कई दिन जल बिना निर्वाह करना।

वन की शोभा प्रभु निहारें, अपनी रचना को सत्कारें।
दिन भर चलने में हि बितावें, रात्रि को कहीं डेरा लावें।

वन के कन्द मूल वे खाते, ग्राम मिले तो अन्न भी लाते।
मुख था प्रभु का सेवक चातुर, करे सेवा बिन होय आतुर।
ग्राम निकट इक दिन वे आये, प्रभु आज्ञा दें जल जा लाये।
इक जोहड़ मुख देखा चल कर, जिस से जल भरते थे सब नर।
स्नान करें और जल ले जाते, ढोर भी उस में गोते खाते।
मल मूत्र नर वहां कर पावें, लेश घृणा न मन में लावें।
जल जोहड़ का गदला भारी, फिर भी पीते वे नर नारी।

दो० गंदा जल वह जोहड़ा, पीते सब नर नार।
मुख राम ने देखिकर, कीना मनहिं विचार॥ ४६७

ऐसा जल जो नर ये पीते, ज्ञान बिना ही सब ये जीते।
पशु वा इन में क्या है भेद, माने गन्दगी से न खेद।
देखो तन हैं इन के गंदे, वस्त्र पहने गन्दे गन्दे।
गलियां कूचे सब हैं गन्दे, घर के पात्र भी हैं गन्दे।
बच्चे कच्चे घूमें गन्दे, बाल बिखेरे गन्दे गन्दे।
हाथ पांव हैं जिन के गन्दे, मुख देखें तो वे भी गन्दे।
आंख कान वा दांत भी गन्दे, ऐसे बुद्धी के ये मन्दे।
ऐसे जीव जो हैं ये गन्दे, कौन माने गा इन को बन्दे।

दो० नर के तन को पाय कर; राखे उसे न शुद्ध।
अशुद्ध भाव से समझ लो, बिगड़े नर की बुद्ध॥ ४६८ क

बिगड़े नर की बुद्ध जब, पाप कर्म कर पाय।
पापी नर को पाप ही, ले नरक में जाय॥ ४६८ ख

अनाचार वह मुख ने देखा, मन में उस ने कीन उलेखा।
जल बिन चाहें हम रह पायें, जोहड़ का जल ले न जायें।

खाली हाथ लौट के आया, प्रभु को सारा हाल बताया।
प्रभु जी मन में कीन विचार, ये ना जानें शौच आचार।
इस गाओं से जल ना लावें, अन्य उपाये हम कर पावें।
नारियल एक प्रभु ने लीना, छेदन उस का तब उन कीना।
उस के जल से प्यास बुझाई, शिष्यन को फिर बात बताई।
नर वही जो समय पहचाने, संकट में भी दुःख न माने।
जल के बिन अब हम रह पावें, नारियल पी कर काल बितावें।

दो० चलो आगे चल देखें, जहां मिलेगा नीर।
स्नान वहीं कर पायें, उसी जलाशय तीर॥ ४९९

चलते चलते दिन ढल पाया, जल कहीं पे नज़र ना आया।
जल बिना ही निशा बीतायी, प्रात चले उठ जग सुखदायी।
अगला दिन भी बिन जल बीता, वन तो था वह जल से रीता।
तीसर दिन भी जल ना पाया, नारियल से ही काम चलाया।
बिन जल भक्त हुये बेहाल, कब तक बीते इस विध काल।
दीर्घ यात्रा ना कट पाए, हे प्रभो कुछ करिए उपाय।
देख भक्तों की पीड़ा भारी, खोजी प्रभु ने धरती सारी।
गीली भूमि जहां उन पायी, माटी वहां से खोद दिखाई।
एक हाथ पर पानी पाया, चश्मा जैसे ऊपर आया।

दो० निर्मल जल की धार को, पाकर भक्त विभोर।
मेघ नगाड़ा श्रवण करि, नाचें जैसें मोर॥ ५०० क

पान किया उन मधुर जल, जैसे बूंद स्वांति।
भक्त मलिन जल ना पियें, चातक की ही भांति॥ ५०० ख

स्नान प्रभु जी उस में कीना, नित्य कर्म में निज मन दीना।

भक्तों ने भी किया स्नान, जिससे भया सकल श्रम हान।
कर विश्राम फिर मग पर चाले, प्रभु कृपा को मनहिं संभाले।
जहां पर रात्रि को रुक जावें, भूमि खोद वे जल को पावें।
कई दिवस थे ऐसे बीते, रह पाये ना जल के रीते।
संकट जभी भक्त पर आवें, हाथ देय कर प्रभु बचावें।
वन में विघ्नों का नहीं अन्त, संकट एक ते एक बे अन्त।
एक दिवस की बात बतावें, वन की संकरता लिख पावें।

४५. जंगली भैंसों द्वारा प्रहार।

दो० ध्यान मग्न थे चल रहे, भक्त प्रभु के साथ।
प्रहार करन को भैंसे, प्रकट भये इक हाथ॥ ५०१ क

घोर भयंकर जीव वे, लांबे लांबे सींग।
काले देह पहाड़ सम, मेघ गर्ज सी हींग॥ ५०१ ख

जिह्वा में लपकार था, आंखों में चमकार।
लहरत पूंछ आकाशीं, विद्युत सम प्रहार॥ ५०१ ग

घोर जीव थे वे तो भारी, रूप भयंकर नर संहारी।
ऐसा उन का देख प्रहार, आये दैत्य जिमि करन संहार।
निज कौशल तब प्रभु दिखावें, उन के मार्ग से हट जावें।
खींचे संग में भक्त सुजान, कीना जिन का प्राण त्राण।
प्रभु ने टाला इस विध वार, मुड़ना भैंसों का दुश्वार।
भक्तों को प्रभु दीन आदेश, चलो भाग कर अन्य प्रदेश।
वहां से दौड़ उन जान बचाई, भक्तों के प्रभु सदा सहाई।
आगे चले ग्राम इक आया, रात्रि को वहीं डेरा लाया।
नित्य कर्म में प्रभु जी लागे, भक्त भी भक्ति में अनुरागे।

दो० ग्राम्य जनों ने देखे, साधु आये महान।
मिल सब पहुंचे भद्र जन, प्रभु चरणों में आन ॥ ५०२

प्रभु का तेज सबन ने देखा, नत मस्तक हो कीन उलेखा।
साध रूप में ईश पधारे, भाग जगे हैं गांव के भारे।
जो सेवा ये हम से लेवें, जन्म सुधारन हित हम देवें।
साध सेव से सब दुख नाशें, साध सेव से सुख प्रकाशें।
साध सेव से रोग का हान, साध सेव से सौख्य महान।
साध सेव से संपत पावें, साध सेव से विपत नसावें।
साध सेवा से मन्त्र सिद्धी, साध सेवा से पावें ऋद्धी।
साध सेव बड़भागी पावें, कोट जन्म के पाप नसावें।

दो० चित में श्रद्धा लाय कर, कथी सबन यह बात।
सेवा प्रभो बताइये, हम बालक तुम तात ॥ ५०३

प्रभु जी सुन कर उन की वाणी, नाथ कहें जो जन सन्मानी।
भाव भक्ति जो तुम दिखलायी, हमरे चित्त को यह सब भायी।
और सेव न हम को चाहिए, मंय गांव का मग बतलाइए।
उठ प्रात है हम ने जाना, वहां पर योगी को मिल पाना।
इससे आगे कौन ग्राम, उस का भी बतलाइये नाम।
सीधे मारग पर जो जावें, यात्रा का तब अन्त हम पावें।
ग्राम जनों ने सुनी यह बात, उन के कांप उठे तब गात।
'मंय' गांव का मग भयंकर, किस विध रोकें प्रभु को मिल कर।

दो० इस विध मन में लाय कर, विनय प्रभु से कीन।
नाथ उधर ना जाइये, मग न भय से हीन ॥ ५०४

जन्तू वन के भीषण भारी, अटवी उन से संकर सारी।

नद नाले भी बहुत भयंकर, नाविक उन पर जिन के न सिर।
बिन सिर नाविक जब नर पावे, भय से अपनी सुध विसरावे।
मन्तर जन्तर भी वे जानें, उन की माया कौन पहचानें।
हम ने जीवन में ना पाया, उस दिक जा कर लौट जो आया।
वहां जाने का निश्चय छोड़ो, उस दिशा से मुख को मोड़ो।
आप स्वयं हो अन्तर्यामी, क्या बतावें तुम को स्वामी।
ऐसा कह कर मौन उन साधा, प्रभु चरणों में मन अनुराधा।

दो० प्रभु बताया सबन को, भय हम को है नांहि।
योगी को तो मिलन हित, अवश्य गमन कर पांहि॥ ५०५

इस के आगे ग्राम जो आवें, उन का हम को नाम बतावें।
कितनी दूरी पर अब ग्राम, बताइये उस का हम को नाम।
यह सब बात बताओ हम को, प्रात उठें और चलें उधर को।
ग्राम जनों ने जान जब पाया, दृढ़ निश्चय है प्रभु बनाया।
उत्तर में प्रभु को कह दीना, नाम ग्राम का मुख पै लीना।
कोस तीन पर अगला ग्राम, सुख से जा पायें सुखधाम।
प्रातः भोजन कर के जाना, सायंकाल वहां जा पाना।
प्रभु ने सुन कर मानी बात, वहीं बिताई सुख से रात।
प्रात हुई जगजीवन जागे, नित्य कर्म में भक्त भी लागे।

दो० ग्राम जनता तब सारी, मिल आई प्रभु पास।
दीन विदाई नाथ को, मन में परम उदास॥ ५०६

४६. जंगली हस्तियों द्वारा आक्रमण।

वहाँ से नाथ विदा हो पाये, वन मारग पर कदम बढ़ाये।
चलते चलते दिवस बिताया, कहीं गांव का चिह्न न पाया।

तीन कोस जो थे बतलाये, उस से कहीं अधिक चलि आये।
आध पहर अब दिन था बाकी, आस पास दिक प्रभु ने ताकी।
वस्ती कोई नज़र न आवे, पल पल दिन तो ढलता जावे।
अन्धकार के छाये उतरे, रात को वन में खतरे खतरे।
भक्त प्रभु की ओर निहारें, संकट में जो जन को तारें।
प्रभु ने चारों ओर निहारा, घटा टोप वह वन था भारा।

दो० पंछी नीड़ों में घुसे, विचरें वन के जीव।
जिनकी आहट पाय कर, धैर्य न राखे सीव॥ ५०७ क

विकट समस्या देख कर, प्रभु दीने मुस्काय।
तीन लोक के वे धनी, धैर्य कथा न जाय॥ ५०७ ख

प्रभु जी धीरज को न छोड़ें, कर्तव्य कर्म से मुख न मोड़ें।
वन में ही हम रात बितावें, इस विध भक्तों को बतलावें।
मुख लगाया प्रभु का आसन, प्रभु का पा कर उस अनुशासन।
कृष्णानन्द ने ईंधन तोड़ा, सन्मुख धूना उस ने जोड़ा।
आसन पर तब प्रभु विराजे, निर्जन वन के मध्य में साजे।
नित्य कर्म कर प्रभु सो पाये, जिस विध मारग का श्रम जाये।
भक्त भी थे दिन भर के श्रांत, निद्रावश वे भये विक्लान्त।
गूढ़ नींद में सब सो पाये, सन्मुख अग्नि धुक धुक जाये।

दो० लेटे थे सब नींद में, अग्नि साथ जलाय।
अग्नि को तो देख कर, जन्तु पास ना आय॥ ५०८

हस्तिन का था वन वह भारी, उस को करते वे रखवारी।
वन में वे जब अग्नि पावें, हस्ती उस को तुरन्त बुझावें।
अग्नि शांत करे वे मिल के, वन को भस्म करे जो उन के।
अग्नि जलती जब उन देखी, शंका उन मन भयी विशेखी।



वन में श्री प्रभु जी और उनके शिष्यों ने जंगली हाथियों का डट
कर सामना किया।

मुख ने हाथी को ललकारा ।
जलता इंधन सूंड पै मारा ।।

(दोहा ५०९ के सामने)

दावानल कहीं न बन पाए, इस विध उन मन शंका आए।
दावानल वन सकल जलावे, हस्ती कुल इस से भय खावे।
दावानल से वन वीनाश, हस्ती कुल का भी हो नाश।
जब कहीं हस्ती अग्नि पाये, यत्न करे और उसे बुझाये।

दो० प्रभु का धूना देख कर, हस्ती आया एक।
जल को लाकर सूंड में, छोड़ीं धार अनेक॥ ५०९ क

वर्षाधार जब जल पड़ा, प्रभु उघाड़ा नैन।
कृष्णानन्द मुखराम भी, लेटे सहित जो चैन॥ ५०९ ख

हाथी तब उन सन्मुख पाया, आग बुझाने था जो आया।
मुख ने हाथी को ललकारा, जलता ईंधन सूंड पै मारा।
पीछे हट चिंघाड़ा हाथी, निज पुकारे उस ने साथी।
दौड़ा हाथिन का झुंड आया, कृष्णानन्द देख घबराया।
जल बरसाने हाथी लागे, प्राण बचें न इमि तब लागे।
खड़े हाथी सब व्यूहाकार, करने को निज शत्रु संहार।
रात्री घोर अन्धेरा छाया, मृत्यु का भय सर पर आया।
भक्तों को बस एक सहारा, साथ प्रभु थे जगदाधारा।

दो० रक्षक जब प्रभु साथ हों, टारें संकट नाथ।
अर्जुन को जिमि कृष्ण जी, राखा दे निज हाथ॥ ५१० क

बाली-बन्धु राम ने, विभीषण को भी आप।
तारा प्रभु ने आय कर, मिटा सकल संताप॥ ५१० ख

भक्तों पर जो संकट आया, प्रभु जी ने अनुमान लगाया।
प्रकटा संकट बहुत भयंकर, उमड़ा शत्रु है प्रलयंकर।
तब प्रभु निज विरद संभाला, अग्नि में बहु ईंधन डाला।

गगन चुंबी थी अग्नी भभकी, झड़ी स्फुलिंगों की भी चमकी।
साथ प्रभु नें माया डाली, हस्तिगण मन हुई बेहाली।
सन्मुख काल को उन ने देखा, भागे वे बिन बांधे रेखा।
भगदड़ भगदड़ थे सब भागे, जीव व्याकुल देखन लागे।
भक्त अचंभित थे खड़ पाये, प्रभु महिमा न समझ में आये।

दो० भक्तों को संकेत से, लीना प्रभु निज साथ।
भागे भागे सब चले, मिल पाये जो पाथ॥ ५११

४७. अंधेरी रात्री में कीचड़ के ताल में फंस जाना।

घोर अन्धेरा वन के अन्दर, रात अन्धेरी न था चन्दर।
हाथ को हाथ जहाँ न सूझे, किस विध फिर कोई मार्ग बूझे।
संग प्रभु के भक्त थे धाये, दल दल भूमी में वे आये।
आगा पीछा न कुछ सूझे, कीचड़ के इक ताल में उलझे।
लथ पथ कीचड़ से हो पाये, मुशकिल से उन प्राण बचाये।
निकल वहाँ से फिर वे भागे, भागे भागे आये आगे।
रात्रि का तब अन्त हो पाया, पौ फूटी प्रकाश दिखाया।
भक्तों ने सुख का दम लीना, निवेदन फिर प्रभु से कीना।

दो० घोर विपत्ति नाथ जी, टाली दे निज हाथ।
वर्णन किस विध हम करें, अलौकिक तव यह गाथ॥ ५१२

हस्तिन से हे नाथ बचाया, यम दूतों से जिमि छुड़ाया।
कीच ताल से हमें तराया, मनु वैतरनी पार कराया।
हम तव चरणों को ही ध्यावें, संकट से कुछ भय न खावें।
स्मरण करें जब प्रभु के चरणा, सुगम होय तब संकट तरणा।
नर रूप नारायण स्वामी, भक्तन हेत प्रकटे शुभ नामी।

दर्शन हित योगी के चाले, भक्तों का भी क्षेम संभाले।
दोनों ने प्रभु चरण स्पर्शे, रात भयंकर बीती हर्षे।
इतने में इक जन मिल पाया, जिस ने सर पर बोझ उठाया।

दो० उस नर को तब देख कर, बांध गई कुछ आस।
प्रभु जी ने संकेत से, उसे बुलाया पास॥ ५१३ क
उस को पास बुलाय कर, पूछा हे मम तात।
कौन गाँव है पास में, हमें बताओ बात॥ ५१३ ख

उस जन ने प्रभु को बतलाया, गाँव पास है यह समझाया।
प्रभु ने धन कुछ उस को दीना, संग में तब उस को ले लीना।
प्रभु की रीति यही चलि आई, बिन दीने न लें सेवकाई।
बोझा उस ने वहीं उतारा, जो लागे था उस को भारा।
खाली हाथ हो संग वह चाला, शीघ्र गांव के मारग डाला।
ब्राह्मण इक के घर प्रभु आये, स्वागत में जिस पलक बिछाये।
गांव के जन तब चल के आयें, प्रभु चरणों में शीश झुकायें।
कीचड़ से लथपथ तन देखे, सरदी से भी आकुल पेखे।

दो० तब उन आग जलाय कर, नूतन वस्त्र पहनाय।
सेवा में सब लग गये, प्रभु को पास बिठाय॥ ५१४

सेवा में सब जन वे लागे, प्रभु थे सारी रात के जागे।
भक्तों सहित प्रभु सो पाये, ग्राम जनों ने चरण दबाये।
श्रम हारी निज श्रम को हरते, जन थे बैठे सेवा करते।
सायं प्रभु ने नैन उघारे, बच्चे देखे रोते सारे।
लोग थे सेवा में ही लागे, ऐसे जन थे वे अनुरागे।
प्रभु जी ने तब भक्त जगाये, स्नान करो मुख से फरमाये।
जनता को घर में भिजवाया, जाय करो भोजन फरमाया।
फलाहार स्वयं भी लीना, नित्य कर्म में मन तब दीना।

दो० नित्यकर्म से निपट कर, प्रभु आसन आसीन।
जनता फिर आ पहुंची, सेवा में लव लीन॥ ५१५

प्रभु ने कुछ प्रसंग सुनाये, योग भक्ति के भेद बताये।
ईश्वर की महिमा समझाई, जिस ने रचना सकल रचाई।
जीव ईश का भेद बताया, माया का स्वरूप जताया।
जीव रहे माया वश वर्ती, माया ईश्वर से है डरती।
जीव रहत माया भरमाय, माया ईश्वर से भय खाय।
ईश्वर को जो जीव ध्यावे, माया के ना वश में आवे।
योगी जन ही ईश ध्याता, भक्ति अनन्य वही अपनाता।
माया से वह रहत विरागी, केवल ईश्वर का अनुरागी।
नर वही कैवल्य को जावे, केवल ईश्वर को जो ध्यावे।

दो० प्रभु के सुन उपदेश को, लोग भये प्रसन्न।
पूर्ण सन्त उन को मिले, निज को जानें धन्य॥ ५१६ क

प्रभु जी ने तब पूछा, हमें बताओ मीत।
मंय ग्राम का रास्ता, क्या तुम को प्रतीत॥ ५१६ ख

मंय ग्राम का नाम सुनाया, जनता में सन्नाटा छाया।
प्रभु जी ने फिर प्रश्न दुहराया, वृद्ध पुरुष इक आगे आया।
प्रभु चरणों में शीश झुकाय, वृद्ध पुरुष बोला समझाय।
नाथ उधर को क्यों तुम जावो, वहाँ पर जा कर न सुख पावो।
वह तो राक्षसों का है देश, इस में संशय है न लेश।
नर संहारी वहाँ के लोग, साधू दर्शन के ना योग।
कोई साधू न वहां पर जावे, मारग में ही जा पछतावे।
मन्त्र शक्ति से वे संहारें, नर को पशु बना वा डारें।
ऐसे नर भी मग में पाओ, जिन को देखन से घबराओ।

दो० ऐसे नर भी बहुत से, पथ में हैं महाराज।
जिनके सर तो हैं नहीं, फिर भी करते काज ॥ ५१७

मारग में इक सरिता आवे, सिर बिना नर नाव चलावे।
उसे देख सब भय को खावें, हम तो उस के निकट न जावें।
उस की नाव में जो चढ़ पावे, वह उसे मंझधार डुबावे।
मन्त्र मार या पशु बनावे, अपने कारज में तब लावे।
उस सरिता से सब घबरावें, "नर भक्षी" उस को कह पावें।
वहां के देव भी बड़े क्रूर, मग चलते को देवें शूल।
दया देव न वे दिखलावें, कुपित होय कर दुःखी बनावें।
उन से सब रहते भयभीत, भय से ही पूजें यह रीत।
ऐसे जन हमें क्यों भावें, आप भी वहां न जाना पावें।

दो० प्रभु को इमि सुनाय कर, वृद्ध ने जोड़े हाथ।
माथा भू पर टेक कर, बैठा मिल सब साथ ॥ ५१८

वृद्धविनय प्रभु ने सुन पायी, निज मन की तब बात बतायी।
जीव चराचर जो जग माहीं, ईश्वर की सब रचना आहीं।
प्रभु की ज्योति सभी में पाओ, भेद बुद्धी को इमि दुराओ।
दुःख से हम तो न घबरावें, परमार्थ को नित्य अपनावें।
परमारथ के मग जो चाले, हठ करे और प्रभु को पा ले।
आगे का मग हमें बताओ, संशय मन में लेश न लाओ।
हम योगी को मिल के आवें, प्रभु दर्शन का मारग पावें।
प्रभु ने जब बहु जोर लगाया, जनता ने तब मग समझाया।

४८. नर-भक्षी नदी को पार करते समय नाविक द्वारा षड्यन्त्र व मन्त्र का प्रयोग।

दो० जग कर्ता जो पूछते, उस वन में मग आन।

नर लीला यह जानिये, संशय से हो हान ॥ ५१९

वह रात्रि प्रभु वहां बितायी, उठ कर प्रात चले सुखदायी।
मध्य दिवस का जब हो आया, सरिता का तब तट दिख पाया।
'नर भक्षी' वह नदी कहलावे, जनता उस से भय को खावे।
नाव वहां इक ठहरी तट पर, बैठा जिस में नाविक डट कर।
उस के कन्धों पर था तो सर, क्यों डरते हैं इस से सब नर।
सर बिना नर नाव चलावे, असत्य बात ही यह दिख पावे।
प्रभु जी नाविक से फरमाये, पार उन्हें क्या वह ले जाये।
नाव में उस ने प्रभु बिठाये, संग भक्त भी थे चढ़ पाये।

दो० प्रभु विराजे नाव में, भक्तों को ले साथ।
किराया नाविक मांगा, राखा उस के हाथ। ५२०

चार चार पैसे उतरायी, उस लीनी तब नाव चलायी।
मंझधार जब नाव थी आयी, नाविक अपनी हठी जतायी।
चार चार रुपये जो पाऊं, नाव तभी मैं पार लगाऊं।
इतना द्रव्य जो न मैं पाऊं, मंझधार में नाव डुबाऊं।
सुनो समझो मेरी यह बात, यदि बचाने हों निज गात।
उस की सुन यह हठमयी वाणी, समझ गये प्रभु परम ज्ञानी।
जनता जो इस से भय खावे, इस विध सब को यह धमकावे।
प्रभु ने उस को तब समझाया, हठ छोड़ो उस को बतलाया।

दो० ज्यों ज्यों प्रभु समझावते, वह अड़ता ही जाय।
श्वान पूंछ सीधी करो, टेढ़ी ही रह पाय ॥ ५२१

शान्त मधुर जो प्रभु की वाणी, उस पर कान न देत अभिमानी।
आंखें वह प्रभु को दिखलावे, गाल गलोच से न शरमावे।
मूढ़ बुद्धी वह कुछ न जाने, प्रभु की महिमा न पहचाने।

त्रेता युग का केवट होता, जल लाय प्रभु पग को धोता।
बिन मांगे सब कुछ ही पाता, संग में अपने पितर तराता।
कठवे में जब जल भर लाता, इन्द्र नभ से पुष्प बरसाता।
दुख दोष दरिद्रता से छूट, पाता प्रभु का प्रेम अटूट।
यह सुयोग पर किमि बन आता, मूढ़मती नहीं भक्ति पाता।

दो० मन्द बुद्धि नाविक कहां, कहां केवट धीमान।
कवि की केवल कल्पना, कल्पे अल्प महान॥ ५२२

दुष्ट नाविक दुष्टायी कीनी, अपवाणी प्रभु को कह दीनी।
क्षमा सागर प्रभु शांत स्वभाव, उन का कभी न बिगड़े भाव।
क्षीरसिन्धु में कांजी पाना, महापुरुष अपशब्द सुनाना।
आये न उन में अन्तर लेश, उन के गुण तो दिव्य विशेष।
क्रोध न गुरु के मन में आवे, सेवक से पर सहा न जावे।
जिस मुख ने अपशब्द उच्चारे, मुख ने उस पर घूंसे मारे।
दण्ड पाय वह कूदा जल में, तैरा पार वहाँ से पल में।
कृष्णानन्द पतवार संभाली, मंझधार से नाव निकाली।

दो० तट पर नाव लगाय कर, कूद पड़े उस पार।
सुंदर थल को देखकर, बैठे जगदाधार॥ ५२३ क
बैठे उन को देख कर, नाविक भया समक्ष।
बोला वह ललकार कर, अब संभलो तुम दक्ष॥ ५२३ ख

अब तुम अपनी जान बचानी, मैंने बदले की है ठानी।
जिसने मुझ पर घूंस चलाया, पहले उसका करूं सफाया।
अमोघ मन्त्र जब मेरा चाले, क्षण में तन से प्राण निकाले।
पृथ्वी पर उस यन्त्र बनाया, मुख से मन्त्र कुछ कह पाया।
तब बिगड़ा मुख राम का हाल, तन कांपे और भया बेहाल।

मुख का मुख से वचन न निकलें, गिरता गिरता वह न संभले।
केवल प्रभु की ओर निहारे, संकट में जो भक्त उभारे।
संकट में जब मुख को पाया, कृष्णानन्द को प्रभु समझाया।
उस के काम वह शिक्षा आयी, विन्ध्याचल में थी जो पायी।

दो० रक्षा हित करने लगा, मन्त्र का वह जाप।
शक्ति नाविक की तभी, हर ली उसने आप॥ ५२४

स्वास्थ्य लाभ मुख राम ने पाया, नाविक के तब पीछे धाया।
जा कर उस को पकड़ा उस ने, चपटे खूब टिकाये उस ने।
तोबा तोबा जब कर पाया, छोड़ उसे प्रभु पास वह आया।
प्रभु ने संग भक्तों को लीना, आगे मग पर पग धर दीना।
कुछ दूरी पर बस्ती पायी, प्रभु जी के तब मन में आयी।
यहां से भोजन कर के जावें, सुख से फिर हम रात बितावें।
कृष्णानन्द को आज्ञा कीनी, दो रुपये की राशी दीनी।
खाने को कुछ मोल ले आवे, जिस से सब की क्षुधा मिटावे।

दो० प्रभु की आज्ञा मान कर, कृष्ण गया उस गांव।
आगे जाय उस देखा, नाविक था उस ठांव॥ ५२५

४९. नाविक के उकसाने पर मार्ग के गाओं से भोजन उपलब्ध न होना।

नाविक को उस गांव में पाया, उन से पहले ही जो आया।
हाट हाट जा पैर टिकावे, बात सबन को यही सुनावे।
मत आगंतुक को कुछ देना, राज दण्ड जो है ना लेना।
उस की धमकी में सब आये, कृष्णानन्द न वहाँ कुछ पाये।

हो निराश वह लौट के आया, प्रभु जी को सब हाल सुनाया।
क्रोध उपजा तब मुख मन भारी, रोष सहित उस विनय उचारी।
नाथ आज्ञा जो मैं पा जाऊं, दुष्ट पुरुष को सबक सिखाऊं।
दुष्ट न पूरा दण्ड बिन पाये, नम्रता को कभी अपनाये।

दो० प्रभु आदेश मुझे मिले, जाय करूं मैं काज।
उस दुष्ट को सोध कर, सभी जटाऊं साज॥ ५२६

भोजन बिन अब रहा न जाये, बाधा नाविक इस में लाये।
मार पीट कर दूर भगाऊं, प्रभु को आ फिर भोग लगाऊं।
सुनी प्रभु मुख राम की वाणी, रोष से पूर्ण जो थी सानी।
क्रोध बुद्धि पर परदा डाले, नर से अनुचित कर्म कराले।
प्रभु न आज्ञा उस को दीनी, करें शाँत यह मन में चीनी।
प्रभु जी मना किया "न जाय", फिर भी निकला आंख बचाय।
बाजे बजते उस ने देखे, नर नारी बहु संग में पेखे।
मुख था पण्डित बहु प्रवीण, वह भी उनके संग हो लीन।
एक मन्दिर में सब जन आये, भेंटें बहु विध थे वे लाये।

दो० अन्न ताँबूल सुपारी, भेंटें बहु विध लाय।
मांस मीन और मदिरा, देव को दीं चढ़ाय॥ ५२७ क

भक्ष्य वस्तु फल आदि को, जो देखे प्रभु योग।
आया ले मुख राम वह, प्रभु लगावें भोग॥ ५२७ ख

फल पुष्प मुख राम ने लाये, मन्दिर में थे जो चढ़ पायें।
धो पोंछ कर प्रभु ढिग लाया, प्रसाद प्रभु से भक्तन पाया।
रात्री तब होने को आयी, नित्य कर्म प्रभु वृत्ति लायी।
ध्यान भजन भक्तन भी कीना, प्रभु सेवा में मन फिर दीना।

चरण प्रभु के दाबन लागे, कृष्णानन्द मुखराम सुभागे।
कोटि जन्म की पुण्य कमायी, प्रभु चरणों की सेवा पायी।
भक्तन हित इक कथा सुनावें, योग महात्म्य प्रभु बतावें।
सुनते भक्त वृत्ति को लाकर, प्रभु बतावें सब समझाकर।

५०. सिद्ध योगी और पांच बालकों का उपाख्यान।

दो० एक समय की वारता, योगी वन को त्याग।
बस्ती में वह आय कर, ठहर गया इक बाग॥ ५२८ क

बाल वहां पर खेलते, करते खूब कलोल।
मिलकर वे सब घूमते, बहु बिध बोलें बोल॥ ५२८ ख

खेलें कूदें बालक मिल कर, योगी देखे इक टक लाकर।
ऐसे बालक उन में पाये, दिव्य लोक से जो थे आये।
जन्म जन्मातर साधन कीने, स्वर्ग भोग फिर नर तन लीने।
गुरु मिले तो योग कमावें, अथवा भव में वे बह जावें।
यह सब योगी ने जब देखा, उस ने तब मन मांहि उलेखा।
योगी वह जो कृपा धारे, जीवों का भव रोग निवारे।
बालक उस ने पास बुलाये, पांच जीव जो परम सुहाये।
समाधि में उन को बिठलाया, पूर्व जन्म का रहस्य दिखलाया।

दो० समाधी में बिठलाय कर, विदा भया वह साध।
फैल गयी तब नगर में, करनी साध अगाध॥ ५२९

लोगों ने जब आकर देखा, चिन्ता उन मन भयी विशेखा।
बेसुध बालक बैठे ऐसे, प्राण बिना तन उन के जैसे।
सब जन उन को आय हिलाते, छेड़ छाड़ कर उन्हें जगाते।

बहुत उपाय सभी कर पाये, बालक पर न होश में आये।
माता पिता जो उन के सारे, दुख में डूब गये वे भारे।
भद्र पुरुष उन को समझावें, धीर न पर वे लेश भी पावें।
कुछ जन लागे योगी ढूंढन, सुराग मिला न उस का तत्क्षण।
हारे जन सब घर को पागे, मात पिता रक्षा में लागे।

दो० इतनी कथा सुनाय कर, प्रभु देखा मुख ओर।
वह चाहे कुछ पूछना, रुके प्रभु उस ठोर॥ ५३०

मुख ने पूछा नाथ बतायें, योगी की करनी समझायें।
बालकन की उस सुधि भुलाई, माता पिता को भई दुखदाई।
क्या ये कर्म उचित उस कीने, आज्ञा मात पिता बिन लीने।
प्रभु जी मुख से तब फरमाया, उस के मन का भरम मिटाया।
संशय ठीक तुम ने प्रगटाया, मन में तेरे जो है आया।
जग मर्यादा को बिन पाले, भला कर्म भी दुख में घाले।
बालक बैठे पूरण सुख में, मात पिता पड़े थे दुख में।
साध की निन्दा करते लोग, कौन जाने क्या होता योग।

दो० भूला जग है योग को, वन में योग विलीन।
जनहित के जो साधन, जनता उनसे हीन॥ ५३१

योगीजन वन मध्य सिधाये, जनता योग कहां से पाये।
वश संस्कार योगि चलि आया, होय द्रवित कृपा कर पाया।
अज्ञ जन कृपा से परेशान, जिमि वर्षा से कुम्हार अंजान।
आगे कथा सुनो मन लाकर, जनता करत वहां जो आ कर।
जितने मुख उतनी हों बातें, दुख में बीतें दिन वा रातें।
कोइ कहे बालक मर पाये, कोई कहे बेसुधि में आये।
कोइ कहे नाडी ना चाले, कोइ कहे तन शीतल साले।

कोइ कहे तन दाहन योग, "अभी नहीं" कहें कुछ लोग।

दो० माता पिता हैरान थे, सुन लोगन की बात।
वे क्या करें क्या न करें, थी बुद्धि चकरात ॥ ५३२

दो तन अग्निसात उन कीने, प्राण हीन जो शव वत चीने।
तीन देह जो तब रह पाये, वे इकलौते पूत थे जाये।
उन के मात पिता न त्यागें, रात दिवस उन संग ही लावें।
योगी बात भली न कीनी, उस जो अपनी राह थी लीनी।
ध्यान योग को गुरु ही जाने, जग न उस को लेश पहचाने।
गुरु जब जावे नर को छोड़, जग तब लेता है मुख मोड़।
ध्यानी शिष को गुरु संभाले, उस को करे न जग हवाले।
तीनों बाल ध्यान में पागे, मात पिता थे सेवा लागे।
जनता उन पर छप्पर डाले, घाम शीत से रहें संभाले।

दो० एक वर्ष व्यतीत हुआ, दो भी हुए व्यतीत।
ध्यान से बालक न उठे, जनता के मन प्रीत ॥ ५३३ क

जनता उन को पूजती, जान ईश का रूप।
पूजे सब की कामना, मानें इष्ट स्वरूप ॥ ५३३ ख

बहुत वर्ष में योगी आया, बालों के वह धाम सिधाया।
जनता भी दर्शन हित आई, पिछली बात सबन कह पाई।
सब जन इच्छा यह प्रकटावें, ध्यान से बालक अब उठ पावें।
दीना योगी ने आश्वास, उतारे नीचे उन के श्वास।
तीनों के तब उघड़े नयन, निकला मुख से न कुछ बयन।
दर्शन योगी के उन पाये, मन में जिसका रूप सुहाये।
सब जन उन्हें घेर के ठारे, सगे संबंधी भी जो सारे।

बालक किसी ओर ना देखें, केवल योगी को ही पेखें।

दो० ध्यान से बाल उठा कर, योगी भया तयार।
वन की ओर सीधारे, उसका यही विचार॥ ५३४

अन्तर्धान योगी तत्काल, इस से बालक हुए बेहाल।
उन की आँखें नीर बहावें, सब जन देख बहु दुःख पावें।
दो बालक वन ओर सिधारे, तीजा रोक पाये मिल सारे।
उस को पर कुछ भला न लागा, खान पान सब उस ने त्यागा।
समाचार राजा ने पाया, वह भी वहां देखन को आया।
राजा बालक को संग लाया, राज महल में उसे ठहराया।
भोग सामग्री सकल जुटायी, वह बालक को लेश न भायी।
तीर्थ यात्रा का निश्चय कीना, सकल परिवार संग हो लीना।

दो० कुछ दूरी पर जाय कर, मिल पाये दो बाल।
प्रथम थे जो सीधाये, होकर बहु बेहाल॥ ५३५

दीर्घ यात्रा के पश्चात, देखा हिमालय उन साक्षात।
बद्रिक आश्रम का मग लीना, जहां वास योगी था कीना।
कठिन हिमालय मग अपनाया, जन गण उन के पीछे धाया।
जनता से किमि मुक्ति पावें, मन में बाल सोच अपनावें।
रात को जनता नींद बिभोर, बालक चले किये बिन शोर।
प्रातः उठ जनता क्या देखे; जिमि बिन राम अयोध्या पेखे।
ढूंढा बहुत बालक न पाये, तब नगर में लौट के आये।
बिन बालक के जनता देख, राजा के मन शोक विशेष॥

दो० राजा को तभी दीनी, सारी बात बताय।
उदासीन नगरी भयी, देव पुरुष गंवाय॥ ५३६

बालक योगी ढूंढन लागे, खान पान सकल उन त्यागे।
कई दिवस क्षुधार्त बिताये, कई दिवस तृषार्त लंघाये।
मारग में आगे ही चालें, रुकने का न ध्यान वे घालें।
दृढ़ निष्ठ हों योगी जैसे, पूरण निष्ठावान वे तैसे।
भूख प्यास से न घबरावें, शीत घाम वे सब सह पावें।
वनचर जीवों से न डरते, उन के पग आगे ही बढ़ते।
अन्तर्यामी योगी देखें, डाल परीक्षा उन को पेखें।
गुरु कृपा को वही नर पावे, परीक्षा से जो न घबरावे।

दो० लीनी कठिन परीक्षा, स्वयं गुरु ने आय।
रोमाञ्चकारी दृश्य था, किमि वर्णन हो पाय॥ ५३७

सिंह रूप योगी प्रकटाया, सन्मुख बालक गर्ज के आया।
इक बालक पर पंजा दागा, उस को ले कर ही वह भागा।
थर थर दोनों बालक कांपे, सिंह रूप भय उन मन व्यापे।
रोते रोते चलते जावें, किस विध वे आश्वासन पावें।
एक पुरुष तब सन्मुख आया, उस ने दोनों को समझाया।
भयंकर वन से अब मुड़ जाओ, मत अपने तुम प्राण गंवाओ।
जीवों से वन संकरा घोरा, त्राण पाओ न किस भी ओरा।
फाड़ शेर तुम्हें खा जावे, सुधी कौन तुम्हारी पावे।
बालक बोले हे महाभाव, हमारे जानो न तुम भाव।

दो० योगी को हम खोजते, वन में जिस का वास।
पहुंचेंगे उस पास हम, मन में दृढ़ विश्वास॥ ५३८ क

वन यह बहुत भयंकर, इस मे ना सन्देह।
गुरु हमारे मन बसे, बेशक जायें देह॥ ५३८ ख

हठ देखा जब उन का भारी, पुनः पुरुष ने गिरा उचारी।
तुम बालक हो बहुत नादान, डालो संशय में जो प्राण।
नर तन जीव भाग्य से पाता, मूरख वह जो इसे गंवाता।
तन से प्यारी वस्तु न कोई, लोक परलोक सुधारत जोई।
तन बचे तो योग भी पाओ, हठ में आय न तन गंवाओ।
गुरु का ठौर तुम जानो नाहीं, मारग भी पहचानो नाहीं।
यहां से बच के जब तुम जाओ, गुरु अनेकों जग में पाओ।
चलो बस्ती में मेरे साथ, सौंपूं तुम्हें गुरु के हाथ।

दो० ऐसा गुरु मेलावऊँ, देवे शिक्षा शोध।
ज्ञान कसौटी जब मिले, बढ़े तुम्हारा बोध॥ ५३९

सुन कर उस पुरुष की वाणी, बालक बोले गुरु सन्मानी।
हम को गुरु योगी मिल पाया; जीवन उस के चरणि चढ़ाया।
गुरु योगी ही ज्ञान प्रदाता, उभय जगत का वही विधाता।
बात तुम्हारी किस विध मानें, गुरु योगी के हम दीवानें।
हमें हमारे भाग्य पै छोड़ो, बस्ती को मुख तुम ही मोड़ो।
गुरु जो तुम हम को बतलाओ, उस से ज्ञान तुम्हीं जा पाओ।
सुन पुरुष वह क्रोध में आया; लाठी ले उन पीछे धाया।
बालक रोते रोते भागे, पग पग पर वे गिरने लागे।

दो० भूख प्यास से क्षीण वे, कटे कांटों से पांव।
लठधारी पीछे पड़ा, शरण मिले किस ठांव॥ ५४० क

हाथ जोड़ तब खड़ भये, गुरु का करके ध्यान।
सद्गुरु ही रखवार हैं, मन में ऐसा मान॥ ५४० ख

तत्क्षण योगी प्रकटा, लठ धर अन्तर्धान।

गले लगाये बाल त्रय, नभ में जय जय गान ॥ ५४० ग

प्रभु जी ने यह कथा सुनाई, भक्त जनों ने शिक्षा पाई।
दृढ़ निष्ठा जब नर अपनावे, गुरु योगी की कृपा पावे।
कहें प्रभु तब जन कल्याणी, शयन करें बहु रात विहानी।
सुख से सो पाये सुख धाम, साथी सहित सोया मुख राम।
जागे प्रात कर्म नित कीना, आगे का तब मारग लीना।
मारग अल्प जभी चल पाये, देखा नाविक संग लगि आये।
क्रोध भया मुख के मन भारी, दीनी उस को मार करारी।
कर दया प्रभु ने छुड़वाया, जान बचा वह आगे धाया।
जो भी गांव मार्ग में आता, जनता को धमका के जाता।

दो० जो आगुंतक आ रहे, अन्न न देवे कोई।
राजाज्ञा माने नहीं, दण्ड पायेगा सोई ॥ ५४१

५१. मंय ग्राम में प्रवेश।

ग्राम किसी से अन्न न पाया, फलाहार से काम चलाया।
शुद्ध भोग जो भी मिल जाये, योगी उस से काम चलाये।
मंय ग्राम प्रभु आन पधारे, मनहर बस्ती के घर सारे।
राजा रणसिंह सूचना पाई, उस ने कीनी प्रभु अगवाई।
आदर से निज घर ले आया, सुख से प्रभु जी को ठहराया।
बहुत सत्कार प्रभु को दीना, परिजन से मिल कर जो कीना।
नाविक वहां भी दिया दिखायी, जो था मारग में दुखदायी।
जान राजा का अपना बन्दा, प्रभु पूछें "क्या करता धन्दा"।

दो० सुन कर प्रभु की बात यह, रणसिंह दीनी टाल।
नीति कुशल जो राजा, राखे रहस संभाल ॥ ५४२

टालम टोल राजा ने कीनी, अन्तर्यामी मन की चीनी।
राजा ने सेवक बोलाये, उन को आज्ञा यह कह पाये।
सुख से प्रभु जी को ठहराओ, सकल सामग्री भी पहुंचाओ।
रात्री को उत्सव कर पायें, सकल प्रजागण उस में आयें।
सेवक जन ने देर न लायी, जो आज्ञा सब सेव कमायी।
ठहरे सुख से प्रभु जिस ठोर, आ सके न कोई उस ओर।
रात्री होने को जब आयी, धुन ढोलक मुखराम सुहायी।
चुपके से उत्सव में आया, गान मधुर वहां उस ने गाया।
उस पर किसी ने मन्त्र चलाया, बन्द गला उस का हो पाया।

दो० बन्द गला उसका हुआ, खोया उस ने चेत।
जनता बाहिर धकेला, सुधि कोई न लेत॥ ५४३

बहुत रात जब हुई व्यतीत, कृष्णानन्द को भया प्रतीत।
सुध मुखराम की जा मैं लाऊं, लाकर उसे निज संग सुलाऊं।
धीरे से उठ कर वह आया, प्रभु को उस ने नहीं जगाया।
उत्सव में जा कर उस देखा, बहिर पड़े मुख राम को पेखा।
उस ने उस को बहुत जगाया, लेश न होश में पर वह आया।
हार कर उसने प्रभु ध्याया, संग में मन्त्र को जप पाया।
मुख ने नयन लिए तब खोल, मुख से बोला वह फिर बोल।
दुष्ट जनों ने मन्त्र चलाया, रक्षा था ना मैं कर पाया।

दो० निज रक्षा हित मन्त्र जपि, बदला इन से लेऊं।
स्मरण रहे जो देर तक, ऐसा सबक सखेऊं॥ ५४४

निश्चय उस बदले का कीना, पीट तभी दो चार को दीना।
रणसिंह प्रभु पास तब आया, नाथ को उस ने स्वयं जगाया।

प्रभु जी को उस ने बतलाया, तब शिष्यन है शोर मचाया।
कइयों को है मारा पीटा, कइयों को उन पकड़ घसीटा।
जा कर देखो सारा हाल, कौने कितने उन बेहाल॥
प्रभु जी सुन राजा की वाणी, उठ चले वह जग कल्याणी।
प्रभु ने जा मुख राम को रोका, और कृष्णानन्द को टोका।
दोनों को प्रभु संग ले आए, सुख से रात्रि भर सो पाए।

५२. मंय राज्य के राजा रणसिंह का श्री प्रभु जी और उन के शिष्यों पर मारण मन्त्र का निष्फल प्रयोग।

दो० प्रभु जी ने तब रात भर, सुख से कीना शयन।
राजा के मन रोष था, क्रोध भरे थे नयन॥ ५४५ क

नींद न आई रात भर, किमि हो मन का शोध।
शिष्यन के अपराध का, निकले गुरु पर क्रोध॥ ५४५ ख

राजा था तांत्रिक प्रवीण, मन्त्र न उस का जाता हीन।
जिस पर मारन मन्त्र मारे, तन से उस के प्राण निकारे।
ऐसे ही उस ने तब ठानी, जैसे बचें न तीनों प्राणी।
घोर घोरतर मन्त्र चलाये, इष्ट देव को खूब ध्याये।
इष्टों के पर इष्ट थे नाथ, उस का इष्ट न देवें साथ।
इस विध उस ने रात बितायी, यन्त्र मन्त्र की झड़ी लगायी।
समझा जब तीनों मर पाये, शांत भया मन में सुख लाये।
प्रात हुई उस सचिव बुलाया, नाविक भी उस के संग आया।

दो० 'वन्दे' सचिव बोलाय कर, खड़ा भया साश्चर्य।
स्मरण प्रातः ही किया, इस का क्या तात्पर्य॥ ५४६

सचिव को रणसिंह समझाया, नाविक को भी उस बतलाया।
तीनों जन हैं मैं संहारे, उपद्रव के दण्ड में मारे।
उन के शव तुम जाय जलाओ, नदी में ही अथवा प्रवाहो।
आगे से रहना सावधान, कोई न पहुंचे यहां ले प्राण।
सुन सचिव ने शीश झुकाया, आज्ञा पालन हित चल पाया।
संग में सेवक गण बुलवाये, ले चालें जो शव उठवाये।
जभी प्रभु के धाम पधारे, देख विस्मय में डूबे सारे।
जीवित तीनों जन उन देखे, नित्य कर्म में लागे पेखे।

दो० नित्य कर्म थे कर रहे, प्रभु जी उठ कर प्रात।
कृष्णानन्द मुखराम भी, देखे उन साक्षात ॥ ५४७

५३. राजा रणसिंह को आकाशवाणी द्वारा श्री प्रभु जी की शक्ति का ज्ञान होना और चल कर शरण में आना।

जीवित जब उन सब को देखा, विस्मय तब मन भया विसेखा।
इक दूजे की ओर निहारें, मुख से कुछ न प्रकट उचारें।
वचन राजा का होत न झूठ, आज भयी यह बात अनूठ।
उलटे पांव लौट सब आये, देखा जो बतलावन पाये।
सुन राजा विस्मय में डूबा, उस का नष्ट भया मनसूबा।
बात सचिव की सत्य न मानी, तभी सुनी उस नभ से वाणी।
"राजन झूठ न इस को मानो, जग के स्वामी आये जानो।"
सुने जभी नभ के उस बयना, खुले बुद्धि के उस के नयना।

दो० अन्तर में उस पा लिया, साचा प्रभु का भाव।
जैसे बैठा उठि चला, ऐसा उस मन चाव ॥ ५४८

प्रभु को जा उस शीश झुकाया, निज मन का उस भेद बताया।

प्रभु में इष्ट के दर्शन पावे, कोटी सूरज तेज सुहावे।
बार बार प्रभु चरण जुहारे, क्षमा क्षमा के वचन उचारे।
कहें प्रभु "राजन बतलाओ, किस अपराध की माफ़ी चाहो।"
राजा बोला हे महाराज, तान्त्रिक जग का मैं सिरताज।
मन्त्र मेरे की शक्ति अचूक, आये न जिस में लेश भी चूक।
आज रात भर मन्त्र चलाया, तुम तीनों को लक्ष बनाया।
उस का तनिक न भया प्रभाव, तब से मन में उपजा भाव।
सर्व जीवों पर मन्त्र हावी, ईश्वर पर न होय प्रभावी।

दो० सकल जगत के ईश तुम, मेरे मन विश्वास।
कोटि सूरज सम प्रभा, देखा तव प्रकास॥ ५४९ क
मुझ को आये तारने, इस नगरी में आप।
मैं सेवक तव शरण में, दूर करो संताप॥ ५४९ ख

नाथ शरण में मुझ को लेवो, गुरु मन्त्र उपदेश में देवो।
गुरु मन्त्र ही मोक्ष प्रदाता, जग जीवन में सुख का दाता।
गुरु मन्त्र सब काम संवारे, किसी का न वह काज बिगारे।
गुरु मन्त्र मैं प्रभु से पाऊं, तान्त्रिक मन्त्र सकल भुलाऊं।
जो मन्त्र पर काज बिगारें, ऐसे मन्त्र ना हम धारें।
मन्त्र मनन में देवे संग, जीव बने तब प्रभु का अंग।
प्रभु का नाम ही मन्त्र जानूं, मुक्ति मारग सत्य पहचानूं।
गुरु मन्त्र साधन प्रदाता, गुरु अनुग्रह मोक्ष का दाता।
अहो भाग्य जो आप पधारे, सन्मारग में डालन हारे।

दो० सन्मारग में डालिये, भ्रम भगें अब दूर।
नाथ अनुग्रह कीजिये, भव बन्धन हो चूर॥ ५५०

सुन कर उस की प्रभु जी बात, बोले रणसिंह को "मम तात।

सत्य हैं तुम ने वचन उचारे, धर्म वही जो जन्म संवारे।
सत्य धर्म मुक्ति का दाता, सत्य धर्म सब जग सुखदाता।
सत्य धर्म को तुम अपनाओ, द्वेष भाव तुम सकल बुराओ।"
इमि कह प्रभु ने मन्त्र बताया, योग मार्ग रणसिंह लगाया।
सह परिवार सेव उस कीनी, आशिर्वाद प्रभु की लीनी।
पाँच सात दिन वहां विराजे, इन्द्र सभा जिमि वृहस्पति साजें।
रणसिंह से प्रभु तब फरमाये, "हम योगी को मिलने आये।
उस का ठौर ठिकान बताओ, अथवा हम को उधर पहुंचाओ।

५४. श्री प्रभु जी का सिद्ध योगी से मिलाप।

दो० हम आये पंजाव से, सहते कष्ट अशेष।
योगी के दर्शन करें, रहता जो इस देश॥ ५५१

रणसिंह ने तब विनती कीनी, इच्छा प्रभु जी की जब चीनी।
"नाथ ठौर योगी का जानूं, मारग अति कठिन मैं मानूं।
मैं आप को स्वयं पहुंचाऊं, सेवा का भी अवसर पाऊं।"
राजा की तब आज्ञा पाये, पालकी सुंदर सेवक लाये।
प्रभु जी को उस में बिठलाया, राजा ने भी कंधा लाया।
पालकी सेवक ले कर चाले, खूब यत्न से उसे संभाले।
घोर वन में योगी का वास, बस्ती न कोई उस के पास।
योगी ने समाधि में देखा, स्वयं प्रभु को आते पेखा।

दो० प्रभु को देख समाधि में, योगी उठा सहर्ष।
आगे आया चल कर, उन के करनें दर्श। ५५२ क

रणसिंह ने संकेत से, प्रभु को दीनि बताय।
"जिस को मिलने जात हैं, वह स्वयं चलि आय॥" ५५२ ख

प्रभु शिविका से नीचे आये, योगी जानब कदम बढ़ाये।
योगी सन्मुख प्रभु को पाया, दण्डवत करने को वह धाया।
आ कर उस ने कीना प्रणाम, कहा "स्वागत आप का राम।
पंचनद से हो आप पधारें, गंडाराम के सुत दुलारे।
आइये मेरे योगी राज, पावन करिये आश्रम आज।"
संकोच में आ प्रभु उचारें, योगीराज न मुझे पुकारें।
मैं योगियों के पग की धूल, खोजूं उन को जग में भूल।
मुझ को योग की राह बताओ, निज मुख से उपदेश सुनाओ।

दो० बहुत दूर से चल कर, पहुंचा हूं मैं आज।
इच्छा मेरी पूर्ण हो, हे योगी महाराज॥ ५५३ क

सिद्ध पुरुष जो आप हैं, करो योग का दान।
मैं जिज्ञासु योग का, योगिराज महान॥" ५५३ ख

प्रभु की बात उस ने सुन पाई, मन में गुणी नाथ प्रभुताई।
स्पष्ट बात मुख से कह पाया, "मैं न पूरण योग कमाया।
कुछ ही अंग हैं मैंने साधे, आठों अंग न मैं आराधे।
तुम से तो है जग ने तरना, अष्टाँग योगी तुम ने बनना।"
बोले प्रभु "कब योग कमाऊं, कब अष्टांग योगी बन पाऊं।
बिन गुरु योग किमि कोइ पाये, मुझ को गुरु नहीं मिल पाये।
गुरु को ढूंढत मैं महाराज, दर्शन हुए आप के आज।
आप मुझे कुछ भेद बताओ, हमें योग का राह दिखाओ।

दो० घोर वनों को लाँघ कर, पहुंचे हैं इस देश।
सतगुरु कहां मिल पायें, करो हमें निर्देश॥ ५५४ क

सुनी प्रभु की बात जब, योगी बोला "तात।

तेरे गुरु नेपाल में, शिव रूप साक्षात ॥" ५५४ ख

प्रसन्न वदन प्रभु फरमायें, "किस विध हम को वे मिल पाये।
योगी ने तब भेद बताया, भावी को उस ने समझाया।
आकर स्वयं गुरु इक रात, संग ले जायें तुझ को तात।
ऐसे सत्गुरु न जग माहीं, मिलेंगे जैसे तेरे ताहीं।
डेढ़ वर्ष में कर के पूरण, योग अष्टांग दें संपूरण।
वेला संध्या का तब आया, कन्द मूल सब साध बनाया।
रात्री को सुख से सो पाये, प्रात उठे भगवान ध्यायें।
योगी प्रभु के पास जब आया, प्रभु जी ने प्रसंग चलाया।
"योगी तुम ने मुझे पुकारा, मैं तो तीर्थों का ही प्यारा।

दो० एक देश में बैठ कर, कब योग कर पाऊं।
तीर्थों की जो वासना, उस से मुक्त हो जाऊं ॥ ५५५

योगी ने तब उत्तर दीना, योग रहस को परगट कीना।
"योगी बाहर न तीर्थ देखे, अपने घट में ही सब पेखे।
अब तुम बैठो ध्यान लगाकर, प्राणायाम से सांस चढ़ाकर।
बात प्रभु ने उस की मानी, योग धर्म के प्रभु सन्मानी।
ज्यों ही प्रभु ने श्वास चढ़ाये, सब तीरथ घट में दिख पाये।
ऋषि मुनियों के दर्शन पाये, सदाशिव महाप्रभु जी आये।
उस योगी के गुरु को पेखा, संतोष प्रभु के चित्त विशेषा।
प्रभु ने निज तब प्राण उतारे, बैठे जन सब देखे सारे।

दो० सब को सन्मुख देखकर, प्रभु बतायी बात।
"योग धर्म से बढ़ कर, तत्व नहीं कुछ तात ॥" ५५६ क

प्रभु ने तब प्रकटाया, योगी प्रति आभार।
लौट गोहाटी को चलें, प्रभु जी भये तयार ॥ ५५६ ख

मारग दर्शन योगी कीना, उस का तो था सब ही चीना।
"बन्दर राज्य से हो कर जाना, मारग सुगम यह तुम अपनाना।
रणसिंह ने भी विनय सुनायी, सद्गुरु सकल जगत सुखदायी।
हम को कभी न नाथ भुलाना, दासन का चित चरणि लगाना।
कष्ट सहारे जो इस देश, दास के मन में बहुत क्लेश।
अब हम मन की बात उचारें, सुख से नाथ नेपाल पधारें।
नृप नेपाल है बन्धु मेरा, समझो मेरा भाई चचेरा।
बात हमारी सब वह माने, नाथ जायें तो अति सन्माने।

दो० दर्शन नृप को दीजिये, जब पहुंचें उस देश।
पाती रूप संदेश यह, करना उस के पेश॥ ५५७

उस के पास मैं भेजूं दूत, जिस से करे वह स्वागत सूत।
महाशिव का है उत्सव भारी, जिस की होवे अभी तयारी।
वहाँ पर जा कर उस को देखें, भक्त जनों की श्रद्धा पेखें।
कह राजा पाती दे पायी, प्रभु जी ने मुखराम थमायी।
उसने पोथी में वह राखी, जो थी उस निज कांख में कांखी।
प्रभु जी निज पथ तब अपनाया, रणसिंह का तो मुख कुम्हलाया।
बिछुड़न सज्जन का दुखदायी, यह चलि रीत सनातन आयी।
योगी ने भी माना खेद, भाव में जिस के लेश न भेद।

दो० सम भाव अपनाय कर, फिर भी मन हो खिन्न।
इसमें एक रहस्य था, यह तो बिछुड़न भिन्न॥ ५५८

प्रभु जी मारग सुगम अपनाया, बन्दर राज्य त्रिदिन में आया।
प्रभु गोहाटी ओर पधारे, मारग के वन लांघे सारे।
चल गोहाटी में जब आये, दर्शन कर सब भक्त हर्षाये।
हरानन्द मिल पाया ऐसे, धेनु बिछुड़ा बछड़ा जैसे।

दण्डी स्वामी भी मिल पाया, प्रभु चरणों में शीश झुकाया।
फिर मिले सब प्रभु के प्यारे, कृष्णानन्द मुखराम से सारे।
कुशल क्षेम सब उन कह पायी, यात्रा की तब कथा सुनायी।
मुख ने मुख से सब कह दीनी, पग पग प्रभु जो रक्षा कीनी।

दो० प्रभु की शक्ति अगाध का, वर्णन मुख ने कीन।
दत्त चित्त सुन सब पाये, दिव्य कथा में लीन॥ ५५९ क

दिव्य कथा में लीन हो, तन की सुध बिसराय।
कथामृत की धार वह, गहरी मनहिं समाय॥ ५५९ ख

५५. नेपाल की यात्रा।

प्रभु जी ने दीना आदेश, छोड़ चलें अब यह प्रदेश।
मार्ग उत्तर का हम ग्राहवें, देश नेपाल ओर अब जावें।
योगी महान मिलें उस देश, आप्त पुरुष का यही आदेश।
प्रभु की आज्ञा को तब मान, तुरन्त चले सब भक्त सुजान।
जभी देश के निकट पधारे, मार्ग देखे रुद्ध उन सारे।
शिव मेले के यात्री भारी, जनता उमड़ पड़ी थी सारी।
राज जनों ने सब रुकवाये, कोइ न आगे बढ़ने पाये।
सब के साथ प्रभु रुक पाये, वृक्ष के नीचे डेरे लाये।

दो० रुके मार्ग में नाथ जी, मण्डली सारी संग।
परेशान जनता खड़ी, राज पुरुष भी तंग॥ ५६०

विलंब हुआ देखा जब भारी, दुख में देखी जनता सारी।
प्रभु जी भक्तों को फरमाये, जा पूछ कोइ सज्जन आये।
क्यों न जनता बढ़ने पाती, ठहर क्यों यहां कष्ट उठाती।

क्या राजा की आज्ञा ऐसी, अथवा मुहूर्त घड़ी है नैसी।
अन्तर्यामी का फरमाना, सुन भक्तों ने अचरज माना।
दण्डी स्वामी आज्ञा मानी, गया जहां खड़े बहु प्राणी।
इक अधिकारी से पुछ पाया, प्रश्न प्रभु जी जो फरमाया।
उत्तर मिला "मार्ग खुल पावें, राज गुरु जब आगे जावें।

दो० असम देश से आ रहे, राज गुरु महाराज।
सबसे पहले वे चलें, पाछे चले समाज॥ ५६१

सब जन करते उन का वर्णन, बैठे करने को हैं दर्शन।
उन की पंक्ति जब लंघ पाये, जन समूह भी पाछे जाये।"
दण्डी स्वामी सुन यह वाणी, पहुंचा जहां प्रभु कल्याणी।
प्रभु को सारी कथा सुनायी, राज गुरु प्रति प्रीत जतायी।
सुन कर प्रभु दिये मुस्कांय, कर संकेत मुख राम बतांय।
मुख ने समझी प्रभु की बात, पुस्तक से उस ढूंढी पात।
रणसिंह ने जो पाती दीनी, प्रभु जी ले कर वह पढ़ दीनी।
बात थी उस में स्पष्ट बतायी, भक्त जनों की समझ में आयी।

दो० पाती को तब लेय कर, दण्डी कीनी पेश।
सेवक प्रभु ढिग आये, पाने को आदेश॥ ५६२ क
एक अनूपम शीविका, राज पुरुष ले आय।
मंगल वचन उचार कर, उसमें प्रभु बिठलाय॥ ५६२ ख

प्रभु जी शिविका में बिठलाये, इन्द्र ध्वज नभ मध्य फहराये।
ढोल नफीरी बाजन लागे, दिग दिगाँतर गूंजन लागे।
प्रभु की शिविका चाली आगे, सब जन उस के पाछे लागे।
जयकारों ने गगन गुंजाया, अति उत्साह जनता में छाया।
"हर हर महादेव" सुन पावे, "जय जय जय गुरुदेव" धुन छावे।

भिन्न भिन्न जनता के थे वेश, भिन्न भिन्न उन के थे प्रदेश।
रूप भेद और वाणी भेद, पर ना था इस का कुछ खेद।
लक्ष्य एक और इष्ट भी एक, एक भयी सब जनता अनेक।

दो० देश वेश तो गौन है, भाषा भी है गौन।
मुख्य लक्ष्य को जानिये, मन बसे जो मौन॥ ५६३

लांबी यात्रा पर सब चाले, सेवक शिविका को संभाले।
भजन उच्चारण करते जाते, जयकारों की गूंज उठाते।
वाद्य वादन जब होवें ऊंचे, पर्वत गूंजें सकल समूचे।
फाड़ गला पर्वत कह पाते, 'स्वागत स्वागत' ध्वनि उठाते।
महाप्रभु को खबर पहुंचाते, रामलाल आगमन सुनाते।
समाधि में महाप्रभु भी देखें, दिव्य दृष्टि से राम को पेखें।
राम में ही निज इष्ट पहचानें, लाख लाख आशीष भेजानें।
दिव्य लीला यह न कोइ जाने, काक भुषुण्डी ऋषि पहचाने।

दो० काक भुषुण्डी कीना, प्रभु लीला का गान।
भक्तों ने वह श्रवण कर, पायी भक्ति महान॥ ५६४ क

गूढ़ तत्व जो लिख गया, ऋषि भुषुण्डी काक।
विरला ही कोइ समझे, पूरण उसका भाव॥ ५६४ ख

पूरण भाव को विरला समझे, जग तो संशय ही में उलझे।
"गुरुओं के जो गुरु बखाने, प्रभुओं के भी प्रभु हैं माने।
पार ब्रह्म ले गा अवतार, राम लाल शुभ नाम यह धार"।
काक भुषुण्डी की यह वाणी, समझ पावे जो होवे ज्ञानी।
अज्ञ को संशय में यह डाले, तज्ञ को मोक्ष के मार्ग घाले।
हे मन काक की वाणी जान, भरा है उस में तत्व ज्ञान।

प्रभु की महिमा काक बखानी, जग प्रसिद्ध है उस की वानी।
त्रेता युग में प्रथम बखाना, कलियुग में प्रभु जी का आना।

दो० योग शक्ती के स्वामी, रामलाल अवतार।
उनकी महिमा को लखे, योगी नर वा नार॥ ५६५ क

प्रभु को जानें सिद्ध पुरुष, अथवा शरण जो आय।
मायावी नर बापुरा, ज्ञान न कुछ भी पाय॥ ५६५ ख

प्रभु की शक्ति काक बतायी, ऋद्धी सिद्धी और प्रभुतायी।
योग सिद्धी से शरीर अनेक, कल्पें प्रभु जी काल में एक।
यह सब लीला उस में गायी; वाणी काक भविष्य सुनायी।
प्रभु दया के जलधी अपार; पर दुःख लें निज तन पर धार।
दुःख दोष और दूषित भाव, दूर करें और दें सद्भाव।
सन्मारग पर जग को डालें, निर्विकल्प स्वरूप संभालें।
परमेश्वर और इन में भेद, जो जाने सो पावे खेद।
ऐसा उनका जानो भाव, नव ग्रह का ना हो प्रभाव।

दो० नव ग्रह के प्रभाव से; होंगे वे उपराम।
काक भुषुण्डी लिख गया, कलि में आवें राम॥ ५६६ क
वही राम अब जा रहे, महाप्रभु के धाम।
महाप्रभु भी देख रहे, कब मिलेंगें राम॥ ५६६ ख

५६. अघोरी ज्ञान गिर पर श्री प्रभु जी की शक्ति का प्रभाव।

मारग की इक घटना गावें, महिमा प्रभु की हम लिख पावें।
इक वैरागी था प्रभु साथ; वयोवृद्ध और उज्वल माथ।

प्रभु जी की वह शक्ति जाने, ईश्वर जान सदा सन्माने।
समाधी में वह रुचि न लेवे, तत्परता से प्रभु को सेवे।
मन में सदा वह यही ध्यावे, सब को अपने भाव सुनावे।
जिन का कर पायें जग ध्यान, उन्हें मैं पाया मूर्तिमान।
आँख मूंद न ध्यान लगाऊं, सेवा कर मैं उन्हें रिझाऊं।
किरपा मुझ पर वे कर पावें, आवागमन से मुझे छुडावें।

दो० प्रभु जब देह को धारें, उन को ले जो जान।
घाले तन मन सेव में, जिमि वीर हनुमान॥ ५६७ क

शक्ति प्रभु से पायकर, भय मन में न होय।
कर्म अनूपम वह करे, प्रभु महिमा जग जोय॥ ५६७ ख

महावीर प्रभु शक्ति जानी, लंका जा सीता सुध आनी।
चूर्ण गर्व रावण का कीना, प्रभु से ही उस सब बल लीना।
अर्जुन मन जब निश्चय आया, प्रभु से बल तब उस भी पाया।
महारथी सब उस ने जीते, देव भी जिन से रहत सभीते।
हे मन, तुम भी निश्चय धारो, तज जग आस प्रभु सत्कारो।
वह वैरागी भी मन जाने, प्रभु से बड़ी न शक्ति माने।
इक प्रात की बात सुनावें, वन जाता वैरागी पावें।
वन से दण्डी स्वामी आया, मारग में उस को मिल पाया।

दो० उसको जाते देख कर, दण्डी भया सशंक।
सावधान करने लगा, कह कर बात निशंक॥ ५६८

इस दिशा में शौच न जाना, जो चाहो भय से बच पाना।
एक अघोरी का वह स्थान, ज्ञान-गिर उस का है अभिधान।
उस दिक् कभी न कोई जावे, भूल से जा कर नर पछतावे।
अघोरी करता नर संहार, मानुष ही उस का आहार।

सुन वैरागी गिरा उचारी, मैं देखूं वह मानुषाहारी।
मेरे प्रभु की शक्ति अपार, इस तन का किमि करे संहार।
वृद्ध वैरागी मन में आनी, अघोरी को मिलने की ठानी।
कुछ दूरी जब चल कर आया, वहाँ अघोरी उस ने पाया।
बैठा वह इक मुर्दा खाता, मानव तन में पशु दिख पाता।

दो० आहट उस ने पायकर, ऊपर दृष्टि उठाइ।
वृद्ध पुरुष को देखकर, मुख पै वाणी लाइ॥ ५६६ क

आज पड़ा है शुभ दिवस, भोग लगा है हाथ।
कहे वैरागी "खावें, दोनों मिल इक साथ"॥ ५६६ ख

सुन ज्ञानगिर हुआ हैरान, कैसा आया जन अनजान।
मेरी शक्ति नहीं पहचाने, मन में भय ना मेरा माने।
कभी न ऐसा नर लंघ पाया, जिस के मुख पै उत्तर आया।
क्रोध से तब उस वृद्ध निहारा, देखा मस्तक पर इक तारा।
प्रभु की कृपा का वहाँ हाथ, निरन्तर रहे जो उस के साथ।
रहस्य लिया तब उस ने जान, प्रभु शक्ति को लिया पहचान।
प्रभु को कर मन में नमस्कार, किया वैरागी का सत्कार।
"आओ स्वामी बैठो पास, देखूं गुण तुम में कुछ खास।"
कहे वैरागी "मैं न आऊं, मुर्दे पास न बैठन पाऊं।"

दो० ऐसा कह लौटन लगा, प्रभु का सेवक साध।
अघोरी मन चिन्ता भयी, दुविधा एक अगाध॥ ५७०

ज्ञानगिर मन यह दुविधा भारी, कुंठित भयी थी शक्ति सारी।
सिद्धी के थे दोनों रूप, शाप अथवा वरदान स्वरूप।
शाप देने की शक्ति नाशी, प्रभु रक्षक थे जब अविनाशी।
वर ही दे अब वह लौटावे, शक्ती जिस विध ना खो पावे।

ऐसा मन में उस ने धारा, कह वचन तब साध सत्कारा।
मांग लो मुझ से कुछ वरदान, जानो मुझ को तपी महान।
साध धरी न कान पै बात, "वही तपी जो मुर्दा खात।
मैं न चाहूं उस से वरदान", साध कहा धर प्रभु का ध्यान।

दो० प्रभु ध्यावे साध जब, तेज साध अधिकाय।
वह ही तेज निहारकर, अघोरी मन भय खाय॥ ५७१ क

बार बार उसको कहे, मांगो कुछ वरदान।
प्रभु का भक्त वैरागी, क्यों कर लेवे दान॥ ५७१ ख

अघोरी देख निज सिद्धि हान, बोल उठा लो यही वरदान।
"वचन सत्य हो सदा तुम्हारा, यह जानो वरदान हमारा।"
तब वैरागी से मुख मोड़ा, भक्षण ना शव का उस छोड़ा।
निज मारग वैरागी लीना, जा वन कारज निज उस कीना।
वन से मुड़ कर जब वह आया, राह में दण्डी स्वामी पाया।
वह तो था उस का राह देखे, मन में शंका बहुत उल्लेखे।
देख साध को जीवित आया, सुख का श्वास दण्डी ले पाया।
वचन व्यंग तब उस सुनाया, "ढूंढ अघोरी खूब है पाया।
मृत्यु को थे गये बुलाने, सुंदर भाग्य तुम्हारे जाने।

दो० सुंदर भाग्य तुम्हारे, मिला अघोरी नाहिं।
वैरागी बोला "बन्धु, मिल आया उस ताहिं॥" ५७२

दण्डी बोला "कैसे मानूं, उस का रूप बताओ जानूं।
तेरे मन में भय ना लेश, क्षत विक्षत ना हुए अशेष।
उस से कोई न बच के निकले, मानूं कैसे तुम हो फिसले।
साधु ने तब प्रभु को ध्याया, मुख से गर्व वचन कह पाया।

देखा तेरा वह आघोरी, भक्षे शव जो बैठ के चोरी।
मुझ को आया जब उस पाया, भय से कांपा व घबराया।
रोक न सका दण्डी मुस्काट, बोला उस की बात को काट।
देखा है तुम ने कोई और, मानो जिस को तुम आघोर।
मांसाहारी जगत अनेक, सिद्ध आघोरी विरला एक।

दो० मान पांऊ न मैं कभी, बिन ठोस प्रमाण।
साध बोला "मुझ को दिया, उसने इक वरदान॥ ५७३ क

मैं लौटाना चाहत था, उस का दीना दान।
हम तो प्रभु से पा सकें, सारे ही वरदान॥" ५७३ ख

दण्डी बोला "साध प्रवीण, कौन सा वर है तुम को दीन।
महिमा प्रभु की कथी न जाये, विष को अमृत जो कर पाये।"
साधू ने तब वचन उचारा, मन में ध्यान प्रभु का धारा।
"तुम जानो सब मेरे भाई, प्रभु महिमा की जो प्रभुताई।
शत अघोरी भी जो आवें, दास का न कुछ भी कर पावें।
मैं तो प्रभु महिमा को ध्यावूं, साधन और न कुछ कर पावूं।
प्रभु ने रक्षा मेरी कीनी, अघोरी को सन्मति उन दीनी।
वर उस दे कर मुझे लौटाया, "वाक की सिद्धि हो" बतलाया।

दो० दण्डी ने आश्चर्य से, सुन कही यह बात।
"प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या, अभी करो साक्षात॥ ५७४ क

सन्मुख पेड़ जो गूलर, कह दो मेरे मीत।
जामुन फल इस पर लगें, हो महिमा प्रतीत"॥ ५७४ ख

वैरागी ने तब वचन उचारा, "जामुन लगें गूलर की डारा"।
देखो प्रभु की महिम अपारा, रूप जामुन का गूलर धारा।

चकित भये दण्डी ने देखा, मुख से तब उस कीन उलेखा।
"तुम ने है यह शस्त्र पाया, वाक् सिद्धि जिस नाम धराया।
हित अनहित इस से हो पायें, स्वर्ग नरक में जो ले जायें।
मोक्ष साधन में सिद्धि बाधा, डूबे जीव पयोध अगाधा।"
तर्क दण्डी का उस ने जाना, सिद्धी से उस भय को माना।
मन में उस ने यही विचारा, वर्नाहिं बितावूं जीवन सारा।
संग किसी का ना कर पाऊं, प्रयोग में वाणी मैं न लाऊं।

दो० इस विध मन में धार कर, बोल उठा वह साध।
"दण्डी स्वामी जाय तुम, कहना प्रभु आराध ॥ ५७५ क

नाथ तुम्हारा सेवक, गया है वन की ओर।
क्षमा दीन पर चाहिए, जिसको ठगा अघोर ॥ ५७५ ख

ऐसा कह वैरागी धाया, दण्डी भी प्रभु चरणों आया।
साधू की उस बात सुनायी, अचरज से भक्तन सुन पायी।
प्रभु जी मन्द मन्द मुस्काये, हरि हरानन्द तब कह पाये।
"नाथ के चरणों में क्या भय, पाप ताप का जहां हो क्षय।
क्या हुआ इक वर उस पाया, संग त्याग कर जो वह धाया।
प्रभु चरणों में साध अनेक, बढ़ कर सिद्ध जो एक से एक।
रक्षा प्रभु की में वे रहते, पाप ताप को लेश न वहते।
सागर तुल्य प्रभु कृपा महान, विचरें जिस में सिद्ध सुजान।

दो० प्रभु कृपा को पाय कर, सिद्धी करत न हान।
बिन प्रभु कृपा के मिले, किस विध नर को त्राण ॥ ५७६

५७. नेपाल राज्य में भव्य स्वागत।

प्रात कर्म तब सब ने कीना, आगे का प्रभु मारग लीना।

यात्रा में दिन चार बिताये, काठमाण्डु में प्रभु जी आये।
उस देश की राज वह धानी, रहें भक्त जहां साध सन्मानी।
राजा परजा सब मन ला कर, स्वागत प्रभु का कीना आ कर।
भव्य भवन में प्रभु ठहराये, सेवा में बहु जन लग पाये।
उपदेशामृत जन करते पान, दर्शन प्रभु का करते आन।
रोगी जन भी कोई जब आता, प्रभु से औषध ले के जाता।
राजबन्धु इक था बीमार, डाक्टर सारे गये थे हार।

दो० ऐसा उसका रोग था, मुख भी खुल न पाय।
वैद्यों की जो औषध, भीतर किस विध जाय॥ ५७७

राज परिवार भया नीराश, देखा प्रभु ने उन्हें हताश।
दया प्रभु के मन तब आई, औषध उस को एक सुंघाई।
जिस से मुख उस का खुल पाया, सुख का श्वास सबन को आया।
वैद्यों ने तब औषध दीनी, चिकित्सा बहु विध उस की कीनी।
अन्तर रोग में न पर देखा, राजा ने तब मनहिं उलेखा।
गुरु से बड़ा न कोई हकीम, गुरु निवारे रोग असीम।
ऐसा राजा ने मन धारा, प्रभु चरणों में वचन उचारा।
"नाथ हुए हम बहुत हताश, आप पै लागी सारी आश।

दो० आशा केवल आप पर, काटो संकट नाथ।
जीवन की पतवार तो, सद्गुरु के ही हाथ॥" ५७८

प्रभु ने सुनी जब आर्त पुकार, मन में लीनी कृपा धार।
औषध उस को प्रभु जी दीनी, व्याधी उस की सब हर लीनी।
जग के सिरजन पालन हार, करत शरणागत दुख निवार।
ऐसे प्रभु जी जब मिल पायें, भक्त के ऊपर कष्ट न आयें।
राज वंश का कष्ट निवारा, शरण में आ पड़ा जो सारा।

महिमा फैली जग में प्रभु की, इच्छा दर्शन की हुई सब की।
राज दरबार में प्रभु पधारे, दर्शन पावें जिस विध सारे।
सकल जनों ने चरण स्पर्शे, पण्डित गण पा दर्शन हर्षे।

दो० प्रभु दर्शन को पाय कर, सब को भया संतोष।
शास्त्र चर्चा करने लगे, पण्डित जन बिन रोष॥ ५७९

मुखराम और दण्डी स्वामी, शास्त्रों के थे पण्डित नामी।
तार्किक वैयाकरण मुखराम, वेदान्त में पाया दण्डी नाम।
शास्त्रों की चर्चा चल पायी, सकल समाज ने रुचि दिखायी।
पण्डित जन विद्वान थे भारी, कण्ठ पै उन के विद्या सारी।
प्रसंग कठिन उन बहुत चलाये, दण्डी वा मुखराम सुहाये।
बढ़ चढ़ कर लीना उन भाग, शास्त्रार्थ में उन का अनुराग।
सब ने उन का लोहा माना, राजा ने भी मन अनुमाना।
योगी गुरु के शिष्य विद्वान, इन से सभा पाये गी ज्ञान।

दो० ऐसे नर विद्वान जो, रहते प्रभु के संग।
सभा मध्य नित आवें, चले सुंदर प्रसंग॥ ५८०

सभा विसर्जित फिर हो पायी, सायंकाल की बेला आयी।
धाम अपने में प्रभु पधारे, नित्य कर्म करें वहां सारे।
प्रात उठे और ईश ध्याया, प्रभु को सब ने शीश झुकाया।
ध्यान भजन में सब जन लागे, प्रात कर्म के वे अनुरागे।
इतने में बहु सेवक आये, भोग सामग्री को वे लाये।
प्रभु प्रसाद सबन को दीना, किञ्चिन्मात्र नाथ भी लीना।
राज पुरुष तब इक चलि आया, प्रभु जी को दरबार बुलाया।
सब मण्डल दरबार पधारा, खुद राजा ने वहां सत्कारा।

दो० राजा ने सत्कार कर, आसन दीना खास।

प्रभु विराजें मध्य में, राजा बैठा पास ।। ५८१ क

राजा के संकेत से, चली शास्त्र की बात ।
विषय लिया वेदान्त का, विप्रों ने उस प्रात ।। ५८१ ख

वेद विषय मुखराम न जाने, इस में वह तो हार को माने ।
दण्डी देख यह आगे आया; गूढ़ विषय वेदान्त सुनाया ।
प्रभु जी को उस मन में धारा, दिव्य बहायी ज्ञान की धारा ।
पण्डितों की बुद्धि चकरायी, दण्डी की वहां फिरी दुहायी ।
परास्त भये जब सब विद्वान, वृद्ध था विप्र इक सुजान ।
वह दण्डी के सन्मुख आया, उस वेदान्त प्रवाह चलाया ।
दण्डी की जो हिम्मत भारी, सन्मुख विप्र खोई उस सारी ।
मुख था मुख लटकाये पास, सुनता सब कुछ रोक के श्वास ।

दो० सुनता ध्यान लगाय कर, मुख में अगुंल डाल ।
पकड़ ली एक अशुद्धी, विप्र की तत्काल ।। ५८२

अशुद्ध वचन इक विप्र उचारा, मुख ने उस का दोष निकारा ।
विप्र ने जब किया प्रतिकार, उपजा उन में तब तकरार ।
नूतन रूप विवाद ने धारा, जो था एक शब्द पर सारा ।
व्याकरणाचार्य था मुखराम, मुख पै उस के सूत्र तमाम ।
अशुद्धि को उस सिद्ध दिखाया, वृद्ध विप्र को शीघ्र हराया ।
संग में कटु शब्द कह दीने, विप्र ने जो मन धर लीने ।
बात असभ्य प्रभु यह मानी, निज शिष्यन से हुई ग्लानी ।
मुखराम न संग जो होता, विप्र का अपमान न होता ।
प्रभु जी ने मन में तब आनी, त्यागन की शिष्यन को ठानी ।

दो० शिष्य त्यागें हम सभी, कोइ न राखें साथ ।

इस विध मन में धारया, लीला धारी नाथ ।। ५८३

सभा विसर्जित जब हो पायी, हरी को आज्ञा प्रभु सुनायी।
सकल सामग्री कर दो दान, सब जन यहां से करें प्रस्थान।
जिस जिस को जितना धन चाहिये, दे कर उस को विदा कराइये।
मेरे संग न कोइ रह पायें, अपने अपने राह पर जायें।
जिमि हरि ने आज्ञा पायी, सभी जनों को दीन विदायी।
प्रभु जी को सब कर प्रणाम, लेते उन का मुख पर नाम।
रूप उन्हीं का मन में धार, सभी हुए चलने को तयार।
द्रव्य जो उन को प्रभु जी दीना, आशिर्वाद सहित सब लीना।

दो० आशिष प्रभु की पाय कर, चले गये सब साध।
गुरु मिलन की लालसा, हिरदय प्रभु अगाध ।। ५८४ क

हरी को दीनी आज्ञा, बैठ करे वह योग।
आय मिलेगें फिर कभी, लागे जभी सुयोग ।। ५८४ ख

इस विध कह प्रभु चल पाय, उत्तर दिक की ओर।
था आकर्षण घन उधर, भया था प्रभु मन मोर ।। ५८४ ग

उत्तर दिक् को प्रभु जी चाले, एकाकी मन गुरु संभाले।
दुर्गा मन्दिर मग में आया, प्रभु ने दर्शन उस का पाया।
उस से आगे जभी पधारे, घोर जंगल में पग उन धारे।
इतने में अन्धेरा छाया, झाड़ी तले प्रभु डेरा लाया।
रात अन्धेरी शून्य स्थान, नाथ अकेले वन गुञ्जान।
श्वापद विचर लगावें फेर, रह रह कर वहां दहाडें शेर।
हिरदय प्रभु के ना कुछ भय, सद्गुरु प्रीत करत निर्भय।
सुख की नींद प्रभु सो पाये, मध्य रात महा प्रभु जी आये।

५८. महाप्रभु मिलाप

दो० मध्य गगन से ऊतरे, महाप्रभु महाराज।
रामलाल को ले चलें, आये स्वयं वे आज॥ ५८५

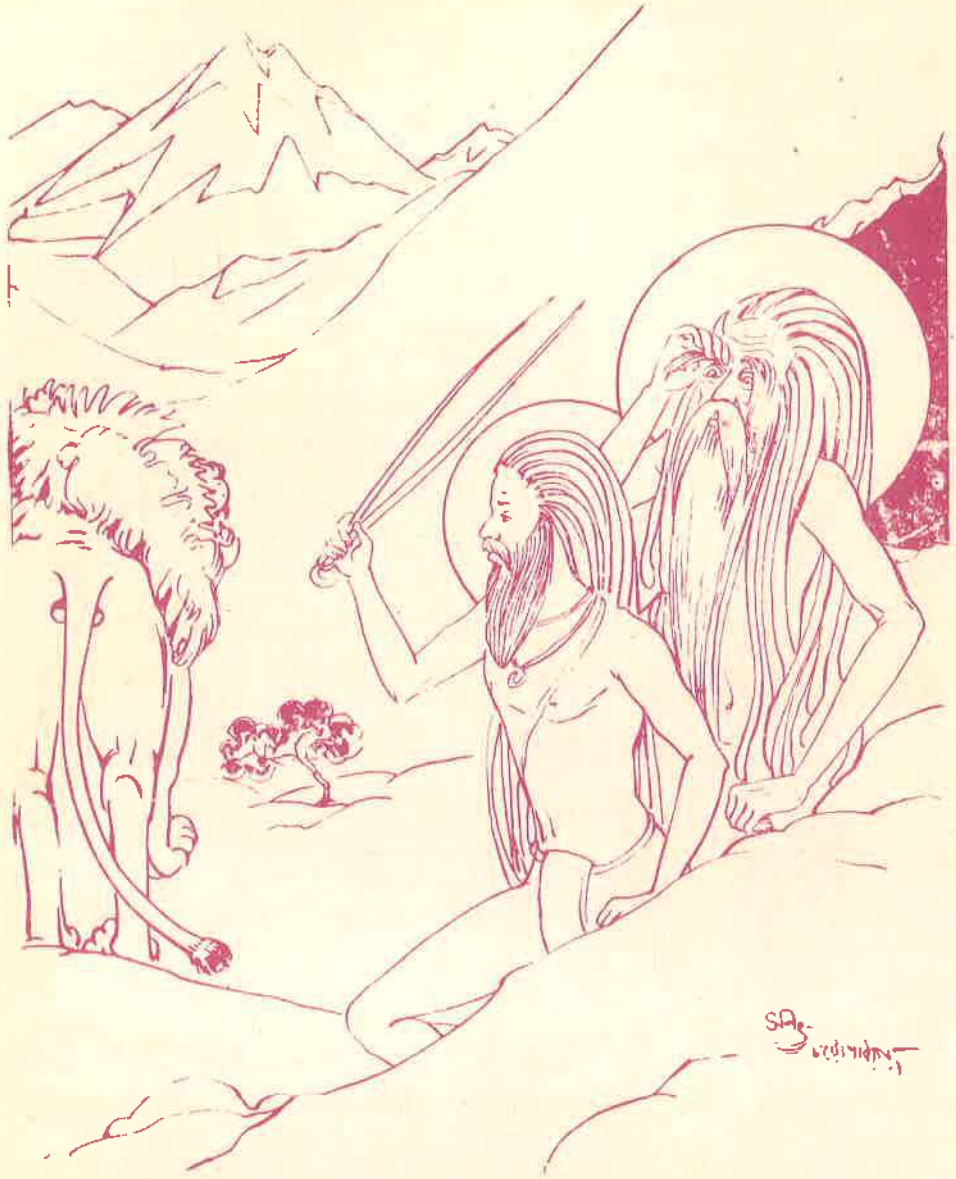
रामलाल था उन को प्यारा, लोक लोकान्तर से जो न्यारा।
रामलाल को सोया पाया, दे आवाज़ तब उसे जगाया।
रामलाल ने आंख उघारी, तेजोपुञ्ज देखा इक भारी।
नेत्र राम के इमि चौंधाये, क्षण एक में बन्द हो पाये।
चरणों पर दे मस्तक पटका, परमानन्द मगन मन उनका।
दे आशिष महाप्रभु उठाया, अपने पीछे उन्हें चलाया।
गगन मध्य तब तन उठ पाये, शत कोसों तक उड़ते आये।
आसन पर जब आय पधारे, प्रभु जी ने तब नयन उघारे।

दो० आसन पर तब आय कर, प्रभु ने खोले नयन।
अमृत दर्शन पान करि, मुख पै आय न बयन॥ ५८६

त्राटक था उस तन पै लागा, शिव अवतारी रूप सुभागा।
श्वेत जटा वा तेजमय रूप, अधर पै लटकें भवें अनूप।
वृषभस्कन्ध वा दीरघ बांह, एकाकी वास करें उस थांह।
नाना रूप वे निज दिखलावें, बाल युवा वा वृद्ध हो जावें।
काल को लीना है उन जीत, आयु किसी को नहीं प्रतीत।
शक्ति उन की किमि बखानें, जीव चराचर उस को मानें।
सिंह भालू उन के अनुयायी, सेवा करें वहाँ सब आयी।
राम थे जभी वहां पधारे, देखे अद्भुत दृश्य उन सारे।

५९. चिमटे से शेर को मार भगाना

दो० ए. दृश्य का वर्णन, प्रभु करावें आप।
महासिंह इक आ गया, धूनी का जहं थाप॥ ५८७



श्री शिव अवतारी महाप्रभु ने श्री प्रभु जी को चिमटा दिया और कहा
"शेर को गुफा से निकाल दो"

सिंह का था नित्य यह काम ।
आता करने वह प्रणाम ।।

(दोहा ५८८ के सामने)

सिंह इक आया धूनि पास, राम ने माना अचरज खास।
चाल सिंह की सुंदर भारी, चितवन उस की परम न्यारी।
उस की मस्ती लखी न जावे, लखे वही जो भय न खावे।
ऐसा धीर कहां जग माहीं, देखे सिंह को श्वान समाहीं।
यह सामर्थ्य महाप्रभु के पास, सिंह आय बैठे उन पास।
सिंह का था नित्य यह काम, आता करने वह प्रणाम।
निज गर्व वनराज ने छोड़ा, हिंसा वृत्ति से मुख मोड़ा।
चाटी महाप्रभु की पग धूल, सिंह बना उस दर शार्दूल।

दो० शेर बने शार्दूल जहं, आ झुकावे माथ।
रे मन उस दरबार को, ध्या कर बनो सनाथ॥ ५८८

उस दरबार का करे जो ध्यान, प्रभु किरपा से पावे ज्ञान।
बिगड़े कारज हों सब रास, राखे मन में जो विश्वास।
महाप्रभु की शक्ती अपार, देव भी पा सकें न पार।
महाप्रभु महादेव कहावें, आय शरण जो सुख को पावें।
रामलाल उन शरणी लागा, जग जंजाल सकल उस त्यागा।
महाप्रभु से दीक्षा पायी, निर्विकल्प स्थिति उपजायी।
प्राप्त किया महाप्रभु ने राम, राम ने पाया सुख का धाम।
गुरु शिष्य का यह दिव्य मिलाप, स्मरण करे जो मिटे संताप।

दो० ऐसे दिव्य मिलाप का, सदा करे मन ध्यान।
ताप त्रय को त्याग कर, वास करे शुभ स्थान॥ ५८९

दिव्य धाम उस राम विराजे, निजासन महाप्रभु थे साजे।
धूने में हुताशन चमके, चमटा पास गड़ा था दमके।
सिंह आय उन पास आसीना, देखी बात यह राम नवीना।
मन में शंकित वे हो पाये, चित्त में महाप्रभु मुस्काये।

दीना सिंह को तब उन घूर, प्रभु के नयन जिमि शत सूर।
सिंह ने अपने नयन झुकाये, न महाप्रभु से दृष्टि मिलाये।
महाप्रभु कहे वचन क्रूर, राम हटाओ सिंह को दूर।
चिमटा राम के हाथ थमाया, कह आदेश कठोर सुनाया।

दो० सुनकर गुरु आदेश को, पड़े राम शश पंज।
कैसे सिंह नीकालूं, हिंसा का जो पुंज ॥ ५६०

बलशाली सिंह हिंसक भारी, माने जिस को सृष्टि सारी।
जिसके सन्मुख शस्त्र कुंठित, चिमटे से किमि होय विलुंठित।
इमि अनुमान राम भय माना, उन का पग था कुछ सकुचाना।
गुरु दीना यह पुनः आदेश, मारो मन भय त्याग अशेष।
राम ने चिमटा लीना तान, गुरु आज्ञा को उत्तम मान।
सिंह चाहे भले ही खाये, गुरु सेवा में ढील न आये।
निज शक्ती को राम जुटाया, सिंह ओर उन कदम बढ़ाया।
सद्गुरु शक्ती राम के साथ, सिंह ने मोड़ा अपना माथ।

दो० निज मुख को उस मोड़कर, प्रभु से भय को खाय।
गुफा को सिंह ने त्यागा, मनहिं राम विस्माय ॥ ५६१

६०. श्री महाप्रभु की छः मास की समाधी।

राम ने मन में विस्मय माना, सद्गुरु शक्ती को पहचाना।
गुरु चरणों आ माथ झुकाया, आशीष महाप्रभु का पाया।
इक दिन भालु भी वहां आया, उस को भी तब राम भगाया।
दिन तीन इमि राम बीताये, सद्गुरु भेद सकल समझाये।
अद्भुत कृपा राम पै कीनी, महाप्रभु तब समाधी लीनी।
जो जो कर्म उन राम बताये, राम रहे मन उन में लाये।

कुछ संकल्प जब मन में उपजे, और समस्या न जब सुलजे।
राम शिला पै लिखता जाता, कोयला धूनी से वह पाता।

दो० लेख शिला पर लिपि करत, सिमरण कारण राम।
प्रश्न पूछूं गुरु अपने, जभी उठें सुख धाम॥ ५९२ क

अन्तर्यामी सद्गुरु, घट घट जिनका वास।
केवल उनके ध्यान से, मेटे संशय दास॥ ५९२ ख

गुरु का ध्यान संशय को नाशे, गुरु का ध्यान ज्ञान प्रकाशे।
गुरु का ध्यान सर्व सुख दाता, गुरु का ध्यान मोक्ष प्रदाता।
गुरु का ध्यान संकट को टाले, विपत्ति से निज भक्त निकाले।
गुरु के ध्यान की तुलना नाहीं, रक्षा हर थाहीं कर पाहीं।
तम संशय का मन को घेरे, गुरु का ध्यान तुरन्त निबेरे।
दुःख की घटा उमड़ जब आवे, सूरज बन गुरु ध्यान नशावे।
जन्म जन्म के कर्म जो भारे, कटें गुरु के ध्यान से सारे।
निर्मल अन्तर जन का होवे, कोटि जन्म का मल वह धोवे।

दो० ऐसे गुरु का ध्यान जब, अहर्निश करता राम।
संशय मन फिर क्यों बसें, भ्रम का हो अवराम॥ ५९३ क

लेख शिला पै जो लिखे, देखे फिर जब राम।
सारे उत्तर मिल गये, संशय मिटे तमाम॥ ५९३ ख

महाप्रभु न श्वास उतारे, समाधि में विन बीते सारे।
इक इक दिन गिनती में जाता, राम अकेला समय बिताता।
बीस दिवस का काल बिताया, मन में राम के तब यह आया।
आस पास कुछ घूम के देखूं, बैठ अकेला क्या यहां पेखूं।
बैठ अकेले मन ही ऊबे, जन एकाकी चिंता डूबे।

वहां से उठ राम थे चाले, हिरदय में महाप्रभु संभाले।
सुषमा वन की उन मन भायी, ईश्वर की देखी प्रभुतायी।
इक इक दृश्य अनुपम भारी, रचना प्रभु की सुंदर सारी।

दो० सुंदर रचना देखते, तीन कोस चल आय।
देखा एक था योगी, बैठा ध्यान लगाय॥ ५६४

६१. सैंकड़ों वर्षों की दीर्घायु वाले योगी से मिलाप।

उस के पास जा राम पधारे, योगी ने तब नयन उघारे।
राम ने कीना फिर प्रणाम, बिठाया आसन पर उस राम।
योगी वयोवृद्ध था भारी, भवें पड़ें अधरों पै सारी।
उस से राम प्रश्न यह कीना, "कब से आप यहां आसीना।"
उत्तर उस ने यों दे पाया, "दीर्घ काल है यहां बिताया।
बीतें वर्ष शत चार पचास*, जब से आये गुरु के पास।"
"महाप्रभु क्या गुरु तुम्हारे", विस्मित हो राम लाल उचारे।
वे तो दादा गुरु हैं मेरे, योगी ने यह शब्द उचेरे।

दो० शिव अवतारी महाप्रभु, योगिन के वे ईश।
उन की रक्षा में बसें, योगी वा योगेश॥ ५६५ क

जब से हैं हम जानते, गुरु कहा समझाय।
पाया इन को एक रस, भेद लेश न आय॥ ५६५ ख

इन में भेद न आवे लेश, दिव्य अलौकिक है परिवेश।
इन के आश्रय में जो रहते, जीवन में वे खेद न वहते।
क्षण क्षण रक्षा हैं ये करते, संग दासन के हर दम चलते।

*अर्थात ४५० वर्ष।

एक रूप समाधि आसीना, दूजा भक्त वत्सलता लीना।
असंख्य रूप हैं वे प्रगटावें, संख्या में सब किस विध आवें।
हर दम उन को संग हम पावें, भक्त पुकारे क्षण में आवें।
आवे भक्त पै संकट कोई, आय निवारें वह प्रभु सोई।
षण्मास समाधी आसीना, योगीश्वर निज रूप में लीना।

दो० आधा वर्ष समाधि की सुनी राम जब बात।
असमंजस में पड़ गये, क्या अब होगा तात॥ ५६६ क

बीस दिवस भी काटने, हुए कठिन जो आज।
*नव गुण उस से किमि कटें, क्या जुटावूं साज॥ ५६६ ख

राम ने तब निज भाव बताया, योगी सुन कर वह मुस्काया।
कहने लगा हे मीत प्यारे, मैं जानूं तुम जानन हारे।
कौन तत्व जो तुम न जानो, भेद कौन जो न पहचानो।
महाप्रभु तुम को हैं लाये, उन मन तेरा प्रेम समाये।
देखो उन को हर दम संगा, शिष्य तो गुरु के होते अंगा।
भाव विचित्र मन तब पैठे, प्रभु रक्षा में सैकड़ों बैठे।
उन सब की जब रक्षा करते, तुम क्यों मन में हो फिर डरते।
घट घट की प्रभु जानन हारे, भक्तों से न होयें न्यारे।

दो० प्रभु तुम्हारे संग रहें, धेनु जिमि संग वत्स।
उन की रक्षा में बसो, त्याग भाव सब कुत्स॥ ५६७

सायं काल तब होने आया, नूतन प्रेम राम मन छाया।
वहाँ से लौट आय गुरु पास, धार हृदय में भक्ती खास।
गुरु चरणों में कर प्रणाम, बिताया रात्री का तब याम।

*अर्थात 20×9=180 दिन (छः मास)

प्रात उठे नित कर्म को कीना, सेवा में भी मन को दीना।
ध्यान भजन में काल बितातें, समाधि में श्री राम थे जाते।
परम शुद्ध था राम का ध्यान, निर्विकल्प समाधि का स्थान।
तन की सुध को राम विसार, रहते कई दिन थे उस पार।
जभी श्वास को नीचे लावें, सेवा में तब समय बितावें।

दो० अन्तर्यामी महाप्रभु, राम की देखें कार।
समाधि में आसीन भी, उस की राखें सार॥ ५६८

६२. अहंकारी साधु के पास जा कर निराश लौटना।

इक दिन राम के मन में आया, महाप्रभु संकल्प उपजाया।
योगी ने भी बात बतायी, सैकड़ों बैठे हैं लिव लायी।
दर्शन उन के करके आवें, महिमा महा प्रभु लख पावें।
महाप्रभु का ध्यान जो धरते, सिमरन उन का नित जो करते।
उन ऋषियों के दर्शन हेतु, राम चले भव जल के सेतु।
राम अनादि अनीह निरञ्जन, शरणागत के दोष विभञ्जन।
उन को भाग्यवन्त पहचानें, भाग्यहीन न उन को जानें।
अहंभाव में जो नर पागे, और न मोह निशा से जागे।
वे तो राम को नर ही देखें, अल्पायु इक बालक पेखें।

दो० साध बैठा इक ऐसा, राम गये जब पास।
उसने आंख न खोली, लौटे राम उदास॥ ५६९

६३. मेंडक भक्षी अघोरी द्वारा प्रभु जी को ठगने का निष्फल प्रयास।

भाग्य बिना को राम पहचाने, माया मोह नर रहत भुलाने।

उस साधु से हुई ग्लानी, लौटे राम साध सन्मानी।
इक दिन राम पुनः जा पाये, पाँच सात कोस चल आये।
ताल किनारे मिला इक साध, पकड़ मण्डूक भक्षे निर्बाध।
पकड़ पकड़ वह खाता ऐसे, चने चबेने होवें जैसे।
उस को घृणा लेश न आवे, लपक लपक वह खाता जावे।
राम को उस ने पास बुलाया, प्रेम से अपने संग बिठाया।
अंजली भर कर मेंडक लीने, झोली राम की वे धर दीने।

दो० मेंडक झोली जब पड़े, हुवे जलेबी रूप।
कैसी जुर्रत साध की, ठगे विश्व का भूप॥ ६०० क

माया के जो ईश हैं, उन पर माया डाल।
मन में साध विचारता, आगे का कुछ हाल॥ ६०० ख

इतने में महाप्रभु पधारे, चिमटा छनन हाथ में धारे।
राम जलेबी वहीं पै छोड़, उठ कर चला तुरत मुख मोड़।
साधु की प्रभु कीनि पीटायी, छोड़ा तब जब दीनि दुहायी।
राम सीधा निजासन आया, समाधि में महा प्रभु को पाया।
गुरु कृपा मन माहिं विचार, सद्गुरु रूप हृदय में धार।
गुरु सेवा मन कीना लीन, समाधि में फिर हुए विलीन।
सेवा और सद्गुरु का ध्यान, राम करते यह उत्तम मान।
इक दिन जाड़ा पड़ा भयंकर, सोचा राम ने मन में लखकर।

६४. समाधिस्थ श्री प्रभु जी का बर्फ में दब जाना और श्री महाप्रभु द्वारा निकालना।

दो० ऐसा जाड़ा हे प्रभु, मैंने देखा नाहिं।

आप समाधि में पड़े, तनहिं शीत सतांहि ॥ ६०१ क

इस विध मन में लायकर, चद्दर लीनी राम।
महाप्रभु तन ओड़ हित, उठे करन वे काम ॥ ६०१ ख

चद्दर को जब आगे कीना, अग्नी रूप प्रभु को चीना।
क्षण भी इक न वहां टिक पाये, पीछे कदम तुरंत हटाये।
भूल राम ने अपनी मानी, मन में बात तभी यह आनी।
पांच तत्व हैं योग अधीना, बाधें न जो समाधी लीना।
घाम शीत न योगी बाधे, निज प्राण को जब वह साधे।
ऐसी अनुपम शक्ती चीन, राम समाधी भये आसीन।
तन की सकल सुधी विसरायी, वृत्ति दिव्य ज्योति में लायी।
तीन दिवस समाधी में काड़े, चौथे दिन उन नयन उघाड़े।

दो० नयन राम के जब खुले, देखा दृश्य अनूप।
चारों दिक थी हिम पड़ी, तन भी उसमें गूप ॥ ६०२

तन राम का बरफ में गाड़ा, सहन भया न उन से जाड़ा।
उठने की भी शक्ती नाहीं, सुन्न हाथ किमि हिम हटाहीं।
मानी हार उन गुरु ध्याया, इक हाथ तब वहां पै आया।
उसने सारी बरफ हटायी, ऐसी सद्गुरु की प्रभुतायी।
मानुष जब शक्ती को हारे, सद्गुरु बनते तब रखवारे।
यह महिमा श्री राम विखायी, शिक्षा जग ने उन से पायी।
राम तुरंत प्रभु ढिग आये, समाधी बैठे सद्गुरु पाये।
थर थर राम बदन था कांपे, शीतलता उन तन बहु व्यापे।
धूनी में जा अग्नी देखें, आंच का लेश वहां न पेखें।

दो० आंच न धूनी में मिली, थर थर कांपे राम।
हो हताश तब गुरु ढिग, आये सुख के धाम ॥ ६०३

गुरु चरणों पर शिर जब राखा, शीत सकल तन का तब नाखा।
परगट भया तब तत्व सारा, गुरु करते दुःख का संहारा।
होय स्वस्थ राम उठि आये, सेवा कारज में लग पाये।
जा कर धूनी उन सुलगायी, इक चिनगारी से जो पायी।
कौशल सेवा में दिखलावें; कर्म शिष्य का वे कर पावें।
राम मर्यादा के पुरुषोत्तम, काम करें जग से सब उत्तम।
जग आदर्श राम को माने, संशय लेश न मन में आने।
इक इक कर्म राम गुणकारी; पावे शिक्षा जगती सारी।

दो० लोक संग्रह हित निज कर्म, करें राम भगवान।
उस से शिक्षा पाय कर, जग का हो कल्याण॥ ६०४

अग्नी धूनी में सुलगाय, नूतन ईंधन वहां लगाय।
हिम को साफ राम ने कीना, अग्नी को न बुझने दीना।
राम आसन पर पुनः विराजे, सद्गुरु मूर्ति मन में साजे।
चमत्कार उन प्रभु का देखा, निज नेत्रों के सन्मुख पेखा।
हिम वर्षा जब होने लागी; देखे राम प्रभु अनुरागी।
बरफ पड़ती थी चारों ओर; बचा था केवल इक ही ठोर।
वह था ठोर प्रभु की धूनी, होय न जिस विध अग्न न्यूनी।
राम का आसन भी उस पास; हिम न व्यापे बात यह खास।
महाप्रभु के सभी आधीना, इस में कोई न बात नवीना।

दो० जड़ चेतन जो जगत में, सब कुछ ईश अधीन।
जड़ को चेतन कर सके, चेतन जड़ से दीन॥ ६०५ क

चेतन को जड़ कर सके, जड़ को करे चैतन्य।
रे मन प्रभु वह सिमर कर, जीवन कर त धन्य॥ ६०५ ख

राम सिमरे सद्गुरु का रूप, अन्तर्मुख होय दिव्य स्वरूप।

योग युक्त हो काल बितावे, पारब्रह्म शिव रूप लखावे।
साधन में वह समय बितावे, इक पल भी न व्यर्थ गंवावे।
मूल्य समय का राम था जाने, अपनी रचना आप पहचाने।
जग में काल को जो दुत्कारे, काल भी उस को न सत्कारे।
आदर काल का जो हैं करते, ऋद्धि सिद्धि से झोली भरते।
गुरु भी उस को ही प्रशंसे, काल को लेश भी जो न नंसे।
राम तथ्य यह पूरण जाने, तन मन से गुरु पग सन्माने।

दो० आबाल काल की साध, पाया सद्गुरु पूर।
परमानन्द तब राम मन, क्लेश भये सब दूर॥ ६०६

६५. छः मास व्यतीत होने पर श्री महाप्रभु का समाधि से उत्थान।

समय बीतन में देर न लाये, होने को छः मास थे आये।
योगी पास तब राम पधारे, जिस ने भेद कहे थे सारे।
जा कर प्रश्न राम ने कीना, जिस का उत्तर योगी दीना।
"महाप्रभु कब समाधी खोलें, निज मुख से फिर हम से बोलें।"
दिन सातवें प्रभु उठ पावें, योगी मुख से यह फरमावें।
राम भये मन फुल्लित भारी, योगी की सुन बात वह सारी।
इक जिज्ञासा राम प्रकटावें, सेवा प्रभु की क्या कर पावें।
योगी ने तब उत्तर दीना, क्या मानुष तुम प्रभु को चीना।

दो० शिव अवतारी महाप्रभु, क्या करोगे सेव।
उन के आश्रय जग बसे, समझो तुम यह भेव॥ ६०७ क

समाधि से जब हम उठें, हमें न होता कष्ट।
वे तो खुद भगवान हैं, जानो बात स्पष्ट॥ ६०७ ख

राम भाव योगी का जाना, आसन लौटे मन अनुमाना।

दिन सातवें प्रभु उठ जावें, मुझ को सेवा में रत पावें।
सद्गुरु कृपा जिस विध पाऊं, सकल कर्म मैं वही कमाऊं।
राम सोच यह प्रभु ढिग बैठा, मन का खेद सकल था नैठा।
प्रभु मिलन का चाव जो भारी, खिन्नता हर ली उसने सारी।
आटक प्रभु के तन पर लागा, भाव अलौकिक मन में जागा।
प्रभु के तन को देखे ऐसे, चांद को चकवा निरखत जैसे।
इक बात प्रभु तन पै पायी, उस पै सूजन कुछ थी आयी।

दो० गांठें गुरु तन पै पड़ीं, देखे राम सभीत।
मन में सोच यह उपजी, सेव करूं किस रीत॥ ६०८ क

सेव करूं किस रीत मैं, जिस विध रोग नशाय।
अन्तर्यामी राम जी, शिष्य का प्रेम दिखाय॥ ६०८ ख

राम ने मन में तब अनुमाना, रक्त कफ का भया संचाना।
तैलाभ्यंग की सेव कमाऊं, स्वस्थ प्रभु का तन तब पाऊं।
संचित राम तब कीनी औषध, तैल निकाला उन का बहु विध।
प्रभु तन पर तब मलने लागे, शिव देहहिं जो समाधि पागे।
मलने से न गांठें लोपीं, वे तो देखो और भी कोपीं।
औषध तब उन दूजी लीनी, मालिश उस से भी फिर कीनी।
हुआ न उस का जब प्रभाव, जागे राम के मन तब भाव।
यह है न कोई रोग विशेषा, अद्भुत कर्म प्रभु का देखा।

दो० देख प्रभु का कौतुक, राम भये नत माथ।
सन्मुख फिर आ बैठे, बाँधे वे निज हाथ॥ ६०९

देख देख कर कौतुक भारी, नत मस्तक थे राम पापारी।
पूर्ण गाँठों से काया सारी, व्रणाच्छादित जैसे भारी।

राम सहाय क्या कर पाये, वहां तो था न कोई उपाय।
योग की माया योगी जाने, अथवा शरणागत पहचाने।
राम ने प्रभु की शक्ति जानी, प्रभु की ही सब इच्छा मानी।
बैठ प्रभु को तब वे देखें, उन के अद्भुत रूप को पेखें।
क्षण क्षण रूप बदलता दीखे, बाल युवा वा वृद्ध सरीखे।
महा प्रभु की ऐसी माया, अनेक रूप है उन की काया।

दो० रूप अनेकों देखते, बीत गया सब काल।
प्रभु ने नयन उघाड़े, काल के जो महाकाल॥ ६१०

तुरत राम ने दण्डवत कीना, आशिष दिव्य प्रभु का लीना।
ऋषी मुनी तब आने लागे, प्रभु दर्शन के जो अनुरागे।
भिन्न दिशों से बहु विध आवें, कन्द मूल फल भेंटें लावें।
चलते चलते कई थे आते, जय जयकार की रटन लगाते।
गगन मार्ग से कई पधारे, दिव्य पुष्पों की माला धारे।
प्रभु पूजा हित पुष्प वे लाते, चरणों में जो आन चढ़ाते।
उन का प्रेम कथा न जाये, तीव्रता तन सुधी भुलाये।
प्रेम का ऐसा तीव्र वेग, लोकोत्तर यह योग संवेग।

६६. मनमहेश पर्वत पर श्री प्रभु जी का श्री महाप्रभु जी के साथ आकाश मार्ग से गमन।

दो० जगत में देखा न कभी, छोड़ शलभ का प्यार।
सद्गुरु चरणों की लगन, जो थी प्रभु के द्वार॥ ६११

कर दर्शन सब मुनी सिधाते, प्रभु की शिक्षा भी सुन पाते।
दो दिन पूरे ताना बाना, था मुनियों का आना जाना।

दिन तीसरे प्रभु फरमावें, "राम चलो संग हम ले जावें।
इक महात्मा है यहां रहता, देह त्याग की इच्छा वहता।
सिमरन उस ने है कर पाया, चलने का है चित्त में आया।"
राम उठे सुन प्रभु आदेश, विचार किया न मन में लेश।
सद्गुरु को जो अर्पे चित्त, विचलित होय न किसी निमित्त।
सद्गुरु का वह संग न त्यागे, अहर्निश उन की चरणों लागे।

दो० अन्तर्यामी महाप्रभु, ले राम को साथ।
ऋषि मिलन को चल पड़े, ग्रह गगन का पाथ॥ ६१२

वायु मग में वेग से चाले, राम का कर महाप्रभु संभाले।
दृश्य अनेकों मग में आये, नेत्र राम के ना खुल पाये।
प्रभु जी राम को कह जतलावें, लौटत बार हम सब दिखलावें।
"मन महेश" पर्वत तब आया, मुनि ने आसन वहां लगाया।
मुनि समूह प्रभु मग था ताके, उतर गये प्रभु उस जा आके।
आगे हो प्रणाम सब कीना, सुन्दर आसन प्रभु को दीना।
सब जन को प्रभु ने बिठलाया, प्रश्न मुनी से फिर कर पाया।
देह त्यागन की मन तुम आनी, कर्म सकल की हुई क्या हानी।

दो० कर्म का क्षय बिन कीने, छोड़े नर जो देह।
*देही पुनः देह पाये, इस में न सन्देह॥ ६१३

बैठ ध्यान में लो तुम जान, बीते जन्मों का सब ज्ञान।
कर्म जो होवें कुछ भी शेष, त्यागो न फिर प्राण अशेष।
सुन कर प्रभु की गुप्त यह बात, बैठ किये उस कर्म साक्षात।
कर्म पुराने सन्मुख आये, अभी तलक जो कट न पाये।
शुभ अशुभ कुछ कर्म थे बाकी, जिन की देखी उस ने झांकी।

*आत्मा

महाप्रभु को सब बतलाया, सुन कर मुनि को उन समझाया।
अभी न त्यागो नर देह भाई, मुक्ति ऋषियों ने जंह पाई।
रह इसी में योग संभालो, शुद्ध परम हो मोक्ष को पा लो।

दो० प्रभु के सुन आदेश को, मुनि ने जोड़े हाथ।
प्रभु आज्ञा शिर धार्य है, तन न दे पर साथ॥ ६१४

जीर्ण भया है तन यह मेरा, आदेश किमि मैं पालूं तेरा।
साधन धर्म का देह कहा है, उस का देखो हाल अब यह है।
जन्म पुनः मैं भले ले पाऊं, इस तन को मैं किमि टिकाऊं।
मुनि की देख विवशता भारी, दिव्य दृष्टि प्रभु ने तब डारी।
जीर्ण देह काञ्चनमय कीनी, सद्गुरु महिमा सब ने चीनी।
वृद्ध विकल था जो अति दीन, उस की काया भयी नवीन।
देह नूतन इस भव[1] में पायी, कैसी सद्गुरु की प्रभुतायी।
योग शक्ती से क्या न होवे, गुरु योगी भव मल को धोवे।

दो० नूतन तन को जन गहें, इस तन को ही त्याग।
मुनि पाया इस जन्म में, अपर[2] जन्म का भाग॥ ६१५ क

नूतन तन को पाय कर, प्रभु सेवा उस कीन।
ऋषी मुनि जो आये थे, उन को भोजन दीन॥ ६१५ ख

इस विध किरपा प्रभु जब कीनी, व्यथा मुनी की सब हर लीनी।
ऋशि मुनियों को दर्शन दीने, धन्य सकल तपस्वी कीने।
संग राम को तब वे लेय, लौटे मारग वायू गहेय।
उच्च गगन में प्रभु पधारे, दृश्य दिखाये मग के सारे।
नीलमणि महादेव को देख, कैलाशगिरि कुछ दूर से पेख।

(1) *जन्म (2) *दूसरे

प्रभु भये समाधी में लीन, ध्यान में राम लाल तल्लीन।
षण्मास की समाधी लागी, सुधि ईश की ईश में पागी।

दो० दीर्घ काल समाधी में, बैठ गये जब नाथ।
रामलाल गुरु सेव में, रहा उन्हीं के साथ॥ ६१६

सेवा कर्म राम कर पावे, चित्त समाधि में भी लावे।
वृत्तियाँ निज वह इमि समेटे, कछुआ जैसे अंग लपेटे।
ध्येय में कर वृत्ति तल्लीन, बन ध्याता समाधी में लीन।
तन की सुधी सकल विसरावे, घाम शीत से मुक्ती पावे।
वश में कर के क्षुधा पिपासा, त्यागे योगी जग की आसा।
गुरु चरणों को सब कुछ जाने, संशय मन में लेश न आने।
जब वह योग को ले अपनावे, गुरु कृपा से समाधी पावे।
योगी करे अभ्यास निरंतर, बढ़ावे समाधी को हो तत्पर।

६७. पंद्रह दिन के पश्चात श्री प्रभु जी का समाधि से उत्थान और रीछ द्वारा केले अर्पण।

दो० ध्यान बढ़ाया राम ने, होय समाधी लीन।
पंदरह बिवस बिताये, गुरु सागर मन मीन॥ ६१७

उठे ध्यान से राम सुजान, देखा हिम से भरा जहान।
ढूंढन चले राम कन्द मूल, परिश्रम भया सकल निर्मूल।
कहीं भी कन्द मूल न पाये, दृष्टि में थी हिम ही आये।
राम आये फिर होय निराश, अन्न पाने की त्यागी आश।
मन में निश्चय यह कर पावें, समाधी में ही फिर लग जावें।
ध्यान में जब सुरत खो जावे, सुधी क्षुधा की लेश न आवे।
सोच इमि जब आसन लीना, समाधि का था निश्चय कीना।

महाप्रभु ने कीनी दाया, इक रीछ था दौड़ता आया।

दो० पास राम के आय कर, रीछ उठाया हाथ।
समर्पित केले कीने, लाया था जो साथ॥ ६१८ क

केले भेंट चढ़ाय कर, मुड़ गया वह जीव।
आंखों से ओझल भया, माया प्रभु अजीव॥ ६१८ ख

'धन्य धन्य गुरु' राम उचारा, छील केला उन मुख में डारा।
गुरु कृपा उन ध्यान में लायी, गुप्त प्रकट जो करे सहायी।
जीव बैठा हो जब निःसहाय, जग की आस सकल विसराय।
निराश घड़ी में गुरु पधार, शिष्य दुःखी को लेत संभार।
गुरु की महिमा अपरंपार, जग ना पाये उस का पार।
राम केलों का भोग लगाया, गुरु कृपा से चित्त विकसाया।
क्षुधा मिटी राम हर्षाये, दशम द्वार फिर श्वास चढ़ाये।
निर्विकल्प समाधी अभ्यास, किया राम रह सद्गुरु पास।

दो० समाधि में तब राम को, प्रकट भया शुद्ध ज्ञान।
यह भी लौकिक बात है, बोध पायें भगवान* ॥ ६१९

राम सदा शुद्ध बुद्ध स्वरूप, लेश न जिन का रंग व रूप।
वहां अज्ञान का कहां स्थान, सूरज में नहीं तम का भान।
देह धारण मर्यादा जान, राम ने पाया गुरु से ज्ञान।
योग समाधी में लग जावें, जग को शिक्षा यह दे पावें।
शुद्ध ज्ञान तभी नर पावे, गुरु से जा जब योग कमावे।
योग बिना सब श्रम अधूरा, कभी मिले न ज्ञान जो पूरा।

*भाव—श्री प्रभु रामलाल परब्रह्म अवतारी भगवान को ज्ञान की प्राप्ति बतलाना असंगत बात है। परन्तु देह धारण की मर्यादा और शिष्य धर्म का ध्यान रखकर ही यह बात लिखी है।



श्री प्रभु जी ने श्री शिव अवतारी महाप्रभु जी की गुफा के सामने
स्फटिक-शिला-मंडप के निर्माण की सेवा की।

देवों के अधिदेव जो राम ।
सेव करें आ गुह के धाम ।।

(दोहा ६२१ के सामने)

दिव्य योग को राम ने साधा, गुरु चरणों का संग आराधा।
योग मर्यादा जग में थापी, देव लोक में ख्याती व्यापी।

दो० समाधी खोली राम जब, भये सेव में लीन।
सेवा में गुरु धाम की, तन मन अर्पण कीन॥ ६२०

६८. श्री महाप्रभु जी की गुफा के पास मण्डप निर्माण की सेवा।

श्रम कठोर राम ने कीना, सेवा में जब मन उस दीना।
राम ने मन में किया विचार, यहां इक मण्डप करूं त्यार।
समाधी से उठ प्रभु विराजें, ऋषियों मध्य जहां वे साजें।
मन में ऐसा निश्चय धार, स्फटिक शिला का किया भण्डार।
सुंदर स्फटिक शिला जो लाई, भूमि सम कर सभी बिछाई।
उज्ज्वल चौक हुआ तब त्यार, छत डालूं तब किया विचार।
खंभे चारों ओर लगाये, स्फटिक शिला के परम सुहाये।
स्फटिक शिला की छत तब डारी, जिस में श्रम लगा बहु भारी।

दो० महाप्रभु की सेव में, हुए सफल थे राम।
दिव्य मण्डप निर्माण में, उच्च हिमालय धाम॥ ६२१

सुंदर मण्डप बना इक ऐसा, देव लोक से उतरा जैसा।
देव लोक से देव निहारें, भक्ति राम की को सत्कारें।
देवों के अधिदेव जो राम, सेव करें आ गुरु के धाम।
परिश्रम में न श्रम को मानें, निज तन को गुरु का तन जानें।
सेव करें वा ध्यान लगावें, सकल काल वे इमि बितावें।
अहर्निश सेव करें भगवान, कर के राम गुरु का ध्यान।
छः मास फिर बीतन आये, गिन गिन कर क्षण राम बिताये।

कन्द मूल बहु राम जुटावें, ऋषि मुनि जिमि भोग लगावें।
बहु विध राम कीन थी त्यारी, समागम होये जिमि सुख कारी।

दो० छः मास के बाद जब, खोले प्रभु जी नयन।
आन लगे बहु योगिजन, उचरन जय जय बयन॥ ६२२

६८. श्री महाप्रभु जी का पुनः छः मास बाद समाधि से उत्थान और दिव्ययोग समागम।

स्वागत—राम ने उन का कीना, मण्डप में शुभ आसन दीना।
महाप्रभु भी आन पधारे, ऋषियों ने शुभ पग सत्कारे।
कन्द मूल तब राम ले आये, सब संगत ने भोग लगाये।
राम की सेवा सब मन भायी, हर्षित भयी ऋषि समुदायी।
भोजन कर आचमन को कीना, आसन निज निज सब ने लीना।
प्रभु चरणों में राम आसीन, प्रभु की सूरत में मन मीन।
बैठे समस्त ऋषि चहुं ओरा, सन्मुख प्रभु राम इक छोरा।
सब की दृष्टि प्रभु पर लागी, प्रभु दृष्टि थी राम अनुरागी।

दो० वह साध फिर आ गया, जिसे मिले थे राम।
बोला था न राम से, रहा बैठा उपराम॥ ६२३

आते ही उस शंका कीनी, गर्व भरी वाणी कह दीनी।
शंका उस ऐसी जतलायी, प्रभु के मन जो लेश न भायी।
किया राम को प्रभु ईशारा, शंका का तुम करो निवारा।
तभी क्रोध में वह जन पागा, बात प्रभु को कहने लागा।

साधु उवाच

"कल का बाल क्या देगा ज्ञान, वयोवृद्ध हम तपी सुजान।"

महाप्रभु उवाच

सुनी प्रभु जब उस की वाणी, कहा "सुनो तुम वृद्ध सुजानी।
मत तुम इस को बालक जानो, ज्ञानी परम इसे पहचानो।
ऐसा प्रश्न नहीं जग माहीं, मिले न उत्तर इस के ताहीं।

दो० प्रश्न पूछ कर देख लो, यदि न हो संतोष।
हम से उत्तर पाओ तब, धारो न मन रोष॥" ६२४

बोला वृद्ध तपी तब बात, बताओ शीघ्र तुम मम तात।
ज्ञान तो नर को क्षण में होवे, योग में क्यों नर जीवन खोवे।
नर वेदान्त लेवे जब जान, पावे क्षण माहिं पूर्ण ज्ञान।
वेदान्त सूर्य माया अंध्यार, सूरज नासे तम प्रसार।
सुनी राम ने उस की वाणी, भ्रांत मति से जो उपजानी।
यौगिक तथ्य न उस पहचाना, माना वह जो मन अनुमाना।
राम ने मन में गुरु को धार, कीना उस का दृढ़ प्रतिकार।

७०. ज्ञान और मोक्ष का एकमात्र साधन—योग

श्री रामलाल उवाच

वेद के अन्त में है जो ज्ञान, उस को लो वेदान्त तुम जान।
अन्तिम ज्ञान वही नर पावे, पूरण शिक्षा जो अपनावे।

दो० चित्त एकाग्र बिन किये, पाना चाहे ज्ञान।
यह असंभव बात है, निश्चय से लो जान॥ ६२५ क

चंचल है यह मन बड़ा, कही गीता में बात।
बिन अभ्यास के न सधे, मन का तो उत्पात॥ ६२५ ख

वेद व्यास ऋषि जो भारी, जानें वेद की विद्या सारी।

उन का कथन यही महाराज, योग बिना न पूरण काज।
योग बिना न होवे ज्ञाना, ज्ञानी से बढ़ योगी माना।
पाठी कर्मी और तपस्वी, इन से बढ़ कर योगी मनस्वी।
नेत्र बिना जिमि नज़र न आवे, योग बिना तिमि ज्ञान न पावे।
ऐसा देखा सुना न कान, योगी बिना जिस पाया ज्ञान।
ब्रह्म विद्या जिस को तुम मानो, योग बिना निष्प्राण वह जानो।
मनन बिना वेदान्त व्यर्थ, मनस्वी योग सर्व समर्थ।

दो० ज्ञान को हो यदि पाना, पाना हो निर्वाण।
धारो साधन योग का, उत्तम इसको मान॥ ६२६ क

शास्त्रों के प्रमाण से, कीना राम स्पष्ट।
योग बिना न मोक्ष हो, हो न भव भी नष्ट॥ ६२६ ख

प्रमाण राम ने बहु विध दीने, शास्त्रों से थे वे सब लीने।
अपनी मती राम जतलायी, जिस विध थी गुरु आज्ञा पायी
प्रमाण राम से सुन सब भारे, ऋषियों ने शुभ वचन उचारे।

ऋषिजन उवाच

जय नाथ! हे शिव अवतारी, करें दासन पर कृपा भारी।
मूक को तुम करत वाचाल, कृपा पात्र तव ब्राह्मण बाल।
जो कुछ कहा इस सब है ठीक, योग धर्म की खींची लीक।
मार्ग योग है सर्व प्रधान, इस के न कोई और समान।
आयु दीर्घ योग से होवे, ध्यान से जन निज मन को धोवे।
ध्यान बढ़ाये समाधी पावे, पर ब्रह्म में जीव समावे।

दो० समाधी के अभ्यास बिन, चाहे आत्म ज्ञान।
उस नर का हम क्या कहें, वह तो परम अज्ञान॥ ६२७

तपी सुनी मुनियों की वाणी, निज मन में उस मानी ग्लानी।
किया कोप उस वचन उचारे, लगे अप्रिय प्रभु को भारे।

श्री महाप्रभु उवाच

प्रभु ने आज्ञा तभी सुनायी, "योग निन्दक न यहां सुहायी।
पावन हिमगिरि से गिर जाओ, जग में जा कर तुम दुःख पाओ"।
महाप्रभु जब वचन उचारे, उस को लगे वज्र सम भारे।
उस का हाल कथा न जाये, वह उन्माद ग्रसित लख पाये।
वहां से भाग गया तत्काल, निज कर्मों से भया बेहाल।
जो जन जैसा कर्म कमावे, वैसे ही वह फल को पावे।

दो० योग निन्दक जो जन बसे, और योग से हीन।
जग में उसको सुख कहां, सदा रहे वह दीन॥ ६२८

शांत मुद्रा में प्रभु विराजें, रामलाल संग उन के साजें।
ऋषि एक ने प्रश्न उठाया, अपने मन का भाव जताया।

७१. कर्म योगी—वीर योगी

ऋषि उवाच

"रहत कर्म योगी जग* माहीं, योगी हम वन मांझ समाहीं।
अन्तर दोनों मे लख पाऊं, वह ज्ञान मैं आप से चाहूं"।
महाप्रभु को वचन सुहाये, विनय भाव से जो कह पाये।
रामलाल की ओर निहारा, गुरु ने शिष्य को था सत्कारा।

श्री महाप्रभु उवाच

मुख से कहा "हे तात प्यारे, ऋषि मुनियों के परम दुलारे।
प्रश्न एक यह बहुत ही भारी, उत्तर चाहती मण्डली सारी।

*बस्तियों में

दो० इन को तुम समझान हित, मती जताओ तात।
ऋषि मण्डली सब प्रेम से, सुने तुम्हारी बात॥" ६२६

दो० रामलाल गुरु वाणी को, सुनकर भया हैरान।
गुप्त प्रभु के भाव का, किसी न पाया ज्ञान॥ ६२६ ख

राम लाल तब सोच में पागा, प्रश्न पचीदा कठिन था लागा।
चित्त में तब उस प्रभु ध्याया, उत्तर भीतर उन से पाया।
शिष्य बुद्धि के गुरु विधाता, जिमि सृष्टि को ईश बनाता।
गुरु को राम ने माथ झुकाया, मुख से फिर उस वचन सुनाया।

श्री रामलाल उवाच

अखिलेश्वर हे दीना नाथ, जन का भाग्य तुम्हारे हाथ।
जहं राखो तहं जन रह पाये, निज मन में क्यों इच्छा लाये।
जन तव कृपा का ही भिक्षुक, शाश्वत मुक्ति का ही इच्छुक।
वन और वस्ती में न अन्तर, प्रभु कृपा जब पाये निरन्तर।

दो० तव कृपा को पाय कर, मुक्त जीव हो जाय।
जहां भी राखो नाथ जी, लेश न अन्तर आय॥ ६३० क

एक बात पर सद्गुरु, मम बुद्धि में आय।
कर्म भोग जो जन करे, धर्म वीर कहलाय[1]*॥ ६३० ख

कर्म योगी जो जग में रहता, और निरन्तर प्रभु को ध्याता।
कर्मों के सुख दुख को वहता, निज तन पर है सब कुछ सहता।
निज कर्मों के भोग को भोग, त्याग सकल वह मन का सोग[2]*।

---

[1]* भाव यह है कि वन में रह कर योग समाधी द्वारा जो कर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त करने की विधि है उस की अपेक्षा वस्तियों में रह कर और संस्कारों का भुक्तान करते हुये मोक्ष लाभ करना अधिक बहादुरी का काम है।

[2]* शोक, दुःख, क्लेश।

कर कर्मों की बेल विच्छिन्न, सब इच्छाओं से रह कर भिन्न।
कर आत्म वह प्रभु में लीन, मुक्त होवे वह भक्त अदीन।
ऐसा भक्त योगी जो नाथ, सौंपा जीवन जिस तव हाथ।
उस को "वीर योगी" मैं जानूं, तव किरपा से यह मति आनूं।
मैं तो मन्द बुद्धी गुरु देव, जानूं न कुछ योग का भेव।

दो० अपनी बात जतायकर, शिर चरणों में टेक।
मौन राम जभी बैठे, बोला मुनि तबी एक॥ ६३१ क

"शिव अवतारी महाप्रभु, धन्य तुम्हारा बाल।
कृष्ण कलि में उपजा, कर्म योगी है लाल"॥ ६३१ ख

सुन कर प्रभु मुनी की वाणी, हो प्रसन्न बोले महादानी।
प्रकटे राम कलि के माहीं, सिद्धि पूरण घटहिं समाहीं।
शुद्ध बुद्ध है इन का रूप, तीन लोक में परम अनूप।
वन के मांझ न इन का काम, जनता को जा करें सकाम।
पूरण साधन हैं कर पाये, योगेश्वर जग नाम धराये।
जीवों के जो बन्धन काटें, पाप ताप जनता के नाटें।
होवे जग में योग विस्तार, भव से लागे जनता पार।
राम जाओ संसार तराओ, जब चाहो तब लौट भी आओ।

७२. प्रभु राम का हिमालय से लौटना।

दो० योगेश्वर के रूप में, जग में पावो मान।
जीवों के तुम दुःख हरो, करो योग का दान॥ ६३२ क

सुन कर प्रभु के वचन को, मुनि बोले जयकार।
नभ से देवों ने करी, दिव्य पुष्प बौछार॥ ६३२ ख

राम ने प्रभु को शीश झुकाया, दिव्य आशिष को उन से पाया।
मुनियों को तब कीनि प्रणाम, जान सकल सिद्धियों के धाम।
सब ने मिल यह वाणी उचारी, जय योगेश्वर राम तुम्हारी।
हिमगिरि ने भी ध्वनि उचारी, जय योगेश्वर राम तुम्हारी।
कण कण ने यह बात पुकारी, जय योगेश्वर राम तुम्हारी।
वहां से ले विदायी राम, नेपाल पधारे सुख के धाम।
राम प्रभु की महिमा छायी, उमड़ी दर्शन को जगतायी।
महाप्रभु के गुण वे गाते, मुख से पुष्प वचन बरसाते।
उन के मुख पै 'प्रभु' सुहाये, जनता भी प्रभु प्रभु कह पाये।

७३. राम रत्ती का समाधि से उत्थान।

दो० विदित भया सब जगत को, प्रकटे जग में राम।
'प्रभु जी' इस अभिधान से, योगी परम ललाम॥ ६३३ क

ध्यान मग्न जो भक्त थे, देखें प्रभु का रूप।
दिव्य अलौकिक तेजमय, सुन्दर परम अनूप॥ ६३३ ख

रामरत्ती हम जानें नाम, प्रभु के मग में उस का ग्राम।
वर्षों से वह ध्यानासीना, प्रभु चरणों में सुध थी लीना।
ध्यान में जाना प्रभु का आना, मुख से उस ने यह प्रकटाना।
सुनो भक्तो यह शुभ संदेश, आ रहे प्रभु जी हैं इस देश।
जा रेल से उन्हें उतारो, तन मन धन से प्रभु सत्कारो।
सुन कर राम रत्ती की वाणी, भक्त चले प्रभु की अगवानी।
जाय रेल पै प्रभु को देखा, विराज रहे डिब्बे में पेखा।
दर्शन पाकर सब जन हर्षे, गद गद मन से चरण स्पर्शे।

भक्त उवाच

दो० भक्त चढ़े सब रेल पै, कहें प्रभु सें बात।
रुकें नाथ सब ग्राम यह, दर्शन को तरसात ॥ ६३४

राम रत्ती जो भक्त तिहारी, समाधी में उस बात उचारी।
स्वामी जाय रहे स्वदेश, उन्हें उतारो इस ही देश।
प्रभु न आगे अब तुम जाओ, कृतार्थ हम को भी कर पाओ।
विनय प्रभु जी उन की मानी, राम रत्ती की इच्छा जानी।
उतर पड़े प्रभु उस ही ठोर, सब संग चले ग्राम की ओर।
भक्ति में सब गाते जाते, जय जय प्रभु बोलाते जाते।
आना प्रभु का जिस ने जाना, घर में रहना उस ना माना।
आय मिला वह सब के संग, उस पै चढ़ा भक्ति का रंग।

दो० मण्डली सारी आ गई, लेकर प्रभु को संग।
रामरत्ती जहाँ बैठी, रंगी राम के रंग ॥ ६३५

समाधी में उस यह सब देखा, प्रभु का आना जब उस पेखा।
ध्यान मग्न ही उठ कर भागी, जा चरणों में प्रभु के लागी।
देखी रचना प्रभु ने सारी, वहाँ बनी थी जो अति भारी।
धर्मशाला व मन्दिर सुन्दर, पूजा होती जिस के अन्दर।
रौनक भयी थी उस जा भारी, जहां बैठी थी रामरतारी।
राम रत्ती को प्रभु कह पाये, क्या तुम ने ये खेल रचाये।
आज्ञा हम ने कब थी दीनी, जो तुम ने यह रचना कीनी।
माया का तो बहुत पसारा, बाधक है यह योग में भारा।

रामरत्ती उवाच

दो० बात प्रभु की जान कर, राम रत्ती कह पायी।
नाथ मुझे न विदित है, रचना किस रचायी ॥ ६३६

मैंने आज ही आँख उघारी, आप के दर्शन की जो प्यारी

मैं तो तेरे चरण समाऊं, माया में न मन उलझाऊं।
चरणों की अब सेवा दीजो, शरणी अपनी ही रख लीजो।
प्रभु को जनता तब बतलाया, जिस जिस ने जो स्थान बनाया।
जिस जिस की जो इच्छा पूजी, और जो सेवा थी उस कीजी।
रामरत्ती देवी बन पायी, उस को पूजत लोग लुगायी।
प्रभु भक्ति पर बलि बलि जायें; जिस से पापी भी तर पायें।
राम रत्ती जो पापिन नारी, प्रभु भक्ति ने वह थी तारी।

दो० ऐसे गूढ़ रहस्य को, यदि समझें नर नार।
क्षण में भव से ऊबरे, प्रभु को मन में धार॥ ६३७

आसन प्रभु जी वहाँ लगाया, सुन्दर थल पै जो मन भाया।
सेवा में सब जनता लागी, राम रत्ती भी चरण अनुरागी।
सत संगत में समय बितावे, सेवा प्रभु की भी कर पावे।
दर्शन प्रभु का कर नर नार, उपदेशामृत का गहते सार।
प्रभु शिक्षा थे सब को देते, योग भक्ति की दीक्षा देते।
शुभ कर्म का रहस्य बताते, पाप से बचना भी समझाते।

"श्री प्रभु जी का उपदेश"

पाप कर्म नरक ले जावें, शुभ कर्म से स्वर्ग को पावें।
पुण्य है शुभ कर्म का करना, पाप के मग पै पग न धरना।

दो० जीव पुण्य को जब करे, त्यागे अघ का साथ।
चित्त से ईश्वर भजन हो; मुक्ति लागे हाथ॥ ६३८ क

मुक्ति लागे हाथ उस, पुण्य कर्म कर पाय।
ऐसे नर का जगत में, जीवन सफल कहाय॥ ६३८ ख

पुण्य करे वह योग कमावे, पापी योग के पन्थ न आवे।

अन्तर्मुखी वही हो पावे, जो नर पाप से पिण्ड छुड़ावे।
तन जब पाप का पीछा छोड़े, मन भी उस से मुख को मोड़े।
बुद्धि पुण्य तोये* अवगाहे, ऐसा नर ही योग को पाये।
धर्मी पुरुष योग अपनाकर, मन में ईश्वर ध्यान ध्याकर।
जिस शांति को वह पा जावे, उस का वर्णन न हो पावे।
योगी की गति कोई न जाने, नेती नेती वेद बखाने।
योगी तन बसते सब देवा, मन में देवों के अधिदेवा।

दो० कोई न शक्ति विश्व की, जो योगि घट नाहीं।
योगी का तन पिण्ड वह, जहं ब्रह्माण्ड समाहीं॥ ६३९

सुमेरु गिरि योगी घट माहीं, देव सकल प्रकट जहं आहीं।
सूर्य चांद दोनों इस अन्दर, दिव्य धाम देवों के मन्दर।
गंगा यमुना सरस्वती बहती, त्रिवेणी का घाट बनाती।
विश्वनाथ का वहां अधिवास, निर्मल छटा करत प्रकास।
ब्रह्मा विष्णु और महेशा, योगी के घट वसें हमेशा।
ऋद्धी सिद्धी सहित गणेश, योगी के घट रहे हमेश।
आतम जोती का परकाश, प्रकटे सूरज जिमि आकाश।
सूक्ष्म तत्व जो पांच महान, योगी को उन का भी ज्ञान।

दो० योगी पावे ज्ञान को, भौतिक दैविक आत्म।
योगी के घट में सदा, वास करे परमात्म॥ ६४०

चार पांच दिन प्रभु रह पाये, जनता को उपदेश सुनाये।
योग दीक्षा भी जनता पायी, प्रकटी प्रभु जी की प्रभुतायी।
प्रभु जी चलने को जब तत्पर, राम रत्ती कहा तब यह उठ कर।

*तोये—जल में

"रामरत्ती उवाच"

"मैं भी नाथ संग ही चालूं, प्रभु चरणों की सेव संभालूं।
प्रभु के चरण जीवन आधार, करते भव से वे ही पार।
रहे चरणों में मेरा वास, व्यर्थ न जाए एक श्वास।
सत्य कहूं मैं मेरे नाथ, अर्पित जीवन मम तव हाथ।"
इतना बस अबला कह पायी, तन की सुधी सकल विसरायी।

दो० प्रभु चरणों पै गिर पड़ी, तन की सुध विसराय।
अपनी शक्ती से प्रभु, उस को सुध में लाय॥ ६४१

जनता सारी प्रभु से कहती, कर जोड़ कर विनय सुनाती।
राम रत्ती न संग ले जाना, इसे यहां पर ही रख पाना।
इस को हम सब देवी मानें, सकल सुखों की दात्री जानें।
कामना जो किसी की होवे, कृपा करे यह पूरी होवे।
निर्धन इस से धन को पावे, रोगी रोग मुक्त हो जावे।
संतति हीन पुत्र पा जाता, इस का दर्शन सब सुख दाता।
विनती हाथ जोड़ कर पावें, राम रत्ती को छोड़ के जावें।
ग्राम जनों ने विनती कीनी, शिक्षा प्रभु जी ने तब दीनी।

श्री प्रभु जी के वचन

दो० रामरत्ती को प्रभु कहें, हम तो रहत निसंग।
संग न तुम को रख सकें, रहो पिता के संग॥ ६४२ क
कुल मर्यादा पालनी, इस का राखो ध्यान।
प्रभु चरणों में प्रीत हो, त्याग सकल अभिमान॥ ६४२ ख

प्रभु ने तुम को योग सिखाया, उच्च समाधी में बिठलाया।
इस से भया देश यह पावन, रोग शोक का योग नशावन।
योगी का जिस देश में वासा, सब देवों का तहं अधिवासा।

इस प्रदेश को छोड़ न जाओ, निराश न जनता को कर पाओ।
हम जावें अब निज प्रदेश, वास करो तुम अपने देश।
ध्यान भजन में समय बिताओ, योग समाधि को अपनाओ।
मोह माया से रहना दूर, भूल न करना कभी ग़रूर।
काम क्रोध को शत्रु जानो, राग द्वेष से उपजा मानो।

दो० पाँच शत्रु हैं जीव के, काम क्रोध अहंकार।
लोभ मोह भी समझ लो, जन को करें खवार॥ ६४३ क

शिक्षा इस विध देयकर, नाथ चले निज देश।
रामरत्ति वहां ही रही, मान गुरु आदेश॥ ६४३ ख

७४. श्री प्रभु जी का सवाईं में दूसरी बार पदार्पण।

स्टेशन तक सब जन मिल आये, गाड़ी में प्रभु जी बिठलाये।
भाव भरी वीदायी दीनी, आशीर्वाद प्रभु से लीनी।
गाड़ी से प्रभु आगरे आये, पग सवाईं ओर बढ़ाये।
भाग भरी सवाईं की भूमी, रज चरण जिस प्रभु की चूमी।
धन्य वहां के सब नर नारी, प्रभु दर्शन के जो अधिकारी।
प्यारे लाल प्रभु का प्यारा, उस ने प्रभु को आ सत्कारा।
ग्राम जनों को सूचित कीना, प्रभु पधारे हैं कह दीना।
शीघ्र ही सब ने यह जाना, आरम्भ भया जनता का आना।
तेज देखा प्रभु मुख पै ऐसे, शिव उतरे हिम गिरि से जैसे।

दो० देख अलौकिक तेज को, जान गये सब लोग।
लौटे हैं प्रभु जी अभी, वन से कर के योग॥ ६४४

सब ने प्रभु को मिल कर लाया, सुन्दर उपवन में ठहराया।
वहां बनाया आसन खास, सेवक रहते उन के पास।

प्यारे लाल सुविधा सब कीनी, सन्मुख धूनी भी रच दीनी।
सब जन को प्रभु जी समझाया, योग साधन का नियम बताया।
प्रातः काल तुम आ कर भाई, साधन सब करो चित्त लाई।
कर्म करो सब दिन भर जा कर, सायं भक्ति करो मन ला कर।
सूरज अस्त होने जब पावे, निकट हमारे कोई न आवे।
रात्रि का जो काल है भाई, बीत समाधि में ही जाई।
दो० सायं से प्रातः तलक, चाहते हम एकांत।
यहां गुरु की वाटिका, सदा रहे यह शांत ६४५
प्रभु जी ने तब दीनि विदायी, जनता उठि ग्राम को आयी।
बीती रात भोर हो पाया, प्यारे लाल प्रभु ढिग आया।
जो आज्ञा प्रभु जी कर पावें, लाल प्यारे पाल दिखावें।
भक्त गांव के सज्जन सारे, हाथ जोड़ बैठे प्रभु द्वारे।
प्रभु वें उन को शिक्षा भारी, सुनते वे मन ला कर सारी।
सेवक ऐसे प्रभु के जानो, वनचर राम के संग हों मानो।
सेव प्रभु की उन को भावे, संग प्रभु का उन्हें सुहावे।
बाबा प्रभु को कोई पुकारे, दूजा गुरु जी कह सत्कारे।
दो० सब निज रुचि अनुरूप ही, प्रभु से करते प्रेम।
प्रभु जी भी निज भक्त का, धारें योग वा क्षेम॥ ६४६
भक्ति में इमि दिन कुछ बीते, काल का जाना न प्रतीते।
भक्ति रस नित बढ़ता जावे, बहती रस की गंग सुहावे।
नभ से देव उतर के आये, सवाई में उन डेरे लाये।
ग्राम जनों का रूप वे धार, ग्राहवें योग भक्ति का सार।
स्पर्श करें प्रभु के आ चरणा, बन्धन स्वर्ग से जिमि हो तरना*।

*अर्थात् देवता गण भी श्री प्रभु जी के चरणों का स्पर्श प्राप्त कर स्वर्ग बन्धन से मुक्ति के इच्छुक हैं। जैसे मर्त्यों को मर्त्य लोक का बन्धन है, ऐसे ही देवताओं को भी स्वर्ग बन्धन रूप है। उन को स्वर्ग का बन्धन मोक्ष में बाधक है।

ऐसा अवसर भोर न आवे, क्यों कर फिर यह हाथ से जावे।
उन का भेद न जाने कोई; जानन हार ही जाने सोई।
देवों की प्रभु श्रद्धा देख, मन ही मन वे करें उल्लेख।

दो० इमि देवों के संग में, भक्त बितावें काल।
योग अवस्था में पगे, क्या बतावें हाल॥ ६४७ क

क्या बतावें हाल हम, ग्राम जनों का मीत।
प्रभु के दिव्य प्रताप से, दिव्य भया था चीत* ॥ ६४७ ख

७५. श्री प्रभु जी के आस पास सांप ही सांप।

सब के दिव्य भये थे चित्त, भूल गये घर बार व मित्त।
प्रभु का संग न कोई त्यागे, भक्ति रस में ऐसे पागे।
एक प्रभु तब कौतुक कीना, भक्तों ने जो इक दिन चीना।
प्रभु जी बैठे थे जिस ठोर, विषधर घूमें चारों ओर।
भक्त देख यह बहु घबराये, विनय वचन मुख से कह पाये।

भक्त उवाच

प्रभु यह कैसी माया तोरी, धीर धरे अब चित्त न थोरी।
कहां से हैं सब विषधर आये, देख हमारा चित्त घबराये।

श्री प्रभु जी उवाच

देख जनता को भय से भीत, बोले प्रभु जी सुनो सब मीत।
सर्प से न तुम भय को मानो, नहीं काटें ये हम से जानो।
दो० जो सर्प तुम देखते, विषधर हैं ये नाहिं।

* चित्त।

इनसे क्यों भय मानते, मीत हमारे आहिं ॥ ६४८

बात प्रभु की सब सुन पाई, हिरदय में पर धीर न आई।
हो सर्पन से वे आतंकित, सर्प दंश के भय से शंकित।
आना उन ने वहां पै त्यागा, प्यारे लाल रहा चरणि लागा।
गुरु पै भीर परे जब कोई, गुरु भक्ति की परीक्षा होई।
गुरु का भक्त वही कहलावे, तन मन धन से सेव कमावे।
प्यारे लाल न संग त्यागा, गुरु वचनों का वह अनुरागा।
गुरु वाणी को माने जोई, गुरु का भक्त कहावे सोई।
निदरे जो जन गुरु के वचना, काल से उस ने क्या है बचना।
दो० प्रतीत करे गुरु वचन की, समझे उस का भेद।
सब जां ऐसे शिष्य की, करें प्रशंसा बेद ॥ ६४९

प्यारे लाल ने इक दिन देखा, महा कौतुक को उस ने पेखा।
सर्प खेलें थे प्रभु से ऐसे, सगे संबन्धी बहु हों जैसे।
कोई चढ़ता था सर पै उन के, कोइ गोद में बैठा सटके।
कोई कमर पै लिपटा ऐसा, यज्ञोपवीत होय वह जैसा।
कोई फन फैलाए ढाड़, कर प्रभु पै छाया गाढ़।
कण्ठ में कोइ लिपटा दीखे, मणि जटित जिमी हार सरीखे।
कई भुजाओं पै थे लिपटे, क्रीड़ा करत परस्पर चिपटे।
प्रभु को घेर के ठाडें कई, भीत प्यारे के चित्त भई।
दो० लाल प्यारे लौट कर, गया गांव के मांहि।
सज्जन उसके संग कुछ, आये देखन ताहिं ॥ ६५०

चकित भये सब सज्जन आ कर, समाधि में प्रभु जी को पा कर।
शंका कइयों के मन आई, सर्प ने वंशा न हो भाई।
समाधि प्रभु जी ने तब खोली, जनता देखी भय से डोली।

सर्पों को प्रभु परे हटाया, प्यारे लाल को पास बुलाया।
जनता भी तब चल के आई, वर्णे प्रभु जी की प्रभुताई।
प्रभु की सिद्धि वर्णन लागे, हिंसक हिंसा को जहां त्यागे।
विषधर भी जहाँ निर्विष होवें, वैरी वैर भाव सब खोवें।
उस प्रभु की शरण में आये, सर्प के भय को सकल भुलाये।

दो० शरण प्रभु की आय कर, भक्ति पाय अगाध।
सुख विलक्षण व्यापया, पूर्ण भयी सब साध ॥ ६५१ क

प्रभु को माथा टेक कर, विदा भये सब लोग।
प्रभु जी प्यारे को कहें, कर लो साधन योग ॥ ६५१ ख

श्री प्रभु जी के वचन

योग साधन से आतम शुद्ध, योग साध नर पावे बुद्ध।
योग साधन से निर्मल ज्ञान, योग साधन से सत का भान।
साधन योग शांति प्रदाता, योग साध जन मोक्ष को पाता।
प्यारे लाल सुना आदेश, जिस से बड़ा न कोई उपदेश।

भक्त प्यारे लाल उवाच

हाथ जोड़ विनती कर पाया, "नाथ भुलावे तेरी माया।
भूले जीव को शरणी लावो, भव बहते को नाथ बचावो।
योग भक्ति का दीजो दान, पापी जीव का हो कल्याण।"
प्रभु ने उस को योग सिखाया, ध्यान भजन में उसे लगाया।

दो० दीक्षा देकर ध्यान की, कीना प्रकट विचार।
"प्रात यहां से चल पड़ें, लीना है मन धार" ॥ ६५२ क

सुन कर प्रभु की बात को, मन में होय उदास।
प्यारे लाल विनति करे, "राखो प्रभु निज पास ॥ ६५२ ख

मैं सदैव चरणी रह पाऊं, त्याग तुझे न और को ध्याऊं।
छोड़ न संवाई को तुम जाओ, विनय दास की यह सुन पाओ"।
प्यारे लाल हुआ अधीरा, दुःख विरह की भयी बहु पीरा।
मुख से वचन न कुछ कह पाये, नयनों से था नीर बहाये।
प्रभु ने उस को धैर्य बन्धाया, ग्राम में लौटन को फरमाया।
प्यारे लाल ग्राम में आया, भाव प्रभु का सबन बताया।
सुन कर लोगों को भयी ग्लानी, जानी सब ने धर्म की हानी।
दर्शन प्रभु के सुख के मूल, जाने दें क्यों उन को भूल।

दो० मिल कर सारे ग्राम जन, आये प्रभु के पास।
हाथ जोड़ विनती करें, मन में भये उदास॥ ६५३

७६. सवाई में सिद्ध गुफा का निर्माण।

ग्राम जनों ने कहा

"हम से प्रभु क्या हो गई भूल, हम तो हैं तव पग की धूल।
हम को छोड़ कभी न जाओ, सदा चरण में निज रख पाओ।
क्षमा करो प्रभु हमरे पाप, वास करो इस ग्राम में आप।
मात पिता हो आप पधारे, सद्गुरु स्वामी व रखवारे।
विरह वियोग न सहन करेंगे, नाथ कहो किमि आप रहेंगे।
सेवा सकल हमें बतलाओ, छोड़ गांव को कभी न जाओ।

श्री प्रभु जी के वचन

प्रभु जी सुन कर उन की बात, किरपा कर के बोले तात।
आप हमें जो राखन चाहो, यहां गुफा इक त्यार कराओ।

दो० वास गुफा में हम करें, करें प्रभु का ध्यान।
योग समाधि में रहें, सब का हो कल्याण॥ ६५४

प्रभु के मुख से निकली वाणी, गुरु आज्ञा कर सब ने मानी।
प्रभु से पूछ पूछ कर सारे, सेव करें सब प्रभु के प्यारे।
धरती भीतर से वे पाटें, माटी ला कर बाहिर साटें।
ऊंची लांबी गुफा खुदायी, वास करें जहं जग सुखदायी।
लीप पोच गुफा तब दीनी, सब भांति वह सुंदर कीनी।
उस में एक कपाट लगाया, देख प्रभु के जो मन भाया।
उस में प्रभु जी रहने लागे, ग्राम ग्राम के जन अनुरागे।
दर्शन हित सब थे मिल आते, मन में हर्षित हो कर जाते।

दो० गुफा के निर्माण पर, सब के मन था मोद।
इस में वास सदा करें, ऐसा उन को बोध॥ ६५५

प्रभु से ग्राहवें बहु जन शिक्षा, आ कर लेते उन से दीक्षा।
ध्यान भजन की शिक्षा पाते, दीक्षा योग की जन अपनाते।
यम नियम को समझें आकर, प्रभु बतावें सब समझा कर।
निर्मल जीवन होवे जैसे, कर्म बतावें प्रभु जी वैसे।
हठ के साधन सब बतलाते, आसन प्राणायाम कराते।
नेती धौती वस्ती सारे, करावें साधन प्रभु जी प्यारे।
*जीवनतत प्रभु समझावें, कच्चा भोजन साथ करावें।
मन सबल और सबल शरीर, योग साध नर बनता धीर।

दो० महाप्रभु की शक्ती का, कीना प्रभु विस्तार।
शिष्य गुरू का धन्य वह, आज्ञा पालन हार॥ ६५६

*सात क्रियाओं का जठराग्नि को स्मृद्ध करने वाला अनुपम साधन जिस की रचना श्री प्रभु जी ने स्वयं की थी। इस का विस्तार आगे देखें।

प्रभु के चमत्कार जन देखें, धन्य धन्य कह सद्गुरु लेखें।
घटना ऐसी प्रतिदिन होवें, अलौकिक शक्ति को जन जोवें।
जो घटना यहां प्रभु लिखावें, उस को ही लिपिबद्ध कर पावें।
सामर्थ्यवान किमि नर होवे, प्रभु के सारे कौतुक जोवे।

७७. बच्चों से सांपों का फेंकवाना।

इक कौतुक प्रभु यह दिखलाया, बच्चों को उन पास बुलाया।
साहस भरा उन के मन ऐसा, बाल अभिमन्यु में था जैसा।
पकड़ सांप जितने वहां पाये, दूर दूर सब फेंक दिखाये।
सर्प रहित कीनी वह धरती, अलौकिक देखी सब ने शक्ति।

दो० सर्प रहित जब हो गया, गुरु का बाग संपूर्ण।
अधिक जनता का चित्त भया, भक्ति रस से पूर्ण॥ ६५७

शंका रहित सब आने लागे, प्रभु के भक्त परम अनुरागे।
दर्शन हित कुछ जन थे आते, ध्यान समाधी कुछ थे पाते।
युवक योग करने कुछ आते, रोगी कुछ निरोगता पाते।
बालक मल युद्ध को दिखलाते, प्रभु जी उन को दांव सिखाते।
कच्ची सब्जी दाल चने की, मलाई खाते दूध दही की।
देह बनाते पुष्ट हो जाते, कर आश्रम की सेवा पाते।
शुद्ध अन्न तो मन शुद्ध होवे, बुद्धि भी जग हित को गोवे।
ऊंची शिक्षा सब नर पाते, सेवा भक्ती योग कमाते।

७८. पवित्र तालाब का निर्माण।

दो० प्रभु के सेवक बहुत थे, नित्य पूछें आ सेव।
इक दिन प्रभ फरमाया, करो ताल की सेव॥ ६५८ क

दो० नहाने की तकलीफ है, जान लेवो यह भेव।
सुंदर ताल बनावो, यही हमारी सेव ॥ ६५८ ख

भक्त लगे तब ताल बनाने, ला कसियां माटी खुदवाने।
मिल कर सब जन सेवा करते, प्रभु की जय जय संग उचरते।
कड़ कड़ धूप पडे सर ऊपर, कसियां चालें तड़ तड़ भू पर।
कसियाँ ले कई सेवा करते, पात्र में कई माटी भरते।
सर धर माटी वे ले जाते, ताल किनारे फैंक के आते।
इस विध बन पाया वह ताल, दीना जल तब उस में डाल।
शोभा गुरु के बाग सुहायी, पास गुफा जब बनी तलायी।
हो प्रसन्न प्रभु दृष्टि डाली, निज शक्ति उस ताल में घाली।

दो० प्रभु की शक्ति पाय कर, भया जल अमृत रूप।
माटी भी उस ताल की, औषध बनी अनूप ॥ ६५९ क

औषध बनी अनूप थी, उस ताल की माट।
जिसने रोग अनेक थे, डाले शीघ्र काट ॥ ६५९ ख

दूर दूर के जन थे आते, ताल के जल से रोग मिटाते।
संग में माटी ले वे जाते, बाबा का प्रसाद थे खाते।
राजा रंक सब भक्त प्यारे, आते मिल वे प्रभु के द्वारे।
ताल में सब की श्रद्धा भारी, जिस में प्रभु ने शक्ति डारी।
गुफा के भीतर जो नर जाते, प्रभु के दर्शन वे कर पाते।
धूल गुफा की ले वे आते, आधि व्याधि सकल मिटाते।
जन जगत के स्वर्ग के देव, आते करने प्रभु की सेव।
प्रभु की आशिष सब थे पाते, पूरण काम वे हो कर जाते।

दो० प्रभु के उस दरबार में, त्रुटी न आती लेश।
हों सब पा निज कामना, पूरण काम अशेष ॥ ६६०

७९. ठाकुर चन्दन सिंह को आशीर्वाद रूपी माला का दान ।

एक भक्त का हाल बखानें, प्रभु कृपा को जिमि पहचानें।
ठाकुर चन्दन सिंह अभिधाना, अति दरिद्र न उस के समाना।
प्रभु जी की उस को थी टेक; निर्भर रहत उन्हीं पर एक।
ढूंढे नित्य जाय कर काम, सफलता का ना पावे नाम।
होय निराश लौट के आता, मौन भाव से प्रभु को ध्याता।
प्रभु से कुछ भी न कह पाता, ज्ञाता से निज ज्ञान छिपाता।
प्रभु का भक्त न गिड़गिड़ावे, भक्ती में निज दुःख छिपावे।
दुःख भी प्रभु की इच्छा जाने, मौत में प्रभु की छाया माने।

दो० ऐसे निर्मम भक्त की, करते प्रभु संभाल।
माता दौड़ संभालती, संकट में जब बाल ॥ ६६१

ठाकुर को विपत्ति में देख, मन में प्रभु ने कीन उल्लेख।
भक्त संकोची न कुछ मांगे, सब से पीछे बैठा सांगे।
जो न इस को होऊं सहाय, भक्त वत्सलता मम तब जाय।
इस विध दया को मन में लाय, इङ्गित से तब भक्त बोलाय।
पुष्पन की इक माला दीनी, झुक कर ठाकुर ने जो लीनी।
माला पहन के अगले रोज, निकला जब वह काम की खोज।
इक अधिकारी को मिल पाया, उस ने काम पै तुरत लगाया।
भक्त वत्सलता प्रभु दिखायी, महिमा प्रभु की जग में छायी।

दो० प्रभु से माला पाय कर, ठाकुर भया निहाल।
धन धान्य का भया स्वामी, बदला उस का हाल ॥ ६६२ क

बदला उस का हाल तब, रहता भक्ति लीन।
माला के प्रताप ने, धन्य था उस को कीन ॥ ६६२ ख

८०. भक्त जौहरी सिंह को चवन्नी दे कर धनाढ्य बनाना ।

दो० सवाई में इक और भी, रहता भक्त उदास ।
जौहरी सिंह पुकारते, रहें जो उस के पास ॥ ६६२ ग

जौहरी सिंह था रहत उदास, पूंजी लेश न उस के पास ।
काम काज कुछ कर न पाये, धन नहीं जो वणिज में लाये ।
ऋण लेय और करे व्योपार, मूल गंवा कर होय खवार ।
कुटुंब पालन से था लाचार, उस के केवल प्रभु आधार ।
प्रभु दर्शन हित नित था आता, इस में लेश न नागा पाता ।
साहस पर यह न हो पाये, प्रभु को अपनी विथा सुनाये ।
जानन हार थे प्रभु दयाल, दासन पर हों सदा कृपाल ।
इक दिन जौहरी पास बुलाया, किरपा कर उस को समझाया ।

दो० प्रभु ने पास बुलाय कर, उसे बंधाई धीर ।
दुःख तुम्हारे सब कटें, मत हो तुम आधीर ॥ ६६३

कर्म गति से दुःख हैं आते, दुःख बीते नर सुख भी पाते ।
सुख दुख का यह जोड़ा भायी, शास्त्र कहत हैं आगमापायी ।
स्थिर नहीं है कुछ भी जग में, दुःख आवे वह नाशे पल में ।
दुःख को नाशवान जो जाने, दुःख में भी वह नर सुख माने ।
दुख के बाद इमि सुख आवे, रात विहाये दिन चढ़ जावे ।
दिन पाछे फिर रात का आना, इस को भाई भूल न जाना ।
मस्त होय जो सुख में रहता, काल का भय जो लेश न वहता ।
जिस रहस्य न काल का जाना, उस को अन्त पड़त पछताना ।

दो० ज्ञानवान वह जानिये, काल का जाने भेद ।
आवागमन को मान कर, दुःख में करे न खेद ॥ ६६४ क

दो० दुःख में करे न खेद जो, सुख में न अभिमान।
सत्य सनातन ईश का, पा सके वह ज्ञान॥ ६६४ ख

जौहरी सिंह को प्रभु समझाया, उस के मन का खेद मिटाया।
चवन्नी उस के हाथ थमायी, लक्ष्मी की उस कुञ्जी पायी।
कुबेर के दर का मिला द्वार, किरपा के प्रभु परम भण्डार।
चवन्नी उस ने माथ छुवाई, भाग्य की रेखा वहाँ बनाई।
प्रभु किरपा नर भाग्य विधायी, प्रभु कृपा जन को सुखदायी।
प्रभु किरपा को जो नर पावे, उस का दारिद क्यों रह जावे।
जिस कृपा के देव अभिलाषी, जो कृपा सब सुख की राशी।
उस किरपा को जौहरी पाया, प्रभु जानें प्रभु की जो माया।

दो० जौहरी माथ झुकाय कर, आशिष को तब पाय।
लौटा अपने गेह को, लक्ष्मी संग चलि आय॥ ६६५

जिस काम में हाथ वह पावे, माटी भी सोना हो जावे।
लुप्त भया सब उस का दारिद, उमड़ पड़ा संपत का वारिद।
सरिता सुख की घर में चाली, धन धान्य की भयी हरियाली।
धर्म कर्म का फल भी लागा, सब परिवार प्रभु अनुरागा।
विनय शीलता परम सुहायी, प्रभु भक्ती सब को सुखदायी।
बाल गोपाल प्रभु अनुरागे, दैवी सुख में सब जन पागे।
ऐसा अवसर बनता तब ही, प्रभु किरपा हो जन पर जब ही।
बिना प्रभु किरपा न कुछ होवे, पच पच चाहे जीवन खोवे।

दो० प्रभु किरपा प्रताप से, जौहरी के मन मोद।
जिमि भानु के ताप से, हो वारिज प्रबोध॥ ६६६ क

निज किरपा प्रसाद जो, बांटें दोनों हाथ।
उस प्रभु का दास मैं, गाता उन की गाथ॥ ६६६ ख

८१. ठाकुर दास को चार पुत्रों का दान ।

भक्त सवाईं में इक रहता, दुःख में जीवन नौका वहता।
परम अभागा सब जन जानें, ठाकुर दास नाम पहचानें।
भाग्य हीन उस के सम नाहीं, उस से सब नर नारी त्राहीं।
उस के मन की कोई न जानें, कर्म हीन सब उस को मानें।
संतति हीन वह शोक में डूब, निज जीवन से गया था ऊब।
पहली नार जब स्वर्ग सिधारी, दूजी शादी उस कर डारी।
दूजी नार जब देह त्यागा, लुट गया तब उस का भागा।
उस के भाग्य था बदा न पूत, दोनों नार ग्रसीं यम दूत।

दो० पावे नर न भाग्य बिना, कर लें यत्न हज़ार।
खलि से तेल न नीकले, पीडें लाखों बार॥ ६६७ क

कर्म बिना भी मिलत है, दानी मिलें दयाल।
दानी सद्गुरु चाहिये, समझो सोच विचार॥ ६६७ ख

काल गाल जब नार समायी, ठाकुर दास पै विपदा आयी।
घोर निराशा उस पै छायी, जीवन की उमंग विहायी।
नेत्रों पर अंधेरा व्यापा, मुख पै मौन ने ताला थापा।
जिस के घर न पूत चिराग, नार न जाले चूल्हे आग।
उस का क्या जीवन है भाई, लगे न उस को जग सुखदायी।
स्वर्ग सिधाई जब से नारी, लागे ठाकुर जीवन भारी।
सुन्ना घर था भया भयानक, प्रभु की सुधि तब आई अचानक।
आश निराश में कुछ जग पायी, सिमरति प्रभु की जब मन आई।

दो० प्रभु का सिमरन पाय कर, उपजा मनहिं हुलास।
सूर्योदय जिमि तमें नशे, ठाकुर चित्त प्रकास॥ ६६८

ठाकुर शरण प्रभु की आया, दाता को निज दुःख बतलाया।
जाननहार स्वयं सब जानें, भाग्य विधाता भाग्य पहचानें।
शरण पड़े की ग्राहवें टेक, त्याग करें न दुःख में नेक।
निधि दया की दया में आये, ठाकुर दासहिं वचन सुनाये।
"खेद करो न ठाकुर भाई, सिमर प्रभु जो हैं सुखदाई।
त्यागो शोक न हो बेहाल, प्रभु को सिमर सिमर सब काल।
प्रभु का सिमरण खेद नशावे, दुख शोक वा पाप मिटावे।
करता जो नर प्रभु का ध्यान, तरता दुख से पाता ज्ञान।

दो० बीती को सब भूल कर, करो प्रभु का ध्यान।
सिमरन में अब तुम लगो, शिक्षा मेरी मान॥ ६६९ क

इस विध शिक्षा देय कर, लीन विभूती हाथ।
दीनी ठाकुर दास को, आशीर्वाद के साथ॥ ६६९ ख

ठाकुर दास विभूती लीनी, मान प्रसाद उस भक्षण कीनी।
विभूति उस ने क्या थी पायी, सकल विभूती चल के आयी।
विभूति का प्रसाद जो पाया, प्रभु कृपा ने भाग्य बनाया।
बदा जो न था उस के भाल, प्रभु ने लिख दीना तत्काल।
ब्रह्मा ने निज लेख सुधारे, प्रभु आज्ञा से बदले सारे।
प्रभु की शरणी जो जन आवें, इस विध अपना भाग्य बनावें।

दो० भाग्य बना उस भक्त का, मिली सुलक्षण नार।
चार पूत उससे भये, ठाकुर का परिवार॥ ६७० क

रे मन ऐसे नाथ का, अहर्निश कर तू ध्यान।
भक्तन को जो देत हैं, भुक्ति मुक्ति का दान॥ ६७० ख

जिस ने रामाबाई तारी, रामरती सम नीच उबारी।

हरिहरानन्द सिद्ध बनाया, ठाकुर का उन भाग जगाया।
रे मन उसी प्रभु को छोड़, जाता तू किस अन्य है ठोड़।
चन्दन सिंह को माला दीनी, दरिद्रता उस की हर लीनी।
चवन्नी जौहरी सिंह को देय, उस के दुःख को जो हर लेय।
रे मन उसी प्रभु को छोड़, जाता तू किस अन्य है ठोड़।
तुझ से नीच को जिस अपनाय, दुनिया की सब लाज भुलाय।
दीना चरणों में विश्राम, समस्त सुखों के जो है धाम।
रे मन उसी प्रभु को छोड़, जाता तू किस अन्य है ठोड़।

दो० उसी प्रभु को भूल कर, आये तुझे न लाज।
प्रभु तो दीन दयाल हैं, पुनः सुधारें काज॥ ६७१

८२. ठाकुर बाबू राम को चरण पादुका देना।

आ तुम्हें कुछ और सुनाऊं, दीन दयाल की दया बुझाऊं।
जिस से हो तुम को विश्वास, डूबी नाव वे लाते रास।
बाबू राम इक भक्त प्यारा, सवाई का वह रहने वारा।
प्रभु भक्ति का वह अनुरागी, जिस से किस्मत उस की जागी।
परम भक्त पर था धन हीन, रहता प्रभु की सुधि में लीन।
खान पान का अतीव अभाव, सत्संग का था फिर भी चाव।
एक समस्या उस की भारी, कन्या उस की युवा कुमारी।
जिस की चिन्ता उसे सतावे, धन बिना वह क्या कर पावे।

दो० युवा पुत्री को देखकर, रहत शोक में ग्रस्त।
पल पल उस का मन दबे, जिमि हो सूरज अस्त॥ ६७२

घर में चिन्ता बहुत सतावे, प्रभु चरणों में शान्ति पावे।
प्रभु चरणों में था विश्वास, राखी थी उस उन पै आस।

स्वयं करें सब बाबा काम, जपत रहत वह उन का नाम।
लोग बहुत बातें थे करते, बाबू राम पै दोष थे धरते।
"पुत्री युवा घर में हो पायी, करता यह न कोई कमायी।
किसी भी काम न भक्ति आवे, कन्या धन न बिन परिणावे।"
सुन सुन कर वह सब की बात, घुलता मन में जलता गात।
सहन न दुःख को जब कर पाता, प्रभु के पास वह चल के जाता।
अन्तर्यामी मन की जानें, घट घट की वे विपत पहचानें।

दो० गज पै संकट देख कर, कीना था जिन त्राण।
घिरी द्रौपदी जान कर, चीर बढ़ाये आन॥ ६७३ क

उन्हीं प्रभु की शरण में, बैठा बाबू राम।
घोर मुसीबत में पड़ा, बहुड़ें क्यों न राम॥ ६७३ ख

राम प्रभु मन किरपा आनी, किरपा की इक दीन निशानी।
पादुक अपनी तुरत उठाई, कह दीना "लो तुम यह भाई।
निज भण्डारे में रख देना, रचना कारज की कर लेना।
सभी करें प्रभु कारज रास, अरे भक्त मत होओ उदास।
प्रभु भक्तों के सदा सहायी, खेद न धारो मेरे भाई।"
बाबू ने वह पादुक लीना, निज शिर पर उस को रख दीना।
प्रभु का पादुक शिरहिं उठाया, घर की ओर वह भक्त सिधाया।
निकला था जो आश विहाय, लौटा विश्व की संपति पाय।

दो० प्रभु पादुक वह लेय कर, आ गया निज द्वार।
उसके मन से शोक का, उतर गया सब भार॥ ६७४ क

पादुक को उस भक्त ने, आसन पर धर दीन।
कन्या के उदवाह की, सकल तयारी कीन॥ ६७४ ख

जो सामग्री था वह लाता, प्रभु पादुक पर उसे चढ़ाता।
पैसा टका कहीं से पाता, उस को भी वह वहीं चढ़ाता।
प्रभु कृपा का रहस्य अपार, धन धान्य का जुटा भण्डार।
जन गण भी तब आने लागे, प्रभु पादुक के सब अनुरागे।
प्रभु की पादुक वहां क्या आई, खिंच आई सब लोग लुगाई।
पण्डितों ने शुभ तिथि सिधाई, बरात वहाँ तब चढ़ के आई।
ऐसा स्वागत वहां हो पाया, राजा ने जिमि काज रचाया।
जब बरात जीमन को आई, षडरस भोजन पा हर्षाई।

दो० षडरस भोग परोसते, न जाने जन कौन।
ग्राम जनों के वेष में, देव विचरें थे मौन॥ ६७५ क

प्रभु बैठे थे देखते, निज पादुक के पास।
केवल देव पहचानते, यह रहस्य जो खास॥ ६७५ ख

देवों ने यह रहस था जाना, ग्राम जनों ने अचरज माना।
परम भक्त था बाबू राम, कारज प्रभु कीना उस धाम।
पण्डित ब्रह्मा बन के आया, देवों ने सामान जुटाया।
बाबू मन हो प्रभु साक्षात, कन्या दान किया उस रात।
दो रात्री बरात जीमाई, तीजे रोज को दीन विदाई।
बहुत दहेज संग में दीना, हर्षित हो वर पक्ष ने लीना।
वर वधू संग चलने लागा, उस का मन भी प्रभु अनुरागा।
इस से बढ़ कर न कोई दात, प्रभु भक्ति जो हो साक्षात।

दो० भक्ति का जो दान प्रभु, दीना उन को साथ।
मानो प्रभु थे बिक गये, वर वधू के हाथ॥ ६७६ क

इससे बढ़ कर रे मना, क्या होगा उपकार।
रामलाल प्रभु संग रहें, भक्तन के रखवार॥ ६७६ ख

दो० प्रभु किरपा के चरित तो, जग में विदित अनेक।
इक चरित हम और कहें, ले कर प्रभु की टेक॥ ६७६ ग

८३. भक्तों के हित के लिए तीन शरीर प्रकटाना।

बालक सवाई में प्रभु संग, प्रातः करते तैलाभ्यंग।
मल युद्ध शिक्षा सब मिल पावें, दाँव पेच प्रभु उन्हें सिखावें।
अखाड़ा बना गुफा के पास, प्यारा प्रभु को जो था खास।
मानव देह धर्म का मूल, स्वस्थ बने यह बड़ा असूल।
धर्म कर्म यह सब कर पाये; योग साध यह मोक्ष कमाये।
जो शिक्षा व्यवहार में आवे, उत्तम ज्ञान वही कहलावे।
करनी कर नर फल को पावे, क्यों बातों में समय गंवावे।
कर्म में जन को प्रभु लगावें, धर्म कर्म वा योग सिखावें।

दो० कर्म से कस के देह को, मन को कस के आप।
योग युक्त तब जन बने, प्रभु जी के प्रताप॥ ६७७ क

छुट्टी का वह दिवस था, था इक पर्व महान।
सब दिन बाल वहाँ रुके, प्रभु जी के इस्थान॥ ६७७ ख

मध्य बालों के प्रभु विराजे, सारा दिन उन्हीं संग साजे।
पर्व स्नान यह इक था भारी, गंगा जावे जनता सारी।
प्रभु जी को वे सभी बुलावें, चलो नाथ हम संग ले जावें।
प्रभु जी सब को यह कह पाते, तुम चलो हम पीछे आते।
सब जनता तो गई नहान, बैठ रहे प्रभु अपने स्थान।
बालों को शिक्षा दे पावें, पर्व की महत्ता को समझावें।
सब तीरथ हैं अपने अन्दर, देह को राखो स्वस्थ व सुन्दर।

मन का धूप बुद्धी का दीप, राखो इन को सदा समीप।
गंगधार जो श्वास बहावें, अर्चन उस में हम कर पावें।

दो० पर्व स्नान तुम जान लो, श्वासों में जो स्नान।
इसी स्नान से कटत हैं, पाप ताप अभिमान॥ ६७८

त्रिवेणी त्रिकुटि में तुम देखो, आतम रूप सदाशिव पेखो।
इस शिव को जो सदा ध्यावें, लोक परलोक की संपत पावे।
यह शिव ऐसा भोला नाथ, पल में करत यह भक्त सनाथ।
सत्यमूल यह शिव विख्याता, चिदानन्द का यही विधाता।
मन की मैल तभी धुल जावे, सत्य के साबुन से नर नहावे।
पर्व स्नान यह रहस बताया, बाल जनों ने सुख को पाया।
सारा दिन रह प्रभु के पास, क्रीड़ा कीनी प्रभु संग खास।
लोग लौट कर गंग से आवें, प्रभु जी को वहीं बैठा पावें।
आ आश्चर्य में कुछ कह पाये, "आप प्रभु यहां कब हैं आये।
हम तो आगे निकल थे आये, तुम को पाछे छोड़ ही पाये।"
बालक उन के मुख को देखें, मूरख को जिमि सज्जन पेखें।

दो० आखिर में उन को कहा, क्या कहो तुम बात।
बाबा यहीं बैठे रहे, सब के ही साक्षात॥ ६७९ क

लोग लौट के चल दिये, आपस में कह पायें।
बालक बहुत उद्दंड हैं, मूर्ख हमें बनायें॥ ६७९ ख

कन्ही राम भक्त प्रभु प्यारा, सब से पाछे गुफा पधारा।
देख प्रभु को वहीं विराजे, अपने आसन पर ही साजे।
ठिठक गया वह वचन सुनाये, "हो बाबा किस यान में आये।
तुम को तो पीछे ही छोड़, हम आये थे आगे दौड़।
तुम ने संग न आना माना, है कुछ कारज हम ने जाना।"

ऐसा कह वा कर प्रणाम, लौट गया वह कन्ही राम।
बालकगण विस्मित हो पावें, सब जन क्यों इक ही रट लावें।
जो रचना थी प्रभु रचायी, किस की भी वह समझ न आयी।
रूप अनेक रचे जब ईश, डाल माया जग पै जगदीश।

दो० भ्रम में ही तब सब रहें, पण्डित हों या मूढ़।
ईश्वर की माया प्रबल, रहस्य अति ही गूढ़॥ ६८० क

रहस्य अति ही गूढ़ जो, पण्डित भी भ्रमाय।
ग्राम जनों की समझ में, किस विध फिर वह आय॥ ६८० ख

विस्मित बैठे बालक माते, देखा तब इक भक्त को आते।
"शरण शरण" उस से सुन पाया, "आज प्रभु ने मुझे बचाया।"
आय गिरा बाबा की चरणों, "राखो प्रभु मुझ को निज शरणी।
मैं पापी तुम दीन दयाल, मैं दुखिया तुम हो प्रतिपाल।"
कर्ण सिंह वह भक्त सुजान, करते जिस का सब जन मान।
प्रभु उठाया गले लगाया, कहा क्यों भाई क्या हो पाया।
इतने क्यों हो व्याकुल आज, रोने से क्या बनता काज।
दुःख का भेद हमें बतलाओ, त्यागो खेद शांत हो पाओ।

दो० दुःख में करे न खेद जो, सुख में न अभिमान।
पण्डित जन उसको कहें, भक्त जनों की शान॥ ६८१

कर्ण सिंह को प्रभु समझाया, आशिर्वाद उसे वे पाया।
बैठा उठ वह वचन सुनाये, अलिगढ़ से प्रभु कब हो आये।
बालक रोक न हंसी पाये, यह मूर्ख क्या बात बनाये।
अलिगढ़ गये प्रभु कब चल कर, यह जो बात कहे है आ कर।
कहे कर्णसिंह अपनी बात, प्रभु बचाया मुझ को कल रात।

यदि आप न आते तत्क्षण, प्राण न मेरे बचते उस क्षण।
गाड़ी नीचे कुचला जाता, स्टेशन पर ही ढेर हो पाता॥
प्रभु जी तुम तो चढ़े न गाड़ी, मुझ से फिर भी आये अगाड़ी॥
*किस मारग से तुम हो आये, मेरा मन इस में विस्माये॥

दो० प्रभु ने टाला भक्त को, जाय करो आराम।
प्रात बातें कर लेना, हम को है अब काम॥ ६८२ क

बाल जनों को भी प्रभु, कहा तुम जाओ मीत।
"गुफा भीतर विश्राम का, करता है मम चीत॥ ६८२ ख

सब को वहां से भेज कर, अखिलेश्वर सर्वेश।
प्रभु जी ने निज गुफा में, कीना तब प्रवेश॥ ६८२ ग

प्रभु की माया प्रबल है, समझे कोई सुजान।
जिस को बुद्धी देत हैं, होय उसे ही ज्ञान॥ ६८२ घ

मम मन भी है भांवरा, उसी प्रभु का मीत।
सकल विकल को त्यागकर, करता उस से प्रीत॥ ६८२ ङ

प्रभु जी के गुणगाण का, करता हूं रस पान।
ब्रह्मानन्द इस से मिले, ऐसा मन में मान॥ ६८२ च

८४. ज्वाहर पहलवान का गर्व चूर्ण।

प्रभु की शक्ति अपरम्पार, भक्त जनों की जो आधार।

* श्री प्रभु जी ने इस अवसर पर अपने तीन रूप प्रकटाये। एक रूप गंगा के तट पर भक्तों ने देखा और भी प्रभु जी से वार्तालाप भी किया। दूसरा रूप अलिगढ़ में भक्त कर्ण सिंह की रक्षा निमित्त प्रकटाया और तीसरे रूप में संवाई के अन्दर बालकों को व्यायाम कराते रहे। योगेश्वर श्री प्रभु जी का भिन्न-भिन्न स्थानों में एक ही समय प्रकट होना भक्तों के लिए परम विस्मय का कारण बना।

जिस के ऊपर प्रभु का हाथ, वही जानें हम भक्त सनाथ।
इक बालक की बात बतावें, प्रभु कृपा दृष्टांत सुनावें।
उस की अमोघ भयी थी वाणी, आया पहलवान जब मानी।
करें अखाड़े में निज कुश्ती, बाल बढ़ावें तन में चुस्ती।
आसन आदि वे कर पाते, जीवनतत भी प्रभु सिखाते।
सब्जी कच्ची दाल चने की, मलाई खाते दूध दही की।
देह बनाते शिक्षा पाते, सेवा में भी समय लगाते।

दो० कसरत करते देखकर, आया इक पिलवान।
अखाड़े का प्रधान वह, ज्वाहर था अभिधान॥ ६८३

उस के भी थे शिष्य अनेक, बढ़कर स्वस्थ एक से एक।
उन में था अभिमान यह भारी, डरती हम से जनता सारी।
गुरु में भी था बड़ा यह मान, मुझ जैसा न कोई पिलवान।
उस के शिष्य कभी थे आते, प्रभु के शिष्यों से खिझ पाते।
धमकी दे कर लौट के जावें, हम देखें जब बाहर आवें।
शिष्य प्रभु के उन्हें चिढ़ावें, आयें बड़े जो भय दिखावें।
देखे बहुत ऐसे पिलवान, डर जायें जब भौंके श्वान।
कहें वे जा कर गुरु के पास, निन्दा करते प्रभु की खास।

दो० जा कर ज्वाहर से कहें, हो कर गुरु के पेश।
बाबा के जो शिष्य हैं, तुम्हें गिनें न लेश॥ ६८४

आ ज्वाहर क्रोध में आया, गुरु के बाग की ओर सिधाया।
आ कर देखे बालक वहां पर, कसरत करने में जो तत्पर।
निकाले उस ने उन में दोष, इक बालक को आया रोष।
कहा तुम यों ही दोष निकालो, आ मुझ से तुम कुश्ती कर लो।
सुन बालक की यह ललकार, खिसियाया वह हो लाचार।

छोटा बालक वह उत्साही, समझे प्रभु की जो प्रभुताही।
पहलवान क्या उस से लड़ता, मान हानि से वह था डरता।
परन्तु गर्व था उस को भारी, मानी ने कही बात करारी।

दो० भर गर्व में बोल उठा, तुम बच्चे हो भ्रात।
कुश्ती तो तुम क्या करो, उठा दिखाओ लात॥ ६८५ क

उठा दिखाओ लात तुम, तब मान हम जाएं।
गुरु भी तेरे आंय यदि, ऐसा न कर पाएं॥ ६८५ ख

सुन बालक गुरु नाम को, बरसाई दृग आग।
रहने दो इस को यहीं, बोल गया घर भाग॥ ६८५ ग

पहलवान की लात वह, टेढ़ी ही रह पायी।
लंग लंगाता वह गया, मन में तब पछतायी॥ ६८५ घ

लगा भयंकर रोग अब, वर्ष बीतें दश–सात।
प्रभु आवें इस ठोर जब, कहें आगे तब बात॥* ६८५ ङ

८५. ठाकुर गुलाब सिंह को कुएं में गंगा माता के दर्शनों का दान।

दो० चिदानन्द जगदीश की, लीला अपरम्पार।
शेष शारद मिल गावें, पावे न कोई पार॥ ६८५ च

पर्व स्नान आया इक भारी, गंगा जाने की थी त्यारी।

---

* दस–सात=सतारह वर्ष

यह घटना सन् १९१३ की है। सन् १९३० में कृपानिधान श्री प्रभु जी सवाई में पुनः पधारते हैं तो जवाहर पहलवान आर्त हो कर उन की शरण में आता है। वह प्रसंग आगे यथा स्थान देखने को मिलेगा।

भोर से पूर्व ही नर चाले, बाल बच्चे सब संग संभाले।
पीछे जनता न कोई दीखे, रहे वृद्ध वा रोगी सरीखे।
इक नर और बचा उस ठोर, आया जो प्रभु दर्शन भोर।
था गुलाबसिंह उस का नाम, प्रभु भक्ति ही उस का काम।
सब तीरथ गुरु चरणी पेखे, ब्रह्मा विष्णु शिव भी देखे।
किरपा गुरु की गंग स्नान, निश्चय उस का यही महान।
प्रभु चरणों में बृढ़ थी प्रीती, आज्ञा पालन उस की रीती।

दो० बैठा प्रभु के पास वह, चरणों में ला ध्यान।
अन्य प्रभु के भक्त तो, गये थे गंग स्नान। ६८६ क

अकेले निज को देखकर, उपजा मनहिं विचार।
संग प्रभु को ले चलें, गंगा जी की धार। ६८६ ख

उस के मन में जब यह आयी, प्रभु जी को तब विनय सुनायी।
चल बाबा हम भी चल पायें, गंगा जी में नहा के आयें।
सब जनता है आज सिधारी, पर्व तिथि यह है बहु भारी।
सब जन तो थे भोर सिधाये, केवल हम वा तुम रह पाये।
सुन कर प्रभु के मन में आयी, इच्छा भक्त ने है प्रकटायी।
किस विध पूरण हो यह आज, अधूरा रहे न इस का काज।
निज मुख से फिर उन फरमाया, भक्त का संशय सकल मिटाया।
स्वर्गी गंग आए जो भाई, शिव जटाओं में जो सुहाई।
सब घट में वह गंग विराजे, सहस्त्रार से निकल के साजे।
उस गंगा में वही नहावे, मन एकाग्र जो कर पावे।

दो० मन एकाग्र करत है, गंग में करत स्नान।
पाप ताप उस भक्त के, शीघ्र ही धुल जान॥ ६८७ क

धुलें पाप जिस भक्त के, योगी वह हो जाय।

योगी जन का जगत में, संशय सकल नशाय ॥ ६८७ ख

भक्त को प्रभु ने यह समझाया, उस के मन का भरम दुराया।
कृपा नाथ तब किरपा कीनी, देह दृष्टि उस की हर लीनी।
अन्तर्मुखी उस को कर पाये, मुख से और प्रभु फरमाये।
बिलंब हुआ है अब तो भाई, जाने की है वेल विहाई।
स्नान कूप पर ही कर आओ, जाकर फिर तुम भोजन पाओ।
आज्ञा पाय भक्त उठ धाया, जाय कूप में खड़ हो पाया।
स्पर्श किया जूं उस ने पानी, प्रकटी वहां पर गंग भवानी।
दिव्य भूषण वा तेजमय रूप, भक्त ने देखा रूप अनूप।
शुभ आशिष उस ने दे पाया, गंग धार फिर भक्त नहाया।
ऐसी गंग में वही नहाये, प्रभु किरपा को जो नर पाये।
गुलाब सिंह इमि गंग नहाया, सर्व प्रथम उस ने फल पाया।

दो० सभी भक्त मग में चलें, पहुंचा सिंह गुलाब।
शरण प्रभु की जो गहें, उन का यही हिसाब ॥ ६८८

८६. जीवन तत्व साधन और कृषक पर कृपा।

इक प्रसंग अब और चलावें, शिक्षा जिस में प्रभु से पावें।
जीवनतत थे प्रभु सिखाते, बाल वृद्ध सब सीखन आते।
जीवनतत के उत्तम साधन, इन से निर्मल होता तन मन।
देह में इन से शक्ति व्यापे, काया कल्प हुई फिर जापे।
कच्ची सब्जी सेरों खावें, दाल चने की संग चबावें।
कइ कइ सेर दही पी जावें, दुर्बलता वा रोग नशावें।
तन बिन वेद धर्म नहीं वरना, योग साध कर पुष्ट है करना।
शिक्षा नित्य प्रभु इस की देते, सकल ग्राम के जन थे लेते।

दो० शिक्षा नित देते प्रभु, राखो देह निरोग।
भीमार्जुन सम सब बनें, कर के साधन योग॥ ६८६ क

जब से योग विसराया, लीना रोगन घेर।
भरत के तुम हो वंशज, संग खेलें जिस शेर॥ ६८६ ख

जीवनतत तब प्रभु करावें, जिस से जीवन नूतन पावें।
सप्त साधन थे प्रभु बताते, अपने सन्मुख सभी कराते।

१. सर्वोत्तान

"सर्वोत्तान" प्रथम बतलाया, नस नाड़ी को चुस्त बनाया।
भूमी पर प्रथम जन लेटें, कंघी सम दश अंगुल समेटे।
दोनों बाजू सीधी ताने, सर की ओर ले जा अकड़ाने।
तीन बार नर उसे दुहरावे, देह की सुस्ती सकल नशावे।

२. स्कन्ध चालन

दूजा साधन है "स्कन्ध चालन" जिस से होय स्वास्थ्य का पालन।
हृदय रोग न उस पै आवे, स्कन्ध चालन जो नित कर पावे।
श्वास रोग से रहता दूर, स्कन्ध चालन जो करे ज़रूर।
क्षय का रोग निकट न आवे, स्कन्ध का चालन नित कर पावे।

दो० आसन पै नित बैठ कर, घुटनों राखे हाथ।
गोलाकार घुमावें, कन्धों को भी साथ॥ ६६०

शिक्षा इस की गुरु से पावे, बिन अभ्यास न साधन आवे।
फूले श्वास तो रुक नर जावे, कुछ रुक कर फिर पुनः चलावे।
गुरु से आज्ञा जितनी पावे, उतनी बार स्कन्ध चलावे।
"शुष्क नौली" भी इस का नाम, खाया भोजन पचे तमाम।

३. पग चालन

"पग चालन" है तीजा साधन, स्वस्थ रहे जो करे आराधन।
आन्तर शुद्धी इससे होवे, धातु रस देह पुष्टी गोंवे।
लेटे नर पग पगहिं धरावे, एड़ी पर तब टाँग हिलावे।
जितना समय गुरु कह पावे, उतना काल वह पग चलावे।

४. नाभि चालन

आगे जानो "नाभि चालन", सब से उत्तम यह है साधन।

दो० नाभि चालन अभ्यास से, जो खाय पच जाय।
कच्चा सेरों अन्न खाय, लेता भक्त पचाय॥ ६६१ क

भूमि पर नर लेट कर, इस विध कमर हिलाय।
दाहीं बाहीं ओर को, पलसेटे वह खाय॥ ६६१ ख

बीस बार पलसेटे खाये, खाया भोजन सब पच जाये।
दुगुना उस से जो कर पाये, उस की भूख खूब बढ़ जाये।
अथवा जितना गुरु करावे, साधक उतना ही कर पावे।
युवा बाल वृद्ध वा दुर्बल, साधन कर वह पाये बहुबल।
वृक सम होवे अग्नी समृद्ध, वृकोदर हुआ जिस से प्रसिद्ध।

५. जानु प्रसार

पञ्चम साधन "जानु प्रसार", आन्तर शुद्धी का आधार।
यह आन्तों की शक्ति बढ़ावे, 'अन्तर चालन' भी कहलावे।
आन्तें करे पूरा जब काम, देह की शक्ति बढ़े तमाम।
बद्ध कोष्टता और अजीरण, यह साधन कर हो निस्तीरण।

दो० भूमि पर चित लेट कर, दायां पांव उठाय।
बायें घुटने पर धरि, दायीं टांग हिलाय॥ ६९२ क

भूमि संग स्पर्श करि, फिर ऊपर ले जाय।
उतनी बारी वह करे, जिमि गुरु आज्ञा पाय॥ ६९२ ख

पुनः टाँग को बदल कर, बायां पांव उठाय।
दायें घुटने पर धरि, उसी विध वह चलाय॥ ६९२ ग

'अन्तर चालन' अभ्यास से, नस नाड़ी का शोध।
अन्तर के अंग पुष्ट हों, हो शक्ति प्रबोध ६९२ घ

६. नाड़ी चालन

साधन छटवां "नाड़ी चालन" जीवनतत का यह शिरोमन।
नाड़ी चालन करे नर नार, बढ़ावे तन की शक्ति अपार।
उदर वृद्धि को यह ले थाम, खाया भोजन पचे तमाम।
टांगों की हैं नस जो सारी, बाजू और कमर भी भारी।
सीना गर्दन सकल शरीर, पुष्ट करे वा बने नर धीर।
ऐसे साधन दूजे नाहीं, स्फूर्ति देह में इतनी लाहीं।
करें अब इस की विधि बखान, श्रवण करो तुम लाकर ध्यान।
बैठो टांगें आगे तान, अन्तर बहुत लो उन में आन।
भुजा फैलाय कमर घुमावो, दायां हस्त वायें पग लावो।
बायाँ बाजू पीछे घूमे, आये फिर दायाँ पग चूमे।

दो० इस विध कमर घुमाय कर, टांगें भुजा फिलाय।
पांच मिनट जो नर करे, दैहिक रोग गंवाय॥ ६९३

७. बाल मचलन

मचलन बाल करो अब आन, करो संग बच्चे का भी ध्यान।
कितना भी नर बूढ़ा होवे, अपने शैशव को वह गोवे।
समझे अभी तो मैं हूं जाया, माता ने मुझे अभी खिलाया।
मैं माता की गोद पड़ा हूं, उछल उछल परेशान करे हूं।
माता है मुझे चुप कराती, दे लोरी है मुझे सुलाती।
मैं पर मचल मचल के जाऊं, माता के न वश में आऊं।
झूले में वह मुझे झुलावे, मारूं लात उलट के जावे।
मैं बच्चा क्यों वश में आवूं, मैं तो नूतन शक्ती पावूं।

दो० निज को बच्चा मान कर, पीठ सहारे लेट।
हाथ पाओं फठकारे, चिन्ता सकल समेट ॥ ६६४ क

चिन्ता सकल समेट कर, करे बाल का ध्यान।
बच्चे के जिमि रूप में, खेल रहे भगवान ॥ ६६४ ख

शैशव का जो ध्यान दृढावे, कभी वह नर न वृद्ध हो पावे।
यह ज्ञान जो प्रभु जी दीना, उत्तम दर्शन समझ नवीना।
सनक सनन्दन हुए पुरातन, राखा सद उन बालक का तन।
यह विद्या थी उन अपनाई, लुप्त भयी फिर प्रभु समझायी।
युग युग में लेकर अवतार, लुप्त विद्या का करें उद्धार।
जीवन तत्व प्रभु जी लाये, जिस से जगती जीवन पाये।
कच्चा आहार सात्विक भारी, शक्ती उस में होती सारी।
प्रभु ने उस की विधि बताई, ऋषियों को परिपाट चलायी।
उस प्रभु के किमि गुण गावें, शेष शारद भी कथि थक जावें।

दो० प्रभु जी के उपदेश से, करते कच्चाहार।
भक्त सवाई के सभी, पाते शक्ति अपार ॥ ६६५ क

पाते शक्ति अपार वे, घिया वा लौकी खाय।
आस पास के खेत से, देते प्रभु मंगवाय॥ ६९५ ख

भक्त एक दिन बहुत थे आये, प्रभु ने साधन सभी कराये।
खाने की जब बारी आई, घिया मिला न खेत में भाई।
लौट लौट सभी जन आये; प्रभु जी को निज भाव बताये।
आज लौकी न कहीं मिल पावे, सारा खेत खाली दिखलावे।
खेत वाले को प्रभु बुलाया, निज मुख से उस को फरमाया।
"भइया एक घिया ले आओ, अपने खेत का हमें खिलाओ।
आज घियों की आई तोट, तुमरे खेत की लीनी ओट।"
सुन कर बाबा की शुभ वाणी, गया खेत में प्रभु सन्मानी।

दो० प्रभु सन्मानी वह गया, अपने खेत के मांहि।
वेलें सारी देखीं, घिया एक न पांहि॥ ६९६ क

घिया एक न पांहि जब, आया लौट निराश।
प्रभु जी के सन्मुख खड़ा, होकर परम हताश॥ ६९६ ख

कहे "प्रभु मैं बहुत हूं पापी, आप की आज्ञा भी न थापी।
ढूंढ ढूंढ कर हारा नाथ, एक भी घिया लगा न हाथ।
पड़ीं हैं सारी खाली बेल, खतम हुआ अब इन का खेल।
लज्जित हूं मैं बहुत ही स्वामी, बाबा तुम तो अन्तर्यामी।
इस में मैं अब क्या कर पाऊं, आज्ञा हो तो शहर में जाऊं।
घिये मण्डी से ले कर आऊं, सब भक्तों को लाय खिलाऊं।"
देख कृषक की यह लाचारी, उठे आसन से प्रभु पापारी।
कहन लगे चल हम भी जायें, कुछ पायें तो खुद ले आयें।

दो० खेत तुम्हारे से मिलें, लेकर तब तो खायें।
यदि समापत ही भये, हम न भोग लगायें॥ ६९७ क

सब भक्त हो संग लिए, चले खेत की ओर।
देख अचंभित तब भये, घिये लगे सब ठोर ॥ ६६७ ख

कहा कृषक को नाथ ने, बोला था तुम झूठ।
क्या यह खेत तुम्हारा, जिस में घिये अनूठ ॥ ६६७ ग

कृषक देख कर हुआ लजाना, प्रभु शक्ति को उस पहचाना।
तोड़ा एक घिया निज हाथ, लगाया प्रभु चरणों के साथ।
काट काट वह सब को दीना, प्रसाद प्रभु का जो था चीना।
कहने लगा प्रभु हो क्या तोट, मिले जिस की तव चरणी ओट।
चल चरण जब खेत में आवें, बेलें क्यों न घिये लगावें।
मैं तो हूं युग युग का झूठा, पर अब अवसर मिला अनूठा।
अब चाहूं बस यह सेवकायी, घीयों की ही हो कृषकायी।
लाऊं चुन चुन कर तव चरणी, छूट जाय युग युग की करणी।

दो० लाख चौरासी की प्रभु, पनप रही जो बेल।
निज किरपा से काट दो, बदल जाय यह खेल ॥ ६६८ क

बदल जाय यह खेल अब, तव चरणों में आय।
सेवा केवल दीजिये, बेल घियों की लाय ॥ ६६८ ख

बेल घीयों की मैं लगाऊं, भक्त जनों की सेव कमाऊं।
जितने घिये लगें इस अन्दर, जावें सकल नाथ के मन्दर।
लेना मूल्य न कुछ भी चाहूं, जन्म जन्म के पाप नसाहूं।
प्रभु चरणों की भक्ति मांगूं, भक्ति मांगन में न सांगूं।
निज चरणों में दो विश्राम, अनन्त सुखों के प्रभु हो धाम।
मेरी सेव करो स्वीकार, पापी जीव का हो उपकार।
इतना कह उस चरण ग्राये, करुणा निधि करुणा में आये।

"तथाअस्तु" प्रभु ने कह दीना, सेवक को कृतारथ कीना।

दो० कर कृतारथ भक्त को, लौटे प्रभु निज धाम।
घिये लगाये खेत में, प्रभु का जग में नाम ॥ ६६६

प्रभु का यश फैला सब थायीं, जनता उमड़ दर्शन हित आयीं।
अलौकिक शक्ति प्रभु की जानें, बाबा को दिव पुरुष वे मानें।
दूर दूर से जनता आवे, दर्शन बाबा के कर पावे।
अति दुर्बल वा रोगी आवें, चरण धूलि प्रभु की ले जावें।
स्नान करें वे ताल में आकर, स्वस्थ रहें फिर घर में जाकर।
ताल प्रभु का बना सुतीरथ, गंगा सम जो लायी भागीरथ।
आवागमन लोगों का देख, प्रभु जी मन में कीन उल्लेख।
शांत रहा न अब यह स्थान, करना चाहिये कहीं प्रस्थान।
जाने का जब प्रभु बतावें, लोग न सहन ज़रा कर पावें।

दो० प्रभु थे उनको प्राण सम, वियोग किमि हो सहन।
उन के मन में यह बसे, सदा प्रभु वहां रहन ॥ ७०० क
प्रभु के मन कुछ और था, जाना था निज देश।
सती सुभद्रा जहां बसे, जिस के प्रभु हृदयेश ॥ ७०० ख

स्वामी गये जिस के वनवास, लौटन की भी न कोई आस।
ऐसी सती साध्वी नारी, मां भारत की एक दुलारी।
ताके शायद पति आ जावें, भिक्षा की ही सदा लगावें।
पति पर करने गये थे योग, जग का त्याग सकल वे भोग।
आहट पाय गली में जावे, संदेश नया किसी से पावे।
लौट निराश फिर वह पछताती, पति की याद में सुधि भुलाती।
बीते दिन वा रात आ जावे, गिन गिन तारे वह कट जावे।
लगे आँख दर्शन थी पाती, स्वागत हित वह कदम बढ़ाती।

श्री १००८ योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज
की जगवन्द्या धर्मपत्नी पूज्या माता सुभद्रा जी



घर से निकल प्रभु तप कीना ।
सुभद्रा घर में ही तप कीना ।।

(दोहा ७०१ के सामने)

मुख को मोड़ पति चल जावें, "योग सिद्धि हम पा कर आवें।"
दुष्टा आंख तभी खुल जाती, सती सुभद्रा फिर पछताती।
इस विध काल निकलता जावे, सुभद्रा सुध न पति की पावे।

दो० योग योगेश्वर राम जी, घट घट जाननहार।
च्योंटी की भी रेंग सुनें, क्यों भूलें निज दार॥ ७०१

पर हैं राम तो युग अवतारी, काम बड़ा है उन का भारी।
तप बिना न कुछ भी होवे, सिद्धि तप से ही नर गोवे।
घर से निकल प्रभु तप कीना, सुभद्रा घर में ही तप कीना।
तप की गंग यमुन दो धार, मिल कर जग का करे उद्धार।
सती सुभद्रा सदा मनावे, उस का पति सिद्धि को पावे।
पुण्य कर्म जो पति कमावे, पतिव्रता उस से तर जावे।
पतिव्रता जो होवे नार, पति उठावे उस का भार।
योगी रूप धारा जब राम, सुभद्रा भयी जग से उपराम।
सुभद्रा के गुण जो नर गावे, उन को और मनन में लावे।

दो० ऐसे नर पर राम जी, सदा रहेंगें दयाल।
जन्म मरण से वह छुटे, ग्रसे न उस को काल॥ ७०२ क

८७. सूक्ष्म रूप धारण कर गुफा से निकलना तथा आकाश मार्ग से सवार्यों से प्रस्थान।

दो० मन में धारा राम ने, चलें सवार्यों त्याग।
मांझ गुफा के वे रहें, ध्यान भजन में लाग॥ ७०२ ख

नित्य प्रातः निकलते, दर्शन जनता पाय।
इक दिन पर ऐसा भया, देर तलक नहिं आय॥ ७०२ ग

देर तलक न निकले स्वामी, भक्त एकत्रित दर्शन कामी।
बहुत बिलंब हुआ जब देखा, मन में भक्तन कीन उल्लेखा।
जा कर हम आवाज़ लगावें, स्वामी जी जिमि बाहर आवें।
चाहते सब जन दर्शन उन के, नहिं तो संशय रहे मन सब के।
प्रात न दर्शन जो कर पावे, दिन उस का सब दुख में जावे।
मंगलमय है प्रभु का दर्शन, मंगलमय गुरु पग स्पर्शन।
मंगलमय प्रभु आशिष वाणी, मंगलमय सद्गुरु कल्याणी।
मंगलमय प्रभु का आदेश, मंगलमय सद्गुरु उपदेश।

दो० मंगलमय हैं सद्गुरु, अब दर्शन किमि होय।
दिवस बहुत ही चढ़ गया, प्रभु अभी क्या सोय॥ ७०३ क

सब जनता इमि सोचकर, गई गुफा के द्वार।
बाबा बाबा बोल कर, कीनी सबन पुकार॥ ७०३ ख

सब जनता थी बाबा बोले, जोर जोर से मुख को खोले।
प्रतिध्वनि भी फिर सुन पावे, बाबा शब्द लौट के आवे।
गुफा से बाबा कुछ न बोले, संशय जनता के मन डोले।
सब जनता में फैली बात, बाबा निकले नहीं प्रात।
सब जनता को हुई हैरानी, डूबे शोक प्रभु सन्मानी।
फैली ग्राम में जब यह बात, आया दौड़ इक जन साक्षात।
सूखा धीमर उस का नाम, निज खेत में कर रहा काम।
छोड़ काम वह दौड़ा आया, जनता को उसने बतलाया।
"बाबा जो रहते गुफ माहीं, उडे आकाशीं वे प्रातः हीं।"

दो० सूखा धीमर जब कहो, बाबा की वह बात।
ससोपंज में जा पड़ी, सब जनता उस प्रात॥ ७०४ क

सब जनता उस प्रात ही, परेशान हो पायी।
प्रभु करुणा के धाम ने, दीनी त्याग सवायीं ॥ ७०४ ख

कुछ जनता ने सूखा घेरा, कुछ ने गुफा द्वार को घेरा।
गुफा द्वार उन जा कर पाया, भीतर से था सांकल लाया।
द्वार तोड़ भीतर घुस पाये, सचमुच प्रभु जी कहीं सिधाये।
वस्तु प्रभु की पड़ी थीं वैसे, निकले बन्द गुफा से कैसे।
विस्मय की यह बात अनोखी, महिमा जानें भक्त संतोखी।
सब जग के जो सिरजन हार, उन्हें क्या बान्धें बन्द द्वार।
निराशा ने जनता को घेरा, सोचें प्रभु कब पायें फेरा।
क्यों न बाबा बोल पधारे, कौन दोष थे हमरे भारे।

दो० असमंजस में पड़ रहे, सभी ग्राम के लोग।
बीता सारा दिवस इमि, जिमि छाया हो सोग ॥ ७०५

शोक ग्रस्त थी जनता सारी, लगे न उन को गुफा भी प्यारी।
सूझे उन को घर न जाना, भूला सब ने खाना पाना।
बताय कर जो प्रभु जी जाते, दर्शन उन के कहीं कर पाते।
भूमि से यदि चल के जाते, पग चिन्हों से दिशा हो पाते।
वायु मारग प्रभु सिधारे, कौन जाने किस लोक पधारे।
जनता सब दुःख से विलखेवे, किस को कौन सांत्वना देवे,।
सायं वेला होने आयी, नभ वाणी कुछ ने सुन पायी।
"हम फिर आयें लला इस ठोर, अब जाओ सब घर की ओर।"

दो० आज्ञा प्रभु की मान कर, घर चले गए लोग।
पावन गुफा सवायीं की, और प्रभु का योग ॥ ७०६ क

प्रसिद्ध भये ये जगत में, पावन परम अनूप।
तीर्थन के भी मध्य में, भया सवायीं भूप ॥ ७०६ ख

८८. हरिद्वार में आगमन और योग प्रचार

दो० सवायीं से प्रभु चलि कर, पहुंचे हरि के द्वार।
गंगा जी का शुभ तट, हिमाचल का प्रसार ॥ ७०६ ग

हिमाचल का प्रसार सुहावे, छटा गंगा की मन को भावे।
ऋषि मुनियों की कुटियां छायी, सत्संग की चहुं ओर दुहायी।
प्रभु भक्ति का सुंदर मेला, भक्तों का सब थाहीं रेला।
मन्दिर गंगा तट दिख पायें, पूजा काल में खूब सुहायें।
घंटी घंटन की झंकार, वाद्य वादन का शब्द अपार।
सायंकाल की शोभा ऐसी, उतरी स्वर्ग से नगरी जैसी।
विद्युत का प्रकाश मनोहर, प्रतिबिंबित जो हरि सरोवर।
उछले तरगों मध्य प्रकाश, तारे टिम टिम जिमि आकाश।
स्वर्गी परियां अथवा आयीं, जल चरों से करें किलकायीं।

दो० दक्षिण तट जो गंग का, मन्दिरों से भरपूर।
वायें तट पै मुनि बसें, रहें जगत से दूर ॥ ७०७ क

प्रभु जी भी चलि वहाँ गये, मिले जहाँ एकान्त।
संगत मिले या साध की, करें योग रह शांत ॥ ७०७ ख

प्रभु जी गंग पै रहने लागे, ध्यान समाधि में अनुरागे।
समाधि में वे ज्ञान को पाते, महाप्रभु से मिल के आते।
योग संबन्ध जुटा था ऐसे, तार बेतार होती जैसे।
क्षण एक में जुड़ता नाता, दिखता मन न आता जाता।
कितने मास तो इमि बिताये, कहीं भी प्रभु जी गये न आये।

वर्णन साधुन में हो पाया, योगी है कोई चल के आया।
परम भक्त और है अभ्यासी, जग से पूरण रूप उदासी।
देखा इस जैसा न कोई, किस गुरु का शिष्य यह होई।
प्रभु को मिलन हेतु वे आये, प्रभु जी स्वागत हित उठ पाये।

दो० साधुन को सत्कार कर, प्रभु ने पूछी बात।
"ध्यान भजन और साधना, निर्विघ्न चले क्या तात॥ ७०८ क

इक युवक वहां साध था, उत्तर उस ने दीन।
और सभी तो ठीक है, मन है बहुत मलीन॥ ७०८ ख

तुम तो योगी हो महाराज, साधन योग है तुमरा काज।
मन को वश करना तुम जानो, मन की गति भी तुम पहचानो।
शिक्षा हम को देवें आप, मन का मिटे जिमि संताप।
सुन कर उस की प्रभु जी बात, कहा बताऊं तुम को तात।
मन जो वश में करना चाहे, प्रथम प्राण को वश में लाये।
प्राण रुकें मन भी रुक जाता, उखड़ें प्राण तो मन विचलाता।
मन प्राण का नाता अटूट, यह तो रहस्य परम है कूट।
सुन कर प्रभु की वाणी गूढ़, बोला साध जो था अमूढ़।

दो० नाथ हमें बतलाइये, सिद्ध किमि हों प्राण।
जिन के साधे मन सधे, जिस विध पायें ज्ञान॥ ७०९ क

प्रभु जी ने फिर प्राण का, दीना भेद बताय।
हिरदय में जो बसत है, मुख्य वह प्राण कहाय॥ ७०९ ख

८९. दश प्रकार के प्राण तथा प्राणायामी के लक्षण

पांच प्राण के भेद बताये, वृत्ति भेद से सब समझाये।

पाँच प्राण तुम ऐसे जानो, प्राण अपान समान पहचानो।
व्यान उदान भी दो हैं प्राण, सब मिल करते कारज जान।
उपप्राण भी पांच हैं भाई, नाग कूर्म व कृकल कहाई।
देवदत्त और इक धनञ्जे, करता देह के नाना धन्धे।
इक साधु ने प्रश्न उठाया, प्राणों का निवास पुछाया।
"कहाँ रहता है कौन प्राण; इस का भी हम चाहते ज्ञान।"
प्रभु जी ने तब उन्हें बताया, देह में प्राण स्थान जताया।

दो० प्राण हृदय में बसत है, गुदा में बसत अपान।
बसत समान नाभि माँहि, कण्ठ में रहे उदान॥ ७१०

व्यान का एक स्थान न जानो, सकल देह में व्यापत मानो।
नागादि का हाल भी जानो, उन के कारज को पहचानो।
नाग का कारज है उद्गार, कूर्म पलकों का करत पसार।
कृकल लगाये भूख प्यास, देवदत्त से होत उबास।
धनञ्जय से हो हिचकी भाई, मात्रा अन्दर वह सुखदाई।
ऐसे देह के कर्म हमारे, वायु से ही होते सारे।
वायु सकल जीवन आधार, योगी प्राण का जाने सार।
वायु का जिस रहस्य पहचाना, प्राणायाम को उस ने जाना।

दो० दश प्रकार की वायु का, कीना मैं बखान।
उत्तम उन में जान लो, केवल प्राण अपान॥ ७११

प्राण अपान को उत्तम जानो, प्राणायाम में सहायक मानो।
प्राण अपान को सम कर पावे, प्राणायामी वही कहावे।
गुरु का भक्त प्राण सिधावे, प्राणायामी तब हो पावे।
गुरु चरणों में श्रद्धा लावे, शीघर ही वह सिद्धि पावे।
वे जन कभी न सिद्धि पावें, बहु संगत में रुचि जो लावें।

अथवा गुरु के चरण न ध्यावें, वाद विवाद में समय बितावें।
वचन कहें जो अतीव कठोर, भूल न पावें सिद्धी छोर।
प्राण की सिद्धी उस को होवे, शुभ लक्षण जो नर संजोवे।
प्रथम लक्षण जानो विश्वास, दूजा गुरु के ऊपर आस।
सम दृष्टि से सबन निहारे, इन्द्रियों का जो निग्रह धारे।

दो० मिताहार को जो करे, त्यागे सकल स्वाद।
उत्तम लक्षण वह धरे, हो सिद्धी निर्बाध ॥ ७१२ क

पद्मासन में बैठ कर, मन को करके शांत।
पवन साधना नर करे, पाय देश एकांत ॥ ७१२ ख

९०. नाड़ी शुद्धि प्राणायाम

पवन करे जिमि नाड़ी शोध, सर्व प्रथम हो उस का बोध।
प्राणायाम यह उत्तम जाना, "नाड़ी शुद्धि" नाम बखाना।
इस की क्रिया योगी जाने, प्राणायाम में चित्त जो आने।
दाहिने स्वर को रोके साध, बायें से ले श्वास अबाध।
यथाशक्ति तब श्वास को रोक, निकालें दाहिने से बेटोक।
पुनः बाहें से लेवे श्वास, रोके उसे सहित विश्वास।
बायें से तब छोड़े उसको, यह विधि है हितकर सब को।
इस को पुनः पुनः कर पावे, पूर्ण रहस्य गुरु बतलावे।

दो० प्राणायाम जो नर करे, रहे गुरु के पास।
सिद्धि को वह गहत है, इसमें हो विश्वास ॥ ७१३

एक साध के मन में आई, बात जो उस ने यों कह पाई।
"नाथ बतावें हम को ठीक, रोकें श्वास कितना निर्भीक।"
प्रभु जी दीना तब उपदेश, रेचक पूरक का निर्देश।

कुंभक का भी भेद बताया, सब की मात्रा को समझाया।
एक मात्रा में लें जो श्वास, चार में रोकें सहित विश्वास।
दो मात्रा में उस को छोड़ें, इस क्रम से हम मुख न मोड़ें।
इस क्रम से जो करत अभ्यास, शक्ति बढ़े राखो विश्वास।
कुंभक उस का सिद्ध हो जाये, "योगावस्था" को वह पाये।

दो० साध संगत ने सुनि कर, यह प्रभु की बात।
शंका कीनी साध इक, कर निज नम्र गात॥ ७१४

९१. योगावस्था का लक्षण

योगावस्था हमें बतलावें, उस के चिन्ह जो हो समझावें।
क्या गुण योग से उपजें नाथ, प्राणायाम करे जो साथ।
प्रभु जी कही साध से बात, प्रश्न उत्तम है तुमरा तात।
चिन्ह मिलें तो योगी जानो, चिन्ह बिना किमि नर पहचानो।
बिन सुगन्ध पराग वा धूल, वह जानो काग़ज़ का फूल।
प्राणायाम करे जब योगी, देह उस की हो सदा निरोगी।
उस की होवे सम सब काय, सुगन्धी एक अलौकिक आय।
कांति उस के भाल उपजाये, स्वर में उस के गौरव आये।
सब साधन में हो निष्पत्ति, योगावस्था की उत्पत्ति।

दो० योगावस्था जानिये, जिमि है कीन बखान।
जो करे अभ्यास नित, होय उसी को ज्ञान॥ ७१५ क

प्रातः काल मध्याह्न को, सूर्यास्त के पास।
मध्य रात्रि में जाग कर, करता जो अभ्यास॥ ७१५ ख

गुरु आज्ञा अनुरूप ही, करे जो चारों बार।
दो मास में उसे मिले, सिद्धि सब प्रकार॥ ७१५ ग,

योगी में गुण और भी आयें, वे भी कुछ हम यहां बतलायें।
सुंदर देह योग से पावे, प्राणायाम क्षुधा बढ़ावे।
प्राणायाम करे नर नार, बल वा साहस पाये अपार।
हृदय में प्रफुल्लित होय, प्राणायाम करे नर जोय।
वर्जनीय* कुछ अब बतलावें, जिन से योगी बच के जावें।
विघ्न कारी वे जानो सारी, त्याजनीय वा हैं दुःखकारी।
भला है उन से रहना दूर, कभी न सेवे हो मजबूर।
जग के दुःख से वह तर जावे, त्याज्य वस्तु जो न अपनावे।

दो० त्याज्य वस्तु को त्याग कर, ग्राह्य को सेवे साध।
भव वारिध से पार हो, साध प्राण निर्बाध ॥ ७१६

९२. योगी क्या त्यागे

खाटे रूखे तीखे भोजन, त्यागे प्राणायामी जो जन।
चोरी हिंसा और द्वेष, त्यागे योगी सकल अशेष।
भूखा रहना या बहु खाना, ऐसा नियम न भूल अपनाना।
नारिन संग जो करत आलाप, मग से भटक पाये संताप।
त्याग योग ये बात बताईं, अब सुनो कुछ और गोसाईं।
उपाय भी कुछ हैं बतलाये, जिन से योगी सिद्धि पाये।

९३. योगी क्या ग्रहण करे

दूध घी और मधुराहार, योगी का इन पै आधार।
सूक्ष्म भोजन योगी खावे, वस्त्र भी वह सूक्ष्म लावे।

दो० विरागी बन जग में रहे, मनन करे सिद्धांत।
कीर्तन प्रभु के नाम का, संगत साध एकान्त ॥ ७१७ क

*त्यागने योग्य बातें।

धृति क्षमा तप शौच को, और गुरु की सेव।
जीवन के शुभ नेम जो, सब पाले निर्भेव ॥ ७१७ ख

९४. कुम्भक की तीन अवस्था

यम नियम जब योगी पाले, निज प्राण को तभी संभाले।
साधे कुंभक योगी धीर, प्राणायामी बने शरीर।
धीरे धीरे कुंभक साधे, कुंभक साधे सभी आराधे।
तीन अवस्था कुंभक जानो, प्रथम मध्यम वा उत्तम मानो।
प्रथम में देह को आवे स्वेद, योगी पाये न इस से खेद।
निज स्वेद को वहीं सुखावे, मर्दन कर के उसे रचावे।
स्वेद को जो न देहिं रचावे, दुर्बलता उस देह में आवे।
बढ़ावे दीर्घ काल अभ्यास, घट में रुके योगी का श्वास।
मध्यम कुंभक तब सिद्ध होवे, दार्दुरवृत्ति को नर गोवे।

दो० दार्दुर वृत्ति जानिये, भूमि से उठ देह।
फिर भूमि पर आ पड़े, जानो बिन संदेह ॥ ७१८ क

पद्मासन में बैठ कर, नित्य करे अभ्यास।
दार्दुर वृत्ति तब भये, रुके जो भीतर श्वास ॥ ७१८ ख

श्वास रुके व देह उठ पावे, योगी उड़ आकाशीं जावे।
और आगे अभ्यास बढ़ावे, उत्तम अवस्था को नर पावे।
उस का उत्तम कुंभक जानो, प्राणायामी सिद्ध पहचानो।

९५. योग का प्रभाव

इक बात हम और बतावें, योगी का स्वभाव जतावें।
योगी कभी न त्यागे आस, विघ्नों से न होय हताश।

योगी को जब विघ्न व्यापें, उस को वे सब कुछ न जापें।
प्रभु में जिस की पूरण आस, नाम जपे उस का हर श्वास।
उस के सदा रहें प्रभु साथ, डोरी भक्त की प्रभु के हाथ।

दो० कभी न इसको भूलना, ओंकार का जाप।
विघ्न विनाशे सकल यह, मेटे सब संताप॥ ७१९

प्राणायाम करे नर जोई, बहुर जन्म न उस का होई।
उस के कर्म जो पूर्व अर्जित, अथवा काम जो कीने वर्जित।
प्राणायाम से सकल नशावें, योगी न फल उन का पावें।
घास पात जिमि अग्न जलावे, प्राणायाम तिमि पाप नशावे।
पाप नाशे फिर पुण्य भी मेटे, जन्म जन्म के कर्म समेटे।
जगमग ज्योति हृदय जब व्यापे, मोह का तम फिर क्यों संतापे।
पावे योगी सूक्ष्म दृष्टि, और सिद्धि हो दूर की दृष्टि।
कर सके परकाय प्रवेश, घट को त्याग बने सर्वेश।
इच्छाचारी वाणी सिद्ध, बने योगी हो प्राण समृद्ध।

दो० सुंदर वाणी श्रवण करि, प्रभु जी के उपदेश।
धन्य भयें सब सन्त जन, नाशा सकल कलेश॥ ७२०

९६. रोग विनाशी सरल प्राणायाम

एक साध ने पुनः उचारा, नाथ सुनो अब भाव हमारा।
प्राणायाम सुगम बतलावें, क्लेश देह के जिमि मिट जावें।
रोग की हानि हो जिमि नाथ, बतावें वह भी उस के साथ।
यह संसार चक्र है भारा, नूतन रोग का नित्य पसारा।
एक रोग से मुक्ति पावें, दूजा नर को आय दबावे।
ऐसा प्राणायाम बतावें, सकल रोग वश में हो पावें।

निर्मल जिस से होय शरीर, देह धारिन की मिटे जो पीर।
सुखी रहे जो करत अभ्यास, काम औषध का करे श्वास।

दो० श्वास साध कर नाथ जी, होवे देह निरोग।
ऐसी विधि हम से कहें, तुम जानो सब योग॥ ७२१ क

सुन कर उन की बात को, प्रभु भये प्रसन्न।
जग के हित के कारणे, प्रश्न तुम्हारा धन्य॥ ७२१ ख

प्रश्न तुम्हारा साधुन भाई, सकल जगत को है सुखदाई।
शिक्षा जो इस से ले पावे, सकल देह के रोग मिटावे।
सुखी रहे सदा वह तन से, प्रसन्न वदन आनन्दित मन से।
तालु मूल में जीभ लगाये, धीरे धीरे श्वास चलाये।
अमृत सिंचित होवें प्राण, नाशें इस विध रोग महान।
दूजी विधि इक और बतावें, देह का सुख जिस से जन पावें।
काक चोंच वत होंठ बनावो, जिह्वा को उन संग टिकावो।
कीजो प्राण पान मुख द्वारा, होवे अन्तर शुद्ध तुम्हारा।
देह का श्रम दाह सब नासे, जरा रोग भी न प्रकासे।

दो० काक चञ्चु से वायु को, पीवे प्रात व शाम।
निज कुण्डली में चित्त धर, क्षय का हो उपराम॥ ७२२

यह जो मैंने है बतलाया, शिव संहिता में सब कुछ आया।
शिव ने शिवा को था बतलाया, तुम को मैंने वही बताया।
शिव का योग यह जानों साईं, बसो जगत में कमल की नाईं।
आधि व्याधि न तुम को व्यापे, गरल भी अमृत सम हो जापे।
योगी सहे न भव की पीर, साधन योग से स्वस्थ शरीर।
प्राणायाम इक और बताऊं, रोग निवारण हित समझाऊं।

दांत को दांतों से लो दाब, प्राण को पीवो जिमि हो आब।
छः मास जो करे निरन्तर, सब रोगों से वह स्वतन्तर।

दो० रोग शोक जो जगत में, क्यों व्यापें उस देह।
जिह्वा द्वारा प्राण से, खींच अमृत जो लेय॥ ७२३

आप ने पूछी जो गोसाईं, बातें मैं वे सब बतलाईं।
मैं तो बात योग की जानूं, योग को ही भव औषध मानूं।
जग ने जब से योग विसारा, दुःख का तब से भया पसारा।
फिर जब योग जगत में आये, जनता पूरण सुख को पाये।
आधि व्याधि का होवे नाश, ज्ञान का जग में हो प्रकाश।
पाप ताप तब नाशें ऐसे, सूर्योदय पर उडुगण जैसे।
अब तो वेला बहुत विहाई, नित्य कर्म करें हम भाई।
सुन साधुन ने सुख को माना, ले आज्ञा सब कीन पयाना।

दो० गंगा तट पर नित्य प्रभु, करते योग प्रचार।
बहु जन आ कर पूछते, योग धर्म का सार॥ ७२४

९७. बीज मन्त्रों वा षट चक्रों का बोध।

इक दिन योगी कुछ वहां आये, अपनी अपनी शंका लाये।
प्रभु जी ने सब को बिठलाया, निज मन का उन भाव बताया।
अनुभव कथन किये प्रभु आगे, जिन को सुन प्रभु जी अनुरागे।
कहें प्रभु "जो धर्म को पाले, ध्यान योग में जीवन घाले।
प्रभु कृपा का वह अधिकारी, बाधा हरें उस की प्रभु सारी।
अन्तराय जो मग में आयें, निज किरपा से प्रभु दुरायें।
प्रभु को स्मरण करो सब काल, निज जन की जो गहें संभाल।"

इक योगी अनुभव बतलाया, देवों का प्रसंग चलाया।

दो० "देवों के स्वरूप जो, मैं देखूं घट मांहि।
तेज विचित्र सब धरें, प्रकटें किस विध आई॥" ७२५ क

सुन योगी के भाव को, कहा प्रभु समझाय।
योगी के घट में बसें, देव सकल ही आय॥ ७२५ ख

तैंतिस कोटि देव बखाने, योगी के घट सब ही आने।
योगी को हो उन का दर्शन, वे योगी का करते दर्शन।
उस घट देवों का हो वासा, नाम जपे जो प्रति श्वासा।
किरपा सद्गुरु की जब होवे, योगी उन के दर्शन गोवे।
वर्णूं एक रहस्य गोसाईं, आज बताऊं तुमरे ताईं।
देवों के जो रूप स्थापित, वे योगिन के घट प्रकाशित।
षट् मंजिल योगी घट जानो, उन में देवों को पहचानो।
सकल देव जो विश्व के मांहि, योगी के घट सबहि समांहि।
रूप विराट योगी घट अन्दर, उस के सम न जग में मन्दर।
सब मन्दिर उस की प्रतिछाया, गूढ़ रहस्य सतगुरु बतलाया।

दो० देवों के स्वरूप जो, तुम देखो घट मांहि।
सद्गुरु के प्रताप से, चक्रों में प्रकटांहि॥ ७२६

दीखें देव चक्रों के अन्दर, बने अनूपम उन के मन्दर।
पुष्पन मध्य वे सभी विराजें, बीज मन्त्र भी संग ही साजें।
मन्तर जाप करे जो साध, सिद्ध बने वह देव आराध।
सब मन्त्र जो हैं जग मांहि, योगी के घट प्रकट गोसांई।
सुन प्रभु की वाणी गूढ़, योगी बोला एक अमूढ़।
"नाथ मन्त्र की बात बताई, समझ हमारी में न आई।

कौन मन्त्र जो योगी जाने, घट में उन को किमि पहचाने।
हम तो मन्तर जानें एक, मन्त्र कौन से कथे अनेक।
दो० मन्त्रन का विस्तार जो, हमें बताओ नाथ।
परम योगी को पाय कर, हम हैं भये सनाथ॥ ७२७

प्रभु जी ने उस को समझाया, रूप मन्त्र का उसे बताया।
अक्षर ध्वनि को मन्त्र जानो, गगन मध्य यह व्यापक मानो।
उस ध्वनि के रूप अनेक, योगी श्रवण करे प्रत्येक।
देवन की यह ध्वनि कहावे, देव वाणी कह कोई पावे।
शिव डमरू भी उन्हें उचारे, विदुषन ने वे हैं प्रचारे।
अक्षरों के जो रूप बताये, योगी के घट सभी लिखाये।
स्वर व व्यञ्जन कहे अनेक, योगी घट हैं लिखे प्रत्येक।
दीखे जो अक्षर जिस ठाऊं, अब उस ठाँव का नाम बताऊं।
दो० सुन प्रभु की बात को, योगी भये हैरान।
अक्षर बोध रहस्यमय, प्रभु से पावें ज्ञान॥ ७२८

विशुद्ध चक्र

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, जानो, ऋ, ॠं, ऌ, ॡं, भी पहचानो*।
ए, ऐ, ओ, औ, ये भी मन्त्र, अं, अः भी वहां रहें स्वतन्त्र।
सोलह अक्षर जो गिन पायें, विशुद्ध चक्र में सभी समाये।
षोडष दल कमल है वहां पै, इक इक अक्षर इक इक दल पै।
देव रूप भगवान हैं मध्य में, देखे योगी यह तन मन में।
आत्म रूप यहां हैं देव, बोध पाये जो करता सेव।

अनाहत चक्र

अनाहत चक्र उस के नीचे, योगी देखे आंखन मीचे।

*ॠं, ॡं—ये क्रमशः ऋ और ऌ के दीर्घ रूप समझें।

द्वादश दल का कमल सुहाये, बारह अक्षर वहाँ लिख पाये।
क, ख, ग, घ, ङ, जो पांच, च, छ, ज, झ, ञ भी पाँच।
ट, ठ, दो इन संग मिलाये, द्वादश अक्षर वहां दिखलाये।

दो० अठाइ अक्षर जानिये, दोनों पद्मों मांझ।
साक्षी जिन को नर करे, ध्यान में प्रातः सांझ॥ ७२९

योगी नर जब ध्यान लगावे, सद्गुरु रूप हृदय में लावे।
देव व अक्षर प्रकटन वहीं, बिन गुरु अक्षर बोध न कहीं।
शिव शंकर का यही स्थान, शक्ति पाये जो करत ध्यान।

मणिपूर चक्र

इक चक्र तुम और पहचानो, लिखे नाभि में अक्षर जानो।
मणिपूर इस का है अभिधान, इस में अक्षर दश पहचान।
ड, ढ, ण ये तीनों अक्षर, त, थ, द, ध, न भी अक्षर।
प, फ उन संग और मिलावो, दश दल कमल वहां तुम पावो।
विष्णु रूप प्रकटें वहां देव, योगी जाने उस का भेव।
विष्णु का जो ध्यान धरावे, चतुर्भुजी स्वयं हो जावे।

दो० जग के पालन हार जो, विष्णु उन का नाम।
सर्वव्यापक रम रहे, प्रकटें योगी धाम॥ ७३०

स्वाधिष्ठान चक्र

और चक्र उस नीचे जानो, स्वाधिष्ठान नाम पहचानो।
षटदल वाला कमल है इस में, षट् अक्षर भी लिखें हैं जिस में।
ब, भ, म, य वर्ण की माला, र, ल भी उन संग संभाला।
ब्रह्मा का यहाँ मिलता भेद, रचे हैं जिस ने चारों वेद।
जानो सरस्वती उस के संगा, ललना जिमि हो पति के अंगा।

मूलाधार चक्र

मूलाधार अब लो तुम जान, ऋद्धि सिद्धि का जो है स्थान।
सब सिद्धि उस घट में आवे, मूलाधार जो चित्त लगावे।
इस चक्र में अक्षर चार, व, श, ष, स का है प्रचार।
इन मंत्रों को जो नर जाने, ऋद्धि सिद्धि का भेद पहचाने।

आज्ञा चक्र

दो० 'अ' से लेकर 'स' तलक, वर्ण माल भयी पूर्ण।
'ह' और 'क्ष' अब जान लो, ज्ञान मिले संपूर्ण ७३१ क

ज्ञान मिले सपूर्ण तब, आज्ञा चक्र निवास।
भृकुटी के मध्य जब, योगी धारे श्वास॥ ७३१ ख

देव लिपि के वर्ण ये, जग में हैं विख्यात।
ध्वनि से भिन्न न नाम है, रहस्यमयी यह बात॥ ७३१ ग

भृकुटी आज्ञा चक्र जानो, द्विदल का यह कमल पहचानो।
ईश्वर निराकर का स्थान, जानो तुम यह चक्र महान।
ह, क्ष अक्षर इस के अन्दर, हंस रूप बन विचरें सुंदर।
जो जन इस में ध्यान लगावे, हंस रूप वह पुरुष हो जावे।
प्रभु जी ने इस विध समझाया, पूरण अक्षर बोध कराया।
इक इक अक्षर मन्त्र रूपा, शक्ति जिस में परम अनूपा।
ध्यान में इन को जो जन लावे, सर्व सिद्धि को वह ही पावे।
शिव का यह सब कथा है योग, नरक, जगत से करत वियोग।
सुन प्रभु के वचन प्रत्यक्ष, योगी ध्यान में मग्न समक्ष।

दो० ध्यान मग्न भये योगी, निज निज इष्ट के रूप।
अन्तर्यामी नाथ जी, बैठे शांत स्वरूप॥ ७३२

संध्या वेला होने आया, नाथ ने सब को तभी उठाया।
आज्ञा ले कर सभी पधारे, प्रभु जी ने भी सब सत्कारे।
परस्पर कह चले वे सब ही, भोर भये फिर आवें तब ही।
प्रभु जी भी नितकर्महिं लागे, रात भयी फिर समाधि पागे।
महाप्रभु में चित्त लगाया, शाश्वत रूप उन्हीं का ध्याया।
क्षण में ही इमि रात विहानी, प्रात भयी फिर प्रभु ने जानी।
समाधि में जब योगी जावे, दीर्घ काल भी लघु हो पावे।
जागृत में ही काल की गणना, बिसरे तुरिया में यह मनना।

दो० हुआ प्रातःकाल जब, प्रभु उठे तत्काल।
नित कर्म सब उन किये, बैठे फिर मृग छाल॥ ७३३

९८. षट् चक्र सिद्धि का फल

मृग छाल पर प्रभु विराजे, वे ही योगी आ फिर साजे।
प्रभु जी को उन कीन दण्डौत, प्रभु निवारा उन्हें बहुत।
ईश रूप उन प्रभु को माना, प्रभु के गुण का कीन बखाना।
इक योगी तब विनय उचारी, "नाथ निवारो शंका भारी।
एक बात का चाहूं ज्ञान; ध्यान की महिमा कही महान।
चक्रों में जो ध्यान लगावे, कौन फल नर उस से पावे।
ध्यान चक्र का किमि महान, इस के और न क्यों समान।"
सुन प्रभु जी उस की शंका, नाथ ने मन में तब यह अंका।

दो० संग योगिन का है भया, खास चली है बात।
इन को भेद बताऊं, बैठ यहीं साक्षात॥ ७३४

१. मूलाधार सिद्धि का फल

प्रभु जी ने उन को बतलाया, षट् चक्रन का फल समझाया।

मूलाधार में होवे ध्यान, दार्दुरी वृत्ति पाये सुजान।
भूमि छोड़ आसन उठ पावे, योगी जब यह योग कमावे।
देह में उस के तेज समावे, जठराग्नि भी वर्धन पावे।
रोग रहित हो उस की काया, चतुर बुद्धि में ज्ञान समाया।
सर्व ज्ञाता वह हो जावे, भूत भविष्य का ज्ञान वह पावे।
मुख पै करे सरस्वती वास, जप से मन्त्र सिद्धि खास।
जरा मरण दुःख उस का नाशे, ध्यान मात्र से पाप विनाशे।

दो० ऐसे उत्तम ध्यान को, सिद्ध करे नर जोय।
जैसी इच्छा चित्त धरे, पूरण होवे सोय॥ ७३५ क

ब्रह्मचर्य की साधना, पूरी उसकी होय।
मूलाधारी देव में, चित्त लगावे जोय॥ ७३५ ख

गुरु प्रसादी चित्त बसे, मूलाधार में जब।
इस लोक परलोक की, पावे सिद्धि सब॥ ७३५ ग

स्वयंभुलिङ्ग* इस पद्म में, नित्य करो आराध।
वायु का प्रवेश होय, सुषुम्णा में निर्बाध॥ ७३५ घ

२. स्वाधिष्ठान सिद्धि का फल

स्वाधिष्ठान पद्म जो वरणा, जानो इस का रक्तिम वर्णा।
नित्य निरन्तर करे जो ध्यान, रूप-वती हो देह महान।
रोग रहित हो उस की काय, सब शास्त्रों का ज्ञान वह पाय।
अणिमा आदि सिद्धि साधे, इस चक्र को जो आराधे।
अमृतधार बढ़े तन माहिं, गगन मण्डल से जो स्रवाहिं।
अमरत्व पाना चाहे साध, स्वाधिष्ठान ले चक्र आराध।

*या गण नायक

मृत्यु वश में उस के आवे, इस चक्र में ध्यान लगावे।
रोग शोक सब होवें दूर, निर्भय हो वह विचरत शूर।

दो० निर्भय उस को जानिये, करे जो भय न लेश।
योग शक्ति को ग्रहण कर, विचरत जिमि महेश॥ ७३६

३. मणिपूर सिद्धि का फल

नाभि चक्र मणिपूर कहलावे, योगी ध्यान से सिद्धि पावे।
उस को सिद्ध होवे पाताल, जाने सब भूगर्भ का हाल।
स्वर्ण आदि वह सभी बनावे, सिद्धों के भी दर्शन पावे।
सब औषध का होवे ज्ञान, ऐसा योगी बने सुजान।
काल के वश में न वह आवे, त्याग देह परदेह अपनावे।
ईप्सा आवे जो उस मन में, पूरी होवे वह ही क्षण में।
ऐसा योगी कहां मिल पावे, त्याग देह को चाहे जब जावे।
बैठ समाधि में वह देखे, विचर विश्व में बहु कुछ पेखे।

दो० दुर्लभ ऐसा योगिजन, जिस के वश में प्राण।
उड़ अकाशीं जाये, पक्षी मुक्त समान॥ ७३७

४. अनाहत सिद्धि का फल

अनाहत चक्र हृदय में जानो, दृष्टादृष्ट* इस का फल मानो।
जग को कर नर वश वह पावे, हृदय में जो ध्यान लगावे।
अपूर्व ज्ञान भी वह नर पाता, हृदय में जो ध्यान लगाता।
दूर की बातें वह ले जान, दूर ध्वनि भी ले पहचान।
दृष्टि दूर श्रुति जो दूर, इस सिद्धि से पाये ज़रूर।
सिद्धों के वह दर्शन पावे, सत्संग देवों का हो जावे।

*इस लोक और परलोक का उत्तम फल

हृदय कमल का उत्तम ध्यान, इस का फल है कथा महान।
इस चक्र में ध्यान लगाना, देह की सुधि तुरन्त भुलाना।

दो० ऐसा ध्यान लगाय कर, होय समाधि लीन।
अनुत्तम फल नर पा सके, सुनो साध प्रवीन ॥ ७३८ क

महात्म्य इस का समझ लो, कथनी में न आये।
इस का फल तुम जान लो, योगी ईश समाये ॥ ७३८ ख

प्रभु की सुन कर इतनी वाणी, साध संगत ने मन अनुमानी।
पूर्ण योगी भाग्य से पाये, संशय जिस ने सकल मिटाये।
मिला है कैसा सुंदर अवसर, पावें ज्ञान हम इन से सुन कर।
विनय सबन ने मिल कर कीनी, सूक्ष्म प्रभु हे विद्या चीनी।
सुन सुन कर न मन भर पावे, मन चाहे अब सुनता जावे।
इस से अगला चक्र जैसा, नाथ बताओ है वह कैसा।
उस के ध्यान का फल क्या होवे, कौन शक्ति जो ध्याता गोवे।
उस चक्र का भेद बताओ, कृपा कर प्रभु हमें सुनाओ।

दो० कृपा कर अब दीजिये, आगे का सब ज्ञान।
ऐसा अवसर न मिले, जाना हम धर ध्यान ॥ ७३९

५. विशुद्ध चक्र की सिद्धि का फल

प्रभु जी ने तब वाणी उचारी, सन्तों पर कर कृपा भारी।
विशुद्ध चक्र का ध्यान बतावें, उस के फल को भी समझावें।
आत्मा का यहां पर है वास, धरो ध्यान तहं रोक श्वास।
कण्ठ में चक्र यह तुम मानो, मेरु दण्ड के भीतर जानों।
जिस का मन हो कण्ठ में लीन, चित्त हो उस का भय से हीन।

इतनी शक्ति वह पा जावे, कांपे जग जब क्रोध में आवे।
इस में संशय का न लेश, योगी पावे शक्ति विशेष।
चारों वेदों का जो ज्ञान, शीघ्र पावे योगी सुजान।
ऐसी शक्ति भी अपनावे, वज्र सम जिमि देह हो जावे।

दो० सहस्र वर्ष समाधि में, योगी करे व्यतीत।
इतना दीर्घ काल भी, क्षण सम हो प्रतीत॥ ७४०

६. आज्ञा चक्र की सिद्धि का फल

अब आज्ञा चक्र का फल जान, चक्र सभी का शिरोमन मान।
यदि पापों को चाहो धोना, मुक्त संस्कारों से जो होना।
त्रिवेणी में मन नहा के आवे, आज्ञा चक्र में जब जावे।
परम सिद्धि को वह नर पाता, इस चक्र में ध्यान जो लाता।
तुरिया अवस्था में वह जावे, आज्ञा में जो चित लगावे।
ईडा पिंगला का मध्य स्थान, वाराणसी जिस का अभिधान।
वहां पर विश्व नाथ हैं रहते, भक्त जनों के क्षेम को वहते।
इस चक्र की उपमा भारी, सब ऋषियों ने स्वयं उचारी।

दो० ध्यान धरे इस चक्र का, जीभ तालु को लाय।
स्रवे जो अमृत भाल से, रसना मध्य समाय॥ ७४१ क

नित्य करे अभ्यास जब, कोटि जन्म के पाप।
कट जायें उस योगी के, सद्गुरु के प्रताप॥ ७४१ ख

आज्ञा चक्र सर्वोत्तम मानो, सब चक्रन का फल यहां जानो।
खाते पीते चलते जोय, सहज ध्यान जो इस में होय।
नर के धुल जायें सब पाप, दूर रहे जग का संताप।
इस चक्र का स्वल्प भी ध्यान, सिद्धि दायक कथा महान।

वाराणसी जो प्राण त्यागे, बहुर जन्म में वह न पागे।
यह बात जो जगत प्रसिद्ध, इस को समझे योगी सिद्ध।
गीता शास्त्र को देखो खोल, और पढ़ो भगवान का बोल।
अन्त समय जो ध्यान लगावे, लौट न जीव जगत में आवे।

दो० शिव कथनी भी समझ लो, अन्त समय जब ध्यान।
आज्ञा चक्र मध्य जभी, योगी त्यागे प्राण॥ ७४२ क

ईश्वर में वह लीन हो, बहुर जगत न आये।
उस की उपमा है कथी, बूंद समुद्र जाये॥ ७४२ ख

सुन कर इस उपदेश को, साध भये कृतकृत्य।
चित्त में यही मनावें, संग मिले यह नित्य॥ ७४२ ग

साधु चित्त में यही मनावें, नित्य प्रभु के दर्शन पावें।
विसर्जित कीने प्रभु ने साध, मध्याह्न कर्म में लगे अबाध।
प्रभु समय की करें संभाल, जैसे वणिक संभाले माल।
यह शिक्षा हम प्रभु से पावें, कभी न समय व्यर्थ गवावें।
चार बार प्रभु अर्चन करते, सिमरन महाप्रभु चित्त धरते।
जगत गुरु निज गुरु को ध्याते, योग धर्म मर्याद निभाते।
प्रात मध्याह्न व सायंकाल, दिखावें प्रभु नियम को पाल।
अर्ध रात भी प्रभु जग पाते, महाप्रभु में ध्यान लगाते।

दो० महाप्रभु का ध्यान धर, उठ पाये जब प्रात।
साधु तब फिर आ गये, प्रभु से करने बात॥ ७४३

प्रभु ने स्वागत कर बिठलाये, श्री मुख से तब प्रभु फरमायें।
"साधसंगत हो मम प्रणाम, मन के कहो निज भाव तमाम।
प्राप्त कर सत्संग का अवसर, वर्णें योग धर्म हो तत्पर।

योग से बड़ कर न प्रसंग, योग मिले सत्पुरुष के संग।
सत्पुरुष मिले तो योग सिखावे, योगी ही सत्पुरुष कहावे।
योग से सत का होवे ज्ञान, मिले न सत बिन योग ध्यान।
योग से चित्त वृत्ति हो शांत, जन के मिटें क्लेश नितांत।
कथी अविद्या क्लेश की मूल, हरता योग अविद्या शूल।

दो० सद्गुरु योगी पाय कर, करता जन जब योग।
सकल अविद्या नष्ट हो, मिटता भव भय रोग॥ ७४४ क

सुन कर प्रभु की बात को, इक बोला तब साध।
योग धर्म सबसे बड़ा, मत यह है निर्बाध॥ ७४४ ख

योग रहस तुम ने समझाये, षट् चक्रन के भेद बताये।
मूलाधार स्वाधिष्ठान, मणिपूर वा अनाहत महान।
विशुद्ध वा आज्ञा का तुम ज्ञान, दीना हमें अधिकारी जान।
आगे का जो ज्ञान हो नाथ, वह बतला कर करो सनाथ।
योगी तो नर तब ही होवे, गुरु किरपा को जब वह गोवे।
सुनी प्रभु उस साध की बात, बोले वाणी सुन लो तात।

९९. सहस्रार पद्म विवरण

षट् चक्रन के ऊपर भाई, दशम द्वार परम सुखदाई।
सहस्रार भी उस का नाम, है यह देह में गुरु का धाम।

दो० सत्गुरु का यहां वास है, सहस्रार के मांहि।
उस का वर्णन अब सुनो, सिमर प्रभु मन मांहि॥ ७४५

सहस्रार को चक्र न मानो, सब चक्रों से ऊपर जानो।
सर्व शक्ति का यही भण्डार, महिमा इस की कथी अपार।

तालु ऊपर यह इस्थान, सहस्र दल का पद्म महान।
दल प्रत्येक शक्ति का पुंज, जगमग करता ज्योतिष कुंज।
इस के दर्शन विरला पावें, गुरु की दया वहां ले जावे।
ब्रह्म रन्ध्र में इस का द्वार, नाल सुषुम्णा भी आधार।
सुषुम्णा में जो प्राण चढ़ावे, ब्रह्म रन्ध्र के मग से जावे।
करे तब सहस्रार प्रवेश, पाये मोक्ष वा मिटे क्लेश।

दो० सहस्रार में जाय कर, रुके जो जन का श्वास।
सहस्र वर्ष पर्यन्त भी, काल का हो न भास॥ ७४६

सहस्रार में प्राण टिकावे, योगी जीवन मुक्ति पावे।
पारब्रह्म का पावे ज्ञान, शुद्ध चेतन का होवे भान।
सद्गुरु का वहां हो साक्षात, गुरु तत्व की समझे बात।
सद्गुरु पारब्रह्म भगवान, योगी को वहां होवे ज्ञान।
स्मरण करे जब सद्गुरु रूप, मन में प्रकटे ज्ञान अनूप।
सुन कर प्रभु की सुन्दर वाणी, भये हर्षित सब साध ज्ञानी।
गुरु महिमा को जब सुन पावें, गुरु शिष्यन के चित्त हर्षावें।
हर्षित हो इक साध उचारा, कीना प्रश्न जो उस मन न्यारा।

दो० प्रश्न साध ने यह किया, नाथ बताओ और।
सद्गुरु महिमा जो कथी, हम सुन पायें बहुर॥ ७४७

सद्गुरु महिमा नाथ उचारी, चित्त को लगी अति ही प्यारी।
सद्गुरु रूप का ध्यान बतावें, सहस्रार में जिमि लख पावें।
मनहर वाणी आप की नाथ, ज्ञानामृत से सिंचित साथ।
भक्ति रस के द्रव से पूरण, होवे बोध हमें सम्पूरण।
जगद्गुरु तुम हो मम नाथ, हम तुम से हैं भये सनाथ।
ऐसा ध्यान हमें बतलावें, दशम द्वार में सद्गुरु पावें।

मेरुदण्ड सोपान बना कर, उस मग अपना श्वास चढ़ाकर।
ब्रह्म रन्ध्र में कर प्रवेश, पहुंचें वहां जहाँ गुरु सर्वेश।

दो० सद्गुरु चरण ध्याय कर, विसरे देह की सुध।
ऐसा योग बताइये, युक्त हो जैसे बुध ॥ ७४८ क

जिमि युक्त हो बुध प्रभु, मन हो उस में लीन।
मन बुद्धि के मेल से, योगी बनूं प्रवीन ॥ ७४८ ख

सद्गुरु के प्रताप से, ऐसा योग कमाऊं।
इस देह को त्याग कर, बहुर जन्म न पाऊं ॥ ७४८ ग

प्रभु ने सुनी साध की वाणी, झलके जिस में मति कल्याणी।
योग से जो मोक्ष को चाहे, वह साधक प्रभु कृपा पाये।
कृपा कर प्रभु बोले वाणी, साध प्रिय तव मति कल्याणी।
ऐसी मति है प्रभु ने दीनी, मुक्ति है जिस उत्तम चीनी।
रूप गुरु का विरला जाने, अथवा योगि सिद्ध पहचाने।
गुरु कृपा से दृष्टि जो आवे, चर्म चक्षु न देखन पावे।
दिव्य चक्षु जब सद्गुरु देवे, रूप सनातन भी प्रकटेवे।
दिव दृष्टि थी कृष्ण ने दीनी, अर्जुन पर थी कृपा कीन्ही।

दो० दिव्य चक्षु जब कृष्ण ने, दीने अर्जुन ताँहि।
प्रकटा रूप विराट तब, जामें विश्व समाँहि ॥ ७४९ क

बुद्धि के पट खुल गये, चानन भया अनूप।
वही कृष्ण का रूप जो, भया विराट स्वरूप ॥ ७४९ ख

सहस्रार के मध्य में, पीठ मनोहर एक।
उसी आसन पर बैठे, गुरु जी जन की टेक ॥ ७४९ ग

सद्गुरु को उस पीठ पै देखो, पादुक सन्मुख उन के पेखो।
दिव्य माला गुरु जी ने धारी, वर्ण अलौकिक गन्ध है भारी।
एक ज्योति का करूं बखान, दीखे जिस में तेज महान।
सद्गुरु चरण कमल जो ध्यावे, उदित भयी वह ज्योति लखावे।
सुन्दर सद्गुरु चरण जो भाई, अंगुष्ट मृदु उन के सुखदाई।
नख से दिव्य ज्योति प्रकाशे, दर्शन कर सब भ्रम भय नाशे।
इक क्षण उस ज्योति का ध्यान, करता जीव को देव समान।
निश दिन जो दर्शन कर पावे, उस का आवागमन नशावे।

दो० गुरु नख ज्योति चन्द्रमा, शिष्य मन भये चकोर।
अहर्निश जो निरखत रहे, जन्म न पाये बहुर॥ ७५०

आवागमन में बहुर न आवे, गुरु नख जोत को जो लख पावे।
नख से शिख तक कर गुरु दर्शन, मन से करे प्रत्यंग स्पर्शन।
पग से शिख तक मनहिं ले जाये, शिख से पुनः पगहिं उतराये।
गुरु के अंग अंग की पूजा, मन से करे न कारज दूजा।
ऐसा शिष्य जो जग में होय, गुरु किरपा का पात्र सोय।
स्थूल रूप में गुरु को ध्यावे, स्थूल में सूक्ष्म भी लख पावे।
सूक्ष्म स्थूल में इमि समावे, सूरज से जिमि ज्योति आवे।
दिव्य तेज सद्गुरु का रूप, सहस्रार में परम अनूप।

दो० दिव्य रूप हैं सद्गुरु, सहस्रार में वास।
गगन चढ़े जो योग से, करे गुरु सह वास॥ ७५१ क

इतना नाथ उचार कर, भये ध्यान में लीन।
महाप्रभु वारिध भये, रामलाल मन मीन॥ ७५१ ख

साध संगत ने देख कर, लगा प्रभु का ध्यान।
कर प्रणाम उठ चल दिये, महिमा करत बखान॥ ७५१ ग

समाधि से जब प्रभु उठे, था भया भिन सार।
उठ कर वे तब चल दिये, ऊपर गंग की धार ॥ ७५१ घ

चलते चलते प्रभु गये, ऋषि केश के मांहि।
उससे फिर आगे चले, ब्रह्म पुरी में आँहि ॥ ७५१ ङ

१००. ब्रह्म पुरी में हीरा गिरी से मिलाप।

मकर मास का समय सुहाना, ब्रह्म पुरी में प्रभु का आना।
सुंदर ऋतु अतीव सुहायी, मनहर छटा गंग मन भायी।
जग से अतीव दूर प्रदेश, कोलाहल का जहां न लेश।
निरन्तर एक धुनि सुन पावे, "हर हर" की जो रटन लगावे।
करत अनादि से धुनी अपार, बहती गंग की यह जलधार।
इस धुनी में चित्त रमाय, असंख्य साध गये ब्रह्म समाय।
उन के तप से पावन देश, यह गंगा का पूत प्रदेश।
ब्रह्मपुरी है जिस का नाम, मानो स्वयं ब्रह्म का धाम।

दो० ब्रह्म धाम उस पहुंचे, पर ब्रह्म अब आन।
जो तपी वहां वसत थे, लीना सब ने जान ॥ ७५२ क

हीरागिरि इक मुनि बसत, गंगा तट के पास।
प्रभु प्रति उस साध मन, प्रीत जगी थी खास ॥ ७५२ ख

हीरागिरि तब चल कर आया, प्रभु ने आसन जहां लगाया।
प्रभु ने आदर से बिठलाया, हीरागिरि निज नाम बताया।
प्रभु को ब्रह्मचारी कह पाता, वयो-वृद्ध था प्रेम जताता।
आदर से प्रभु उसे बुलाते, उस के आसन पर भी जाते।
बहुत प्रातः वह उठ जाता, "हर हर गंगे" नाद लगाता।

प्रभु जी जभी नाद को सुनते, "कैलाश पति हर हर" उचरते।
दोनों तभी नदी पै जावें, नित्य कर्म में प्रात बितावें।
कंद मूल भी ढूंढ के लावें, हीरागिरि के आसन आवें।
मिल वहां वे उन्हें पकावें, दिन का भोजन तब कर पावें।

दो० मिल कर भोजन वे करें, ज्ञान चर्चा हो संग।
हीरागिरि के मन बसत, प्रभु प्रीति का रंग॥ ७५३

अति प्रीति से कंद पकावे, प्रभु को प्रेम से भोग लगावे।
हर दम रहन चाहे उन संग, ऐसा था प्रभु प्रीति का रंग।
बात प्रभु की उसे सुहावे, योग भक्ति की शिक्षा पावे।
रूप प्रभु का लगता प्यारा, करत लेश न आंख से न्यारा।
दीर्घ जीवन वनहिं बिताया, अन्त प्रभु उस को अपनाया।
उस को मार्ग ही दिखलाने, ब्रह्म पुरी प्रभु चरण थे आने।
सब में सम दृष्टि को लाना, उत्तम योग है यह बखाना।
समत्व योग यह कृष्ण सिखाया, प्रभु ने भी उस को अपनाया।

दो० उस की शिक्षा देन हित, पधारे प्रभु उस देश।
दोष भक्त का दूर हो, प्रभु जी के उपदेश॥ ७५४

हीरागिरि का योग अधूरा, आये प्रभु करने वह पूरा।
भाव की शुद्धि देखें जिस में, हों सहायी आ कर क्षण में।
रे मन मार्ग शुभ अपनाओ, प्रभु से पूर्ण योग को पाओ।
उस वन में इक योगी रहता, जो कृपालानन्द कहलाता।
उस का गुण प्रभु खुद बखाना, उस ने भी प्रभु को पहचाना।
अवधूतवृत्ति विचरत वन में, मिलता किसी को न इक थल में।
उस की थी इक शिष्या मेम, जिस ने पाले कठिन थे नेम।
उस मेम की कथा लो जान, जिस से मिले योग का ज्ञान।

१०१. अवधूत कृपालानन्द तथा उस की शिष्या मेम का प्रसंग ।

दो० एक बार की बात है, मंसूरी के मांझ ।
आये अंगल दंपती, भ्रमणार्थ इक सांझ ॥ ७५५ क

पत्नी देखा साध इक, बैठा ध्यान लगाय ।
उसी पास वह जा टिकी, साहब चक्कर लाय ॥ ७५५ ख

ध्यान से योगी जब उठ पाया, मेम ने चरणि शीश झुकाया ।
योगी आशिश देय उचारा, "कारज बोलो क्या तुम्हारा ।"
कहा मेम ने "यह मैं चाहूं, जो तुम करते हो वह पाऊं ।
ईश्वर में जो लिव तव लागी, मैं भी उस की हूं अनुरागी ।
कर किरपा मुझ को सिखलाओ, मुझ को योग की विधि बताओ ।
योगी मन में किरपा लायी, समाधि में वह मेम बिठायी ।
सुन्न समाधी उस ने पायी, देह की सकल सुध बिसरायी ।
उस का पति लौट जभी आया, योगी ने तब उसे उठाया ।

दो० देख मेम ने ध्यान में, कई अलौकिक लोक ।
घर गृहस्थी मांझ उसे, रहा न कुछ भी शौक ॥ ७५६

मेम ने इच्छा कह सुनायी, "वन बसूं करूं योग कमायी ।
पति देव तुम लौट के जाओ, मुझ से अब तलाक को पाओ ।"
साहब ने तब बहु समझाया, टस से मस ना उस को पाया ।
जगत में क्यों रमे वह नार, देख पाये जिस दृश्य अपार ।
जब हार वह साहब सिधारा, निज मुख से तब साध उचारा ।
"अब तुम ब्रह्मपुरी को जावो, कृपालानन्द के दर्शन पावो ।
उस से हो तेरा कल्याण, शीघ्र जाओ यह आज्ञा मान ।"

सुन कर योगी की यह वाणी, हुई मेम को बहुत ग्लानी।
दो० मन में ग्लानी मान कर, बैठी होय हताश।
गुरु जाने को कहत है, पूजी जिससे आश॥ ७५७
साधु ने उस को समझाया, उस का हित उस को जतलाया।
कृपालानन्द का पता बताया, तभी मेम को विदा कराया।
मंसूरी से तुरत सिधारी, हरिद्वार में आय पधारी।
वहां से ऋषिकेश को चाली, ब्रह्म पुरी के वन फिर आली।
मग में बहुत कष्ट उस पाये, अपने जीवन पर पछताये।
बैठ अकेली वन में रोती, देख अंधेरा धीरज खोती।
योग धर्म खाण्डे की धार, सत्य कथी है किसी उचार।
कृपालानन्द को कैसे पावे, उस की बुद्धि में नहीं आवे।
दो० एक ठौर पै ना रहे, ऐसा जो अवधूत।
उस से मिलना कठिन है, लाख करें करतूत॥ ७५८
होय निराश मेम थी रोती, सुन आहट उस ने तब होती।
डरी शेर है खाने आया, श्वास रुका वा होश नसाया।
अवधूत वहाँ आन पधारा, मेम को उस ने कह उचारा।
"कौन हो तुम कहां से आई, वन घोर में किमी खो पाई।"
देख मेम ने पकड़े चरणा, अपना हाल अभागिन वरणा।
"बहुत कष्ट मैं हूं सह पायी, मंसूरी से चल कर आयी।"
निज चरणों में देय इस्थान, साथ राखो मुझ को भगवान।
बात सुनी उस की यह सारी, कृपालानन्द ने गिरा उचारी।
दो० "मंसूरी के साध ने, अपने सर से टाल।
इस कठिन से काम को, दीना मुझ पै डाल॥ ७५९
हम तो रहें न एक स्थान, तुमरा हो किस विध कल्याण।

तुम वहीं पै लौट के जाओ, उस साध से योग को पाओ।
जब अवधूत वचन कह पाये, प्राण अबला के लब पै आये।
उस ने छोड़ा था घर बार, मिला न योगी का भी द्वार।
हो हताश फिर चरणों लागी, प्रभु का नाम सिमरणे लागी।
कृपालानन्द दया मन आयी, ध्यान दीक्षा उसे दे पायी।
वहीं पै उसे ध्यान में डाल, स्वयं चले अवधूत दयाल।
आ कर नित्य वहीं मिल जाते, निज शिष्या को योग सिखाते।

दो० पूरण इच्छा मेम की, पा कर योगी पूर्ण।
जब तक योगी ना मिले, साध रहे अपूर्ण॥ ७६०

१०२. अवधूत कृपालानन्द की श्री प्रभु जी से भेंट।

कृपालानन्द जभी यह जाना, प्रभु पधारे हैं उस स्थाना।
उन के दर्शन हित नित आता, कन्द मूल भोजन वह पाता।
प्राकृत जन व सिद्ध जो आवें, प्रभु भोजन को सब जन पावें।
कृपालानन्द प्रभु पहचाना, प्रभु ने भी अवधूत को जाना।
पूरण पूरण को पहचाने, इसी तथ्य को वेद बखाने।
एक भी दिन न ऐसा जावे, जब अवधूत न दर्शन पावे।
गगन मार्ग से कभी सिधावे, या मस्ती में चलता आवे।
होता कृतकृत दर्शन कर के, भोग देय प्रभु उस को उठ के।

दो० भोग प्रभु सें पाय कर, मन से प्रभु सत्कार।
कृपालानन्द चल जाता, लिया नेम यह धार॥ ७६१

हीरागिरि न बात पहचाने, भोजन का वह भूखा माने।
कैसा लोभी है अवधूत, उस के हृदय बसा यह भूत।
उपजा उस के मन में द्वेष, समझायें प्रभु न मिटे क्लेश।

अविद्या का स्वभाव सुभारी, नाशे जन की बुद्धी सारी।
अविद्या हि अभिमान बढ़ावे, द्वेष भाव को वह उपजावे।
नेत्र हीन जिमि चान्द न देखे, अविद्या ग्रस्त सत्य न पेखे।
मन में सोच सोच दुःख पावे, भोजन हेतु यहां वह आवे।
अब वहां ही क्यों नहीं जाता, जहां से पहले वह था खाता।
वन में कन्द मूल बहुतेरे, फिर आ खाता क्यों यह मेरे।

दो० उस के मन की जान कर, देते प्रभु उपदेश।
कोइ न किसी का खाता, त्यागो व्यर्थ क्लेश॥ ७६२ क

जो है जिसके भाग्य में, खाता है वह आय।
मोह में पड़ना व्यर्थ है, कोइ न किसी का खाय॥ ७६२ ख

अपना ही सब खात हैं, अपना ही सब लेय।
शोच व्यर्थ का त्याग दो, न को किसी को देय॥ ७६२ ग

जहाँ पै जिस का भाग है, लेने को वह जाय।
शोक व्यर्थ का त्याग दो, तेरा खान न आय॥ ७६२ घ

जो जहां कुछ भी है खाता, अपना ही वह भाग है पाता।
ईश्वर ने यह सृष्टि रचायी, भाल पै रोज़ी भी लिख पायी।
भूखा न नर यहां रह पाये, ईश्वर ने बहु भोग बनाये।
बांट के नर न जो है खाये, व्यर्थ जगत मे क्लेश बढ़ाये।
जोड़ जोड़ के जो मर जाये, सद्गती को नहीं वह पाये।
गीता में भगवान बताया, अपने हित ही जिस पकवाया।
और बांट के जो ना खाता, देव द्रोही वह कहलाता।
केवल अपने लिए पकाना, वह तो मान पाप है खाना।
पापी नर की पाप कमायी, किमि हो उस को वह सुखदायी।

दो० पर हित के ही कारणे, अन्न पकावे जोय।
अन्न दान को करत ही, सद्गति पावे सोय॥ ७६३

जिस के भाग्य वदा जो भाग, उस में हमरा क्यों अनुराग।
होय कृपण जो उसे बबावे, दण्ड विधाता से वह पावे।
धन धान्य से होवे वञ्चित, नाशे सब जो कीना सञ्चित।
धनी सदैव वही रह पावे, दानी बन जो नाम कमावे।
यह जान कर साध प्रवीन, चिन्ता छोड़ो मत हो दीन।
अवधूत हम से जो ले जाय, वास्तव में निज भाग है पाय।
आय द्वार पै जो मुड़ जाय, अपने पाप हमें दे पाय।
और यदी कुछ ले कर जाता, अपने पुण्य बाँट कें जाता।
धर्म सनातन यही बताये, द्वार से को न खाली जाये।

दो० सुन प्रभु की बात तब, हीरागिरि था मौन।
सत्य सनातन बात का, उत्तर देवे कौन॥ ७६४ क

लेकिन मन के द्वेष पर, किमि प्रभावी होय।
मन को वश में वह करे, पूरण योगी जोय॥ ७६४ ख

हीरागिरि मन मांहि विचारे, वचन प्रभु के सिमरे सारे।
द्वेष भाव को त्यागन चाहे, दानी बन कर धर्म कमाये।
द्वेष भाव फिर होवे हावी, मनु प्रबल थी उस पै भावी।
मन में तब वह मता पकावे, कृपालानन्द को मजा चखावे।
मूरख वह हम को है जाने, वस्तु हमारी अपनी माने।
इक दो दिन की बात है और, वह तो नित्य आये इस ठौर।
चले गा अब यह कब तक काम, इस का करूं मैं काम तमाम।
हम सुखी फिर यहां रह पायें, ध्यान भजन में समय लगायें।

दो० सोच समझ सब बात को, गया दूर इक रात।
लाये पात धतूर के, साग बनाया प्रात ॥ ७६५ क

चुपके चुपके सब किया, प्रभु न लेवें जान।
नित्य कर्म से लौट कर, बैठा हो परिशान ॥ ७६५ ख

प्रभु जी ने कन्द मूल पकाय, इतने में अवधूत भी आय।
तीनों जने थे बैठे खान, लीना था अवधूत ने जान।
मांगा साग जो गिरि पकाया, भाग तीन में वह करवाया।
भोग नया यह देखा आज, प्रभु जी बैठे चुप्पी साज।
हीरागिरि मन में सकुचाये, न ही खाये न छोड़ा जाये।
वही भोग अवधूत लगाया, स्वादिष्ट भोग उसे बताता।
प्रभु जी ने भी भोग लगाया, हीरागिरि ने डर कर खाया।
पड़ा तीन दिन वह बेहोश, अवधूत के मन लेश न रोष।

दो० प्रभु जी पर उस साग का, हुआ न कुछ प्रभाव।
योग धर्म जब मन बसे, बिगड़ पाये न भाव ॥ ७६६ क

खाई खोदे और हित, कुएं गिरे वह आप।
रे मन इस से सीख ले, छोड़ सकल संताप ॥ ७६६ ख

दिन तीन में होश उस पायी, प्रभु सेवा उस की कर पायी।
कृपालानन्द फिर आ पधारा, हीरागिरि मन रोष था भारा।
उसे देख के वचन उचारा, "बदला लूंगा इस से सारा।"
राग द्वेष का मन जब वास, नर नहीं पाये सुख का श्वास।
बैठ अवधूत ध्यान लगाय, गिरि ने सोचा एक उपाय।
काला मुख इस का कर पाऊं, बदला इस का खूब चुकाऊं।
स्याही हाथ में जभी लगाय, चला वह अवसर सुन्दर पाय।

उसे ततीये ने तब काटा, आगे चलने से वह हाटा।
मानो प्रभु की किरपा सारी, उस से क्षति जो हुई न भारी।

दो० होय प्रभु की जब दया, नर सें हो न पाप।
पथ जब उलटा वह गहे, रोकें प्रभु आ आप॥ ७६७

हीरागिरि पर प्रभु का हाथ, रहते थे जो उस के साथ।
उन को था ना वह पहचाने, बात इसी से वह ना माने।
जिमि अर्जुन ने कृष्ण न जाना, तिमि गिरी नहीं प्रभु पहचाना।
प्रभु की बात न उस ने मानी, तभी भयी थी उस की हानी।
मन में गिरी यही उल्लेखे, कृपालानन्द नीचा देखे।
कृपालानन्द योगी भारी, उस की महिमा प्रभु उच्चारी।
शिष्या भी जिस सिद्ध बनायी, जिस की कीन थी प्रभु बढ़ायी।
उस की घटना प्रभु उल्लेखी, जो निज आंखों से थी देखी।

दो० प्रभु बैठे थे इक दिवस, हीरागिरि के पास।
मेम का सूक्षम दीखा, उतर रहा आकास॥ ७६८

दिव्य पुष्प था उस के सर पर, उतरी वहां जहाँ थे प्रभु वर।
प्रभु ने कहा "कहां से आई, दिव पुष्प यह कहां से लाई।"
कीना मेम प्रभु को प्रणाम,, वाणी बोली अति अभिराम।
"नाग लोक में मैं जा पाई, उस राजा को मिल कर आई।
पुरजन भी मैं वहां के देख, क्रीड़ा करते बहु विध पेख।
चलते चलते यह ले आई, देख अलौकिक सुन्दरताई।"
प्रभु चरणी इक पुष्प चढ़ाया, अपना मग फिर उस अपनाया।
प्रभु ने पुष्प गिरी को दीना, कथन मेम का भी सब कीना।

दो० बिना योग की दृष्टि के, न दीखे सूक्ष्म रूप।

हीरागिरि हैरान था, बात सुनी जब गूप ॥ ७६९

प्रभु ने उस को फिर समझाया, द्वेष भाव से उसे हटाया।
"योगी करे न किसी से राग, द्वेष का भी वह करत त्याग।
कृपालानन्द योगी जानो, क्यों कर उस को शत्रू मानो।
योगी से जो करत प्रीत, हर दम होती उस की जीत।
योगी को नर गुरु कर जाने, अथवा ईश रूप पहचाने।
उस प्रति वह श्रद्धा लावे, संशय मन के सभी दुरावे।
योगी रहता सरल स्वभाव, छल छिद्र का सदैव अभाव।
उस के प्रति जो वैर कमावे, वह नर हर दम मुख की खावे।"

दो० इस विध उसे बताय कर, आसन लौटे नाथ।
हीरागिरि का संशय, रहा उसी के साथ ॥ ७७०

निज को भी वह योगी माने, वा तपस्वी संग में जाने।
कृपालानन्द में न बढ़ायी, ब्रह्मचारी ने जो दिखायी।
यदि होवे कुछ उस में शक्ति, भोजन में फिर क्यों अनुरक्ति।
तपी नहीं वह मुझ से बढ़कर, स्नान ध्यान में है न तत्पर।
चकर लगाना उस का काम, परशान करे आ दिन तमाम।
ब्रह्मचारी जब यहाँ पधारे, आ धमके वह मेरे द्वारे।
योगी यदि है कोई महान, देवें शक्ति का कुछ प्रमाण।
परीक्षा उस की अब कर पाऊं, भाण्डा उस का फोड़ दिखाऊं।

दो० इस विध मन में लाय कर, करता सोच विचार।
अवसर किस दिन पा सकूं, होवे उस की हार ॥ ७७१

ऐसा अवसर इक दिन आया, जिस का उस ने लाभ उठाया।
वह बैठ के प्रभु के आसन, ज्ञान कथा था सुनता ला मन।
कृपालानन्द उधर से आया, अपनी शिष्या भी वह लाया।

प्रभु दर्शन हित दोनों आये, उन को देख प्रभु मुस्काये।
मान सहित उस को बिठलाया, मेम प्रभु को शीश झुकाया।
प्रभु ने मेम से कह उचारा, "क्या सफल है योग तुम्हारा।"
"धन्य भयी हूं मैं महाराज, योगी सद्गुरु पा सिरताज।
इन की किरपा मुझ पर भारी, योग की शिक्षा दीनी सारी।
लोक लोकान्त में मैं जाऊं, दिव दर्शन मैं क्षण में पाऊं।"

दो० मेम वचन यह बोल कर, मग्न भयी तत्काल।
कृपालानन्द स्तुति करत, प्रभु जी की उस काल॥ ७७२

बहु विध उस ने अस्तुत कीनी, महिमा प्रभु जी की कह दीनी।
जो है काक भुषुण्ड लिखाया, वह सब उस ने मुख से गाया।
जो जो उस ध्यान में देखी, वह भी प्रभु की महिम उलेखी।
प्रभु जी का जिमि हुआ अवतार, उस ने सकल बखाना डार।
जिन जनों पर प्रभु की दाया, वह भी उस ने सब कुछ गाया।
लीला बालपने जो कीनी, आशिष बुढ़िया को जो दीनी।
हरिहरानन्द का इतिहास, सवाईं करतब कीने खास।
रामरती को जिमि उबारा, मारग वाम को जिमि पछारा।

दो० सिगरी लीला नाथ की, अस्तुत कर सुनाई।
बैठी मेम समाधि में, गिरी समझ न पाई॥ ७७३

सुन लिया अवधूत जो गाया, प्रभु निज मुख से तब फरमाया।
भाग्यशाली अवधूत भाई, तुम ने कीनी योग कमाई।
योग बहुत है मुझ को प्यारा, योग बिना जग बन्धन भारा।
योग पाय नर जग से तरता, बहु जन्म के पाप संहरता।
योग से आतम शक्ति पाता, दुर्बल मन को सबल बनाता।
सिद्धि सिगरी योग से आवे, मुक्ति को नर योग से पावे।

योग सनातन धर्म पहचानो, सब गुण इस में ही तुम मानो।
योगी सद्गुरु जो पा जाये, मुक्ति उस के हाथ में आये।

दो० तुम योगी को पाय कर, योगिन है यह बाल।
योग पांय गुरु योगि से, तिमि सकल नर नार॥ ७७४ क

सुन प्रभु की बात को, फुरा गिरि मन भाव।
देखूं इस की शक्ति को, यह मेरे मन चाव॥ ७७४ ख

गिरि ने मन में मता पकाया, कृपालानन्द को कह सुनाया।
तुम तो योगिराज महाराज, करो मेरा ज़रा सा काज।
सन्मुख यही शिला जो पाओ, मम आसन इसे पहुंचाओ।
इङ्गित था जिस शिल को कीना, सौ मन से थी वह ना हीना।
प्रभु जी हीरागिरि को देखें, समुचित ना यह बात उलेखें।
कृपालानन्द ने प्रभु ध्याया, शिष्या को तब पास बुलाया।
आज्ञा उस को सकल सुनाई, मन में शिष्या के सब आई।
उत्तम शिष्या उस को माना, जिस ने गुरु का भाव पहचाना।

दो० कर दोनों निज जोड़ कर, गुरु पग शीश झुकाय।
परिक्रमा गुरु की करि, बैठी शिल पै जाय॥ ७७५

बैठ वहां उस साँस चढ़ाया, अद्भुत चमत्कार दिखलाया।
तन मेम का उड़ा आकाश, जूं ही चढ़ाया उस ने श्वास।
इक अनोखी बात दिख पायी; शिल भी संग आकाशी धाई।
धर शिला फिर लौट के आई, धूली गुरु पग मस्तक लाई।
हीरागिरि ने मानी हार, देख योगी की अद्भुत कार।
सांझ समय तब होने आया, हीरागिरि स्वस्थान सिधाया।
निज गुरु संग मेम सीधाई, रात भई प्रभु समाधि लाई।

निर्विकल्प समाधि में लीन, निज स्वरूप सागर मन मीन।

दो० बिताय रात समाधि में, जब उठे प्रभु प्रात।
"हर हर गंगे" श्रवण करि, आये गंगा मात ॥ ७७६ क

गंगा तट पर जाय कर, कीने कर्म प्रात।
वही गिरि तब बात कही, जो भई कल रात ॥ ७७६ ख

हीरागिरि कहा "नाथ प्यारे, सत्य वचन तुम सकल उचारे।
योगी को ना नर पहचाने, सिद्ध जन ही सिद्ध को जाने।
कृपालानन्द तुम को जाना, तुम कृपालानन्द पहचाना।
क्षमा करो अपराध हमारे, वचन तुम्हारे न सत्कारे।
सकल वचन अब हिरदय धारूं, द्वेष भाव को मन में मारूं।
द्वेष भाव ही पाप के मूल, योग मारग में बिखरे शूल।
प्रकट भयें जब मन में पल भर, योग मार्ग पै चलना दूभर।
तुमरी बात का राखूं ध्यान, त्यागूं मत्सर और अभिमान।

दो० तव वचन को मान कर, करूं योग मन लाय।
किस विध अस्तुत मैं करूं, की कृपा तुम आय ॥ ७७७

मैंने तुम को बालक जाना, और वृद्ध था निज को माना।
यह थी मेरी सरासर भूल, योग बड़प्पन का है मूल।
योग करे सो उन्नति पाये, योगी जग में बड़ा कहाये।
योगी उच्चगती को पाता, शास्त्र यही रहस्य बतलाता।
सनक सनन्दन का इतिहास, बाल रूप में पूज्य थे खास।
शुक देव की महिम को जानें, बालपने में तत्व बखानें।
गर्व को मन में अब न धारूं, अहंकार के भाव निकारूं।
तेरी मूरत राखूं मन में, वचन भुलाऊं न किसी क्षण में।

दो० इस विध वचन उचार कर, साध झुकाया भाल।
प्रभु तब मनहिं विचारा, कहीं चलें इस काल ॥ ७७८

जिस कार्य हित प्रभु ले आये, पूरण कारज वह कर पाये।
साधु ने है योग पहचाना, भ्रान्त मती को दीनि दुराना।
प्रभु जी उठ तभी कहीं चाले, निज कमण्डुल हाथ संभाले।
दिशा गंग की उन अपनाई, हरिद्वार की डग ले पाई।
लक्ष्मण झूला मग में आया, आगे चल ऋषिकेश लखाया।
प्रभु जी रुके नहीं उस ठांव, आगे चले ले हरि का नांव।
हरिद्वार में आ कर देखा, मेल भरा प्रभु वहां उलेखा।
यह था समय कुंभ का भारी, हो पायी थी बहुत तयारी।

१०३. हरिद्वार में कुम्भ के अवसर पर।

दो० चहल पहल को देख कर, प्रभु के भी मन आइ।
अनुपम मिला है अवसर, देख चलें वह भाइ ॥ ७७९ क

रात्री बीती बहुत थी, श्रान्त भये थे नाथ।
इक मन्दिर में जाय कर, लेट गये इक हाथ ॥ ७७९ ख

प्रात भयी जगपति थे जागे, आ कर बहिर गये कुछ आगे।
छटा अनुपम गंग की देख, जनता की बहु भीड़ भी पेख।
नित्य कर्म से निपटे स्वामी, ध्यान मग्न तब अन्तर्यामी।
खुली आंख जनता दिख पायी, दर्शन हित योगी के आयी।
थे सब लोग कुंभ पै आये, देख प्रभु को बैठन पाये।
जब ही प्रभु ने नयन उघारे, कृतकृत्य वे हो गये सारे।
कहीं तेज ना ऐसा देखा, प्रभु के नयनों में जो पेखा।
तेजोमय ऐसा वह भाल, कौन वर्णे उस का सब हाल।

दो० जटा जूट में नाथ को, देख भये कृतार्थ।
सन्मुख उन दर्शन किए, मूर्त रूप परमार्थ ॥ ७८०

पग स्पर्श सब ने तब कीने, आशिर्वाद प्रभु के लीने।
इच्छा उन के मन जो भारी, एक सज्जन ने कह उचारी।
स्वामी हम कुछ शिक्षा चाहें, अमृत वर्षा आप कर पायें।
उतर हिमालय से ऋषि आते, कुंभ समय जन दर्शन पाते।
अथवा दर्शन कब हो पायें, आप ऋषी न जगत में आयें।
मधु वाणी जो आप उचारें, तप्त जनों के हिरदय ठारें।
दूर दूर से हम चलि आयें, दर्शन ऋषि गण के पा जायें।
नाथ यही है विनय हमारी, करो दासन पर कृपा भारी।

दो० इस विध उस की श्रवण करि, मुख से बोले नाथ।
सुनो प्यारे भक्त जन, बैठ सभी इक साथ ॥ ७८१ क

बैठ सभी इक साथ तुम, प्रभु में चित्त लगाय।
जो कुछ हम अब कहत हैं, श्रवण करो मन लाय ॥ ७८१ ख

सब के घट इक जोत है, आत्मा उसका नाम।
उस को तुम निरखत रहो, यह है सारा काम ॥ ७८१ ग

जगे जोत अन्तर इस भांति, जैसे नभ में भानु की कांति।
गगन विमल तो भानु लखावे, आय मेघ तो वह छिप जावे।
अन्तर शुद्ध आत्मा प्रकाशे, पाप हो तो दृष्टि से नाशे।
शिक्षा यही सभी लो जान, बचें पाप से पावें ज्ञान।
पापी नर हो पाप से हीन, बिना ज्ञान के जन है दीन।
नर देह पाय न आत्म दीखे, किस योनी में तब वह सीखे।
मानव तन ही ऐसा जानो, जिस में आत्म रूप पहचानो।
मन को करो एकाग्र भाई, त्यागो विषयों की समुदायी।

दो० योगी गुरु को पाय कर, करो एकाग्र चित्त।
इससे बड़ा न ज्ञान है, यही सीख मम मित्त ॥ ७८२ क

सुन कर इस उपदेश को, भक्तन मन संतोष।
मिलें जो ऐसे गुरु जन, निकलें मन के दोष ॥ ७८२ ख

भक्त जनों में चर्चा भारी, प्रभु की महिमा बहु विस्तारी।
नित दर्शन हित जन थे आते, अपने संगी साथी लाते।
और भी संगत बहु जुट पाती, कुंभ में प्रभु की भयी ख्याती।
योगी की संगत में जायें, ऐसा मन में सभी मनायें।
योग की बात लगती प्यारी, प्रभु मुख से जो निकले सारी।
इस विध नित थी संगत आती, शिक्षा प्रभु की सुन कर जाती।

१०४. श्री प्रभु जी को घर लाने का दैवी प्रयास।

अब चल मन कुछ और दिखावें, अमृतसर में हम ले जावें।
संत सिंह के कटडे चालो, उस के कूचे को भी भालो।
लोहे का इक द्वार भारो, उस के भीतर कूचे सकारी*।

दो० उस गली में जाय कर, बढ़ो किए बिन शोर।
अन्तिम घर तुम को मिले, देखो दाईं ओर ॥ ७८३

अन्तिम घर कूचे का भारा, मानो जग का वही किनारा।
सिंह द्वार उस का तुम पाओ, देख लेश ना पर घबराओ।
लक्ष्य तेरा है यही स्थान, योगी का जिमि परम ज्ञान।
सुन्दर कूप बना उस आगे, तीर्थ सभी जिस के अनुरागे।
परम तीर्थ तुम उस को मान, उस के जल का कर के पान।
और कर के तुम निज को शुद्ध, चलो भीतर होकर प्रबुद्ध।

*तंग

लांघ ड्योढ़ी भीतर जाओ, सुंदर सा इक कमरा पाओ।
उस में मिले गा नहीं प्रकाश, भू पर उतरा जिमि आकाश।
वहां एक तुम रेखा देखो, दूज का चान्द जिमि हो पेखो।

दो० इस रेखा को जान लो, यही जगत को मात।
जिस की सुधी अब लेवें, वर्ष बारह पश्चात॥ ७८४

प्रभु के चरण को सदा ध्यावे, चित्त में पति का सुख मनावे।
केवल दर्शन कर के आना, कुछ उपद्रव नहीं कर पाना।
फिर प्रभु के कान में बोलो, "नाथ सुभद्रा की सुध ले लो।
बारह वर्ष जिस धारे प्राण, अब तो सुनो उस की भगवान।"
यदि नहीं मानें प्रभु तव बात, स्वर्ग में तुम इक जाना प्रात।
वहां सहायक देव बताना, उन को सारी व्यथा सुनाना।
जग का उन को हाल बनाना, जनता का सब दुख समझाना।
मेघ पाप का जो अब छाया, कभी न ऐसा अवसर आया।

दो० देव बनें सहायी जब, विनय करें प्रभु पास।
प्रभु जगत में आयें तब, धर्म का हो प्रकास॥ ७८५

रे मन जा अब कर लो काम, भूलना न कभी प्रभु का नाम।
संकट जब तेरे मग आय, सिमरन प्रभु का होय सहाय।
उधर देव भी यही मनावें, किस मिस प्रभु जगत में आवें।
असुरों ने सब दुनिया घेरी, घटा पाप की बहुत घनेरी।
देवों को ना पूछे कोई, असुरों की ही पूजा होई।
देव दुबक बैठे घर अंदर, असुर फिरें सब जग के अंदर।
देव बने उपहास के पात्र, असुर हैं पूज्य बने इक मात्र।
कुंभ में जब प्रभु को पाया, उन के मन आश्वासन आया।

दो० उपजा मन आश्वास उन, प्रभु संगत में देख।
नाथ पधारें जगत में, चले धर्म की रेख ।। ७८६

देवों के मन मांहि हुल्लास, उन की बंध गई अब आस।
उन के चित्त चाव बहु भारी, नाथ पधारें हैं असुरारी।
योग शक्ति को हैं वे लाये, विद्या अमोघ योग कहाये।
योग से बढ़ कर बल न कोई, कार्य योग से ही सिद्ध होई।
योग शक्ति ले प्रभु पधारे, आसुर शक्ति योग संहारे।
पूरण देवों का हो काज, प्रभु हैं जगत में उतरे आज।
कैसा उपजा यह संयोग, कुंभ पर्व प्रभु लाये योग।
हम ने योग को था भुलाया, तभी कष्ट यह सारा पाया।

दो० हम भूले थे योग को, हो माया बशिभूत।
योग शक्ति प्रभु लाये, कारज होगा सूत ।। ७८७

मिल कर देव सकल तब आये, समाधि में प्रभु को मिल पाये।
अपनी बीती सकल सुनाई, असुरों की जिमि थी प्रभुताई।
कहा "नाथ हम जग से भागे, देवलोक में डेरे लागे।
ऋषियों ने मन्दिर बनवाये, प्रभु के प्रेरे जग थे आये।
मूर्त मूर्त में कीना वास, जगत में उपजा था विश्वास।
द्वापर बीता कलियुग आया, जनता ने तब योग भुलाया।
देव मूर्त का रहा न मान, अघ ने छोड़ा न कोई स्थान।
देवालय में माया व्यापी, रहने लगे वहाँ भी पापी।
मूर्ति से हम निकल के आये, स्वर्ग में जाय डेरे लागे।

दो० आप पधारे जगत में, अब बतलायें नाथ।
कहां हमारा वास हो, छूटे न तव साथ ।।" ७८८

१०५. देवताओं का वास कहां ?

प्रभु ने देवों की सुन लीनी, बात बताई तभी नवीनी।
हम रहें अब जगत में भाई, गुरु आज्ञा है जिस विध पाई।
जभी हमारा हो अवतार, सहायक बन तुम करते कार।
तुम ने जो है बात चलाई, रहने की इस्थान पुछाई।
स्वर्ग से जब जगत में आओ, शुद्ध स्थान देख अपनाओ।
जहाँ पै हिंसा का हो राज, तुमरा न है वहां कुछ काज।
उस जगह को दूर से त्यागो, हिंसक के न संग भी लागो।
मन्दिर भी तुम वह अपनावो, हिंसा को जहं तुम न पावो।

दो० देवों को बदनाम कर, करते हिंसा लोग।
करें धर्म की आड़ में, मांस मदिर का भोग॥ ७८६ क

उस मन्दिर से दूर भी, रहना तुम मम भाइ।
धनी लोग जब आन कर, देवें पाप कमाइ॥ ७८६ ख

जहां सत्य का भाव न देखो, और झूठ का आदर पेखो।
चोरी को जहां देख पाओ, ब्रह्मचर्य की हानी पाओ।
परिग्रही जहं लोग रहते, अन्य जनों का सुख न सहते।
उस स्थान न भूल कर जाना; दूर से ही उसे ठुकराना।
शौच कर्म को नर जो त्यागें, संतोष के न मग जो लागें।
तप साधन ना जोय कमावें, विषय भोग को ही अपनावें।
स्वाध्यायशील न जो नर होवें, रुचि न सत्संग में जो लेवें।
ईश भजन से रहें जो दूर, मद मान में रहें जो चूर।
ऐसे नरन को तुम दो त्याग, करो न उन से लेश अनुराग।

दो० देवों का तंह वास हो, सत को हो जहं बात।
जहां धर्म के नेम सब, पालें जन बिन बात॥ ७६०

और बात मैं इक बतलाऊं, रहने का इस्थान दिखाऊं।
योगी का घट पावन महान, उस से उत्तम न कोई स्थान।
मूलाधार में करिये वास, स्वाधिष्ठान भी स्थान है खास।
मणीपूर है चक्र महान, अनाहत चक्र उत्तम जान।
इन चक्रों में करो तुम वास, जग में होगा योग प्रकाश।
इस विध साधक बने महान, जिस से बढ़े तुम्हारी शान।
योग युक्त होवे जब साध, तुम से प्रेम वह करे अगाध।
जग की आस सकल वह त्यागे, संग तुम्हारे में अनुरागे।

दो० मुझ से तुम यह जान लो, इससे बड़ा न संग।
अब धरातल आय कर, बसो योगी के अंग॥ ७६१

और निवास भी तुम लो जान, योगी के अंग ठीक स्थान।
नेत्रों में तुम कर लो वास, दिव्य दृष्टी का हो प्रकाश।
कानों में इस्थान बनाओ, अनाहद की तुम गूंज लगाओ।
जिह्वा में तुम पा लो स्थान, सत्य वाणी का मिले प्रमान।
हाथों में रहते जब देव, योगी करे जगत की सेव।
पैरों में जो स्थान बनाओ, सद्गुरु दर्शन जा कर पाओ।
बने कण्ठ जब देव निवास, साम गान का होय प्रकास।
श्वासों में इस्थान बनाना, योगी के घट में रम जाना।

दो० योगी के घट जब रमें, अंग अंग में देव।
जग में देवों की करें, नर नारी सब सेव॥ ७६२ क
इस विध जगह बताय कर, प्रभु भये आत्म लीन।

जय प्रभु की बोल कर, विदाइ देवन लीन ॥ ७६२ ख

देव स्वर्ग में जब सिधाये, मन्त्रणा वे वहां कर पाये।
अमृतसर उन दूत भिजाया, यशोधा को जिस भेद बताया।
तीरथराम प्रभु का भाई, उस को भी सब बात बताई।
जिन की खोज में तुम रह पाय, वे तो हैं अब कुंभ में आय।
जाओ जा कर तुम ले आओ, घर में ला उन्हें ठहराओ।
योगी का वह बाणा धारे, बैठे हैं अब गंग किनारे।
जनता उन को बैठी घेर, तुरन्त चलो न लाओ देर।
चूक गया यदि अब यह काल, उन का मिले गा न फिर हाल।

दो० देव दूत इमि टेर कर, चला गया तत्काल।
प्रभु भवन में बात चली, भया कुंभ का काल ॥ ७६३ क

ऐसे अवसर पर सभी, साध जुटें हरि द्वार।
रामलाल यदि साध है, वहीं मिलेगा सार ॥ ७६३ ख

१०६. भाई तीर्थ राम और श्रीमती सुभद्रा आदि का हरिद्वार जाना।

तीरथ राम प्रभु का भाई, संग और भी जन समुदाई।
नारिन भी कुछ हुईं तय्यार, चलने को सब हरि के द्वार।
सुभद्रा भी थी उन के संग, फड़के उस का वाम अपांग।
सूचन उस को जो दे पाये, पति तुम्हारा घर अब आये।
मन अपने की वह ही जाने, लज्जा वश ना वचन बखाने।
आस पतंग कभी चढ़ जाये, डुबकी फिर नीचे को खाये।
देवों की वह मिनत मनावे, सकुशल पति उस का घर आवे।

अथवा उसकी देह नकारी, मां गंग की भेंट हो सारी।

दो० इस विध आस निरास में, उभरी डूबी सोइ।
हरिद्वार की रेल में, चढ़ी शाम संग लोइ* ॥ ७६४

भीड़ स्टेशन पर थी भारी, भरी रेल में जनता सारी।
नीची दृष्टि सुभद्रा ताके, कहीं बुलाये पति ना आके।
यदि यहीं पै राम मिल जायें, हरिद्वार हम फिर क्यों जायें।
राम यदि कोई मुख से बोले, चौंक सुभद्रा घूंघट खोले।
राम नाम सुनने में आये, रामलाल कहीं दीख न पाये।
रामलाल की अद्भुत माया, खुद उस ने सब जगत रचाया।
अब बैठा कहीं जग से छिप कर, सुभद्रा ढूंढे जग संग मिल कर।
वर्ष द्वादश बीतन आये, ढूंढ ढूंढ के राम न पाये।
हे राम अब बनो सहायी, पीड़ सुभद्रा कथी न जायी।

दो० राम रमा सब जगत में, वेद कहैं यह बात।
सुभद्र बैठी आस में, कटे न दुख की रात ॥ ७६५ क

घन अंधेरे में चली, हरिद्वार की मेल।
सुभद्रा मिनत मनावती, होय राम से मेल ॥ ७६५ ख

रेल में भीड़ भरी थी भारी, सृष्टि तो है राम की सारी।
राम कहीं बैठे हैं छिप के, घुले सुभद्र याद में उनके।
खोज खोज थे सब जन हारे, मिले न किसी को राम प्यारे।
स्पष्ट बात इक वेद बताते, ढूंढन से न राम मिल पाते।
जिस पै होय राम की दाया, बस उसी ने राम को पाया।
समय सुभद्रा का अब आया, देवदूत ने स्वयं बुलाया।

*लोग

सोच में बीती सारी रात, होय चली थी अब तो प्रात।
कौन स्टेशन मग में आये, सुभद्रा कुछ न जानन पाये।
सती साध्वी वही बेचारी, दुनियां घर की चार दिवारी।

दो० जग के स्वामी मिल गये, उस को पति के रूप।
दूभर जीवन सो भया, रहस परम ही गूप॥ ७६६ क

प्रभु तो अग्नी रूप हैं, आब* रूप है नार॥
नारायण** जब पति मिलें, मिलता दुख अपार॥ ७६६ ख

हरिद्वार का स्टेशन आया, जन समुदाय अपार था छाया।
देख सुभद्रा मन बेचैनी, किस विध पाये पति की सैनी।
समुद्र में जिमि बूंद समाये, व्यक्ति वहां कैसे मिल पाये।
किस को कौन पहचाने भाइ, यह तो कुंभ की जन समुदाइ।
यहां पर व्यक्ति इमि समाये, रेत में राइ जिमि खो जाये।
सुभद्रा मन में प्रभु ध्यावे, भक्तन की जो लाज बचावे।
अपने मन की वह ही जाने, जिस लगी हो वही पहचाने।
ले कर चली बहुत थी आश, भीड़ देख अब भयी निराश।

दो० भीड़ कुंभ की क्या कहें, महा जगत का पर्व।
वर्ष द्वादश बाद यहीं, साधु आवें सर्व॥ ७६७ क

---

*पानी, जल

**नारआयन—स्त्री को शरण देने वाले। इस पद्य का भाव इस प्रकार समझना चाहिए कि ईश्वर अवतारी अग्नि रूप हैं। और उन की पत्नी जल रूप है। अग्नि और जल का संबन्ध अटूट है। सूर्य की किरणें जल को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। विज्ञान के अनुसार अग्नि के जलने से भी जल की उत्पति होती है। अग्नि बहुत प्रचंड हो जाए तो जल ही उसे शांत करता है। अग्नि के वियोग में जल जम कर बर्फ बन जाता है। तथा अपने स्वरूप को छोड़ देता है।

परन्तु अग्नि से मिलकर जल को सुख की प्राप्ति नहीं होती। वह संतप्त हो कर खोलता है। इसी प्रकार ईश्वर जब अवतार लेते हैं तो उन की माया उन के साथ अर्धांगिनी बन कर सीता और सुभद्रा आदि रूपों में आती हैं। परन्तु सदैव संताप को प्राप्त होती है। ईश्वर की नारी बनना कांटों की सेज है।

आवें साधु सर्व यहाँ, देश विदेशी लोग।
प्रभु जी स्वयं प्रचारते, आ यहां अब योग ।। ७६७ ख

उतर सुभद्रा रेल से, तीर्थ राम के संग।
नर नारी भी साथ में, चली जहाँ थी गंग ।। ७६७ ग

गंगा तट पर सब जन आये, स्नान ध्यान प्रात कर पाये।
सुभद्र मन में यही मनावे, गंगा मां मम पति मिल जावे।
अपने मन की इच्छा भारी, कर सके नहीं परकट सारी।
नभ वाणी तब गंग सुनायी, "हे जग जननी भव सुखदायी।
तप का फल तुम ने है पाया, पति तुम्हारा वन से आया।
दर्शन कर लो जा कर उस का, ताप नशे जिमि तोरे मन का।
दुःख भूमि का हरने हेतु, आये जगत में जग के सेतु।
योगि रूप उन का मन भावे, दर्शन हित ब्रह्मा भी आवे।

दो० दर्शन पावें देव गण, नित स्वर्ग से आय।
चित्त में यही मनावें, प्रभु जी होंय सहाय ।। ७६८ क

असुरों के प्रभाव की, क्षति तभी हो पाय।
देव संरक्षक जब प्रभु, रहें जगत में आय ।। ७६८ ख

अब तुम सकल शोक दो त्याग, पति मिलेंगे हे महाभाग।"
इस विध नभ वाणी भयी शांत, सुभद्रा मन बसा तब कान्त।
ध्यान मग्न बैठी गंग तीर, पति मिल पायें मिटे सब पीर।
तीर्थ राम संदेशा लाया, जनता से था जो सुन पाया।
"योगी एक बहुत विख्यात, सत्संग करे नित्य ही प्रात।
प्रेमी जन दर्शन हित आवें, उपदेशामृत सब सुन पावें।
श्रवण करी सब ने यह वाणी, बोले "देखें चल कर ज्ञानी।
कौन योगी है चल कर आया, जनता ने जिस को अपनाया।

दो० तीरथ राम संग सभी, तब चले जहाँ नाथ।
तेजोमय उस रूप को, देख भये सनाथ ॥ ७९९

१०७. श्री प्रभु जी से भाई का मिलाप

तीर्थ राम ने झट पहचाना, निश्चय से निज भाई जाना।
सुभद्रा की न बात बखानें, अपने मन की वे ही जानें।
वर्णन में न कभी यह आवे, वर्णन करे कुकवि कहलावे।
तीर्थ राम से सब कह पाये, "रामलाल सम रूप लखाये।
ज्ञात करो तुम भाइ यह बात, यही क्या रामलाल साक्षात।
यदि यह सचमुच राम हो लाल, हम सब घेर बैठें तत्काल।
योगी को निर्मोही जानो, अपने वश ना उस को मानो।
योगी को न संग बंधावे, जग का मोह निकट ना आवे।

दो० निर्मम योगी जानिये, करे न जग से प्रीत।
शरण पड़े जो वश करे, यह सनातन रीत ॥ ८००

सब ने ऐसा मन में धारा, राम लाल को घेरा डारा।
कर प्रणाम हुए आसीन, तीर्थ राम मन प्रेम नवीन।
कई बार उस भाई लाया, जब जब राम लाल भग पाया।
अब की पर थी बात न्यारी, उस ने खोइ निज शक्ति सारी।
राम लाल था तेज स्वरूप, दृष्टि न देख सके वह रूप।
तीरथ राम निज शक्ति हारी, विनय भाव से वाणि उचारी।
अपने मन का संशय भारा, खोल बखाना तब उस सारा।
"योगिराज हम दूर से आये, अमृतसर वह नगर कहलाये।

दो० ज्योतिषि गंडा राम का, पुत्र तीरथ राम।
ऐसा मुझ को जानिये, राम भाइ का नाम ॥ ८०१ क

रामलाल मम भाइ था, त्यागा उस जग नेह।
पिता जी स्वर्ग सिधारे, छोड़ गया वह गेह॥ ८०१ ख

रामलाल ने घर को त्यागा, ईश्वर भक्ती का अनुरागा।
बारह वर्ष बीतन को आये, कहीं न उस की सुध मिल पाये।
ढूंढ ढूंड हम हारे स्वामी, तुम योगी हो अन्तर्यामी।
बनो सहाय हमरे दुःख में, रामलाल मिल पाय कुंभ में।
उस का रूप आप सम सुन्दर, ज्ञानी भी वह परम धुरन्धर।
हार गये तव शरणी आये, कृपा करो जिमि वह मिल पाये।
उसी की सती साध्वी नारी, संग सबन के यहां पधारी।
इस का दुःख न देखा जाये, नाथ मिलें कब यह पछताये।

दो० सती सुभद्रा की कथा, सब के मुख पै आय।
आप तपस्वी नार की, जिमि हो करें सहाय॥ ८०१ क

तीर्थ राम यों कथन कर, ऊपर नज़र उठाइ।
वहाँ से योगी लोपा, गया किधर वह भाइ॥ ८०२ ख

भेद योगी का न को जाने, जनता सभी लगी पछताने।
तीर्थ राम के संगी सारे, शोक निमग्न भये वे भारे।
बहावें नारिन अश्रु धार, कीना है यह क्या करतार।
सुभद्रा कोसे अपना भाग, जिस को पति ने दीना त्याग।
आस पास सब देखन लागे, इधर उधर कुछ जन भी भागे।
संगत में अचरज था भारा, लोप रूप किमि योगी धारा।
आश निराश में डूबी सारी, उत्सुक जनता दीखे भारी।
अमृतसर के जन जो सारे, सोच सोच वे सब थे हारे।

दो० बहुत व्याकुल जन भये, प्रभु का आसन देख।
योगी लुप्त भया इमी, जल पै जिमि हो रेख॥ ८०३

प्रभु जब देखी जनता सारी, डूबी व्याकुलता में भारी।
वहीं तुरत प्रकट हो पाये, वर्शन करि जन थे विस्माये।
तीरथ राम स्तंभित देखे, प्रभु ने तब निज भाव उलेखे।
"रामलाल जिमि आप बखाना, घर त्याग कर हुआ रवाना।
घूम घूम उस ने जग देखा, अपने तन पै संब कुछ लेखा।
गुरु की खोज थी उसे प्यारी, उत्तर दिक उस भाली सारी।
उसे मिला न सद्गुरु प्यारा, दक्षिण दिक फिर उस पग धारा।
नर्ब नद के वन जो सारे, उस ने छान सभी थे डारे।
पश्चिम को फिर कीन पयान, तीरथ खोजे सकल महान।

दो० दक्षिण पश्चिम खोज कर, चला पूर्व की ओर।
राही बन उस राह का, दुर्गम जिस का छोर॥ ८०४

दीर्घ मारग राम अपनाया, पूर्व दिशा गुरु खोज सिधाया।
तीरथ गंग यमुन के छाने, मन में लेश क्लेश न माने।
ब्रह्म पुत्र के पार सिधाया, गुरु का रहस वहां कुछ पाया।
यात्रा तब निपाल की कीनी, संगत से वीदायी लीनी।
बीहड़ वन में गुरु मिल पाये, महादेव खुद लेने आये।
ऐसे सद्गुरु पाये न्यारे, क्षण क्षण रूप अनेकों धारे।
बाल युवा व वृद्ध हो जाये, विस्मय राम देख के पाये।
छः मास की समाधी धारे, उस के आश्रित ऋषि मुनि सारे।
उस ने राम पै कृपा कीनी, पूर्ण योग की शिक्षा दीनी।

दो० पूर्ण योग सिखाय कर, दीना फिर आदेश।
अब तू वन को छोड़ कर, जग में कर प्रवेश॥ ८०५

हिमालय से तब उतरा राम, आ कर बैठा यहां उपराम।
ज्येष्ठ भाइ तब मिलने आये, गुरु आदेश को राम अपनाये।"

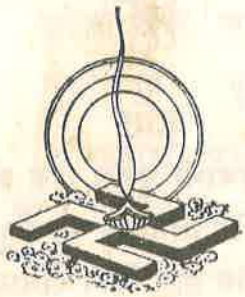
तीर्थ राम रहस्य सब पाया, "रामलाल" कह गले लगाया।
अश्रु से तन भाइ नहलाया, सुख सुभद्रा देख के पाया।
जय जयकार जनता ने कीन, पुष्प वर्षा देवों ने कीन।
फूले देव थे नहीं समाय, प्रभु ने भाइ जब गले लगाय।
प्रभु का भाई से यह मिलाप, स्मरण करावे भरत मिलाप।
देवों को निज साध प्राप्त, वन का काण्ड भी भया समाप्त।
दो० वन का काण्ड समाप्त है, प्रभु गुण "सेवक" गाय।
निशिदिन बैठा वह लिखे, जग जंजाल भुलाय॥ ८०६ क

इति

श्री सद्गुरुदेव योगेश्वर स्वामी मुलख राज जी महाराज के शिष्य
'सेवक' चमन लाल कपूर कृत योग योगेश्वर श्री प्रभु राम लाल जी महाराज की
दिव्य जीवनी "श्री योग महा दिव्य रामायण" का वन काण्ड

समाप्त

योग ही
विश्व शान्ति का
एक मात्र साधन है ।



बिना दवाई निरोगता,

मन की एकाग्रता तथा ईश्वर प्राप्ति के

लिए योग आश्रमों से सम्पर्क स्थापित करें ।